BAPA(N)- 302

तुलनात्मक लोक प्रशासन

COMPARATIVE PUBLIC ADMINISTRATION

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी

फोन नं. 05946 – 261122, 261123

टॉल फ्री नं.18001804025

ई – मेल info@uou.ac.in

http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे निदेशक- समाज विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर अल्का धमेजा, लोक प्रशासन विभाग इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रोफेसर उमा मैदुरी, लोक प्रशासन विभाग इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली	प्रोफेसर बी0 अरूण कुमार, लोक प्रशासन विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान
डॉ0 घनश्याम जोशी, लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्री सुमित सिंह, लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
श्री शुभांकर शुक्ला, लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्री प्रमोद चन्याल, लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

पाठ्यक्रम संकलन और सम्पादन

डॉ0 घनश्याम जोशी(असिस्टेन्ट प्रोफेसर)

कार्यक्रम समन्वयक, लोक प्रशासन उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

BAPA(N)- 302 तुलनात्मक लोक प्रशासन	**तुलनात्मक लोक प्रशासन (MAPA- 103) से साभार**
इकाई 1 -तुलनात्मक लोक प्रशासनः अवधारणा, अर्थ, क्षेत्र एवं महत्व इकाई 2 -तुलनात्मक लोक प्रशासन: अध्ययन के दृष्टिकोण इकाई 3 -प्रशासन का सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक ,आर्थिक परिवेश इकाई 4 -विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताएं इकाई 5 -विकासशील देशों की प्रशासनिक विशेषताएं इकाई 6 -तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रतिमान(मॉडल)- मैक्स बेबर का नौकरशाही मॉडल इकाई 7-नौकरशाही का आदर्श प्रारूप, मैक्स बेबर की आदर्शवादी नौकरशाही इकाई 8-मैक्स बेबर का सत्ता प्रतिमान, तृतीय विश्व की प्रशासनिक व्यवस्था इकाई 9 -परिस्थितिकीय दृष्टिकोण, संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण इकाई 10 -विकास मॉडल, डाउन्स मॉडल इकाई11 - एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स का सामाजिक प्रारूप- प्रिज्मैटिक समाज, साला मॉडल इकाई- 12 प्रशासन पर कार्यपालिका का नियंत्रण इकाई 13 -प्रशासन पर विधायी (संसदीय) नियंत्रण इकाई 14 -प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण	

प्रकाशन वर्ष- 2025

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन- निदेशालय अध्ययन एवं प्रकाशन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139

BAPA(N)- 302 तुलनात्मक लोक प्रशासन

अनुक्रम

खण्ड- 1 तुलनात्मक लोक प्रशासन- अर्थ, दृष्टिकोण, परिवेश		
1	तुलनात्मक लोक प्रशासनः अवधारणा, अर्थ, क्षेत्र एवं महत्व	1 – 14
2	तुलनात्मक लोक प्रशासनअध्ययन के दृष्टिकोण :	15 – 35
3	प्रशासन का सांस्कृतिक ,सामाजिक, राजनीतिक ,आर्थिक परिवेश	36 – 48
खण्ड- 2 प्रशासन की विशेषताऐं		
4	विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताएं	49 – 60
5	विकासशील देशों की प्रशासनिक विशेषताएं	61 – 75
खण्ड- 3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रतिमान- मैक्स बेबर		
6	तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रतिमान(मॉडल)- मैक्स बेबर का नौकरशाही मॉडल	76 – 86
7	नौकरशाही का आदर्श प्रारूप, मैक्स बेबर की आदर्शवादी नौकरशाही	87 – 99
8	मैक्स बेबर का सत्ता प्रतिमान, तृतीय विश्व की प्रशासनिक व्यवस्था	100 – 113
खण्ड- 4 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण, संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण, विकास मॉडल, डाउन्स मॉडल, रिग्स का सामाजिक प्रारूप		
9	परिस्थितिकीय दृष्टिकोण, संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण	114 – 127
10	विकास मॉडल, डाउन्स मॉडल	128 – 147
11	एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स का सामाजिक प्रारूप- प्रिज्मैटिक समाज, साला मॉडल	148 – 162
खण्ड- 5 प्रशासन पर नियंत्रण		
12	प्रशासन पर कार्यपालिका का नियंत्रण	163 – 171
13	प्रशासन पर विधायी (संसदीय) नियंत्रण	172 – 188
14	प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण	189 – 198

इकाई- 1 तुलनात्मक लोक प्रशासन अवधारणा, अर्थ, क्षेत्र एवं महत्व

इकाई की संरचना

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा

  1.2.1 तुलनात्मक लोक प्रशासन की मान्यताऐं

  1.2.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास के कारण

1.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन

  1.3.1 तुलनात्मक लोक प्रशासन विशेषताऐं

  1.3.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति

  1.3.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के उद्देश्य

1.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र

1.5 तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.10 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

तुलनात्मक लोक प्रशासन परम्परागत लोक प्रशासन से सर्वथा भिन्न है। इसमें लोक प्रशासन के अध्ययन को नवीन और महत्व पूर्ण आयाम प्रदान किया गया है। तुलनात्मक लोक प्रशासन से तात्पर्य है दो या दो से अधिक देशों, प्रान्तों, क्षेत्रों या स्थानों की लोक प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अध्ययन तुलनात्मक रूप से किया जाये। यद्यपि तुलनात्मक लोक प्रशासन में पश्चिमी व्यवस्थाओं का अधिक अध्ययन किया गया है किन्तु इसकी, वर्तमान प्रवृति विकासशील देशों की प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्थाओं का अध्ययन करना है। प्रस्तुत इकाई तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा को विस्तार रूप से प्रस्तुत करेगी साथ ही इसके क्षेत्र एवं महत्व पर भी प्रकाश डालेगी।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- तुलनात्मक लोक प्रशासन क्या है इसकी अवधारणा को जानेंगे।
- तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ, क्षेत्र एवं महत्व के विषय में भी जान पायेंगे।

1.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा

अवधारणा किसी विचार या वस्तु के सार सम्बन्धित सिद्धान्त को कहते है। तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में एक नवीन अवधारणा है। इसका उदय कुछ वर्ष पूर्व द्वितीय विश्व

युद्ध के समय हुआ था। द्वितीय विश्व युद्ध तक तुलनात्मक लोक प्रशासन को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में नहीं जाना जाता था, लेकिन इस विश्व युद्ध के बाद सम्पूर्ण विश्व के समक्ष कुछ ऐसी नयी समस्याऐं सामने आयीं जिनके लिये अध्ययन का प्राचीन एवं परम्परागत दृष्टिकोण अपर्याप्त सिद्ध हुआ और नवीन दृष्टिकोण की खोज की जाने लगी, फलस्वरूप लोक प्रशासन को तुलनात्मक रूप देकर उसके अध्ययन को विकसित किया गया। तुलनात्मक लोक प्रशासन में विश्व में उपस्थित विभिन्न संस्कृतियों में कार्यरत विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इसमें लोक प्रशासन के अध्ययन के कुछ ऐसे नियम, सिद्धान्त एवं मान्यताऐं प्रतिपादित की जाती हैं, जिन्हें सभी देशों में लागू किया जा सके। अर्थात् विभिन्न सांस्कृतिक परिस्थितियों एवं राजनीतिक पर्यावरण में लागू होने वाले सिद्धान्तों का निर्माण इस तुलनात्मक लोक प्रशासन के कारण ही सम्भव हो पाता है।

द्वितीय विश्व युद्ध के समय उत्पन्न समस्त समस्याओं के निराकरण में पारम्परिक दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता के कारण उसके बाद के वर्षों में विभिन्न सामाजिक विद्वानों ने तुलनात्मक अध्ययन तथा विश्लेषण को विशेष महत्व देना शुरू कर दिया। एडविन स्टीन, साइमन तथा वाल्डो जैसे विद्वानों ने लोक प्रशासन को ओर अधिक वैज्ञानिक बनाने हेतु वैज्ञानिक साहित्यों की व्याख्या पर बल देना प्रारम्भ किया। परन्तु राबर्ट डहाल ने कहा कि ‘‘जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं होता है, तब तक विज्ञान होने का इसका दावा खोखला है।’’ किसी भी अन्य वैज्ञानिक अनुशासन की तरह लोक प्रशासन में भी तुलनात्मक विश्लेषण की विधि का सुनिश्चित महत्व है। अतः इस बात को ध्यान में रखकर लोक प्रशासन के विद्वानों ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन-साहित्य तथा प्रशासकों के तुलनात्मक विश्लेषण पर बल देना प्रारम्भ किया। अतः अब लोक प्रशासन को वैज्ञानिक बनाने हेतु किसी भी अन्य वैज्ञानिक अनुसंधान की तरह आजकल लोक प्रशासन के अध्ययन में तुलनात्मक अध्ययन को अधिक महत्व दिया जा रहा है। इस विषय के विकास के प्रारम्भिक चरणों में वाल्डो, फैरेल, हैडी आदि विद्वानों ने महत्व पूर्ण भूमिका निभायी और इसके बाद में तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा को अधिक समृद्ध बनाने में फ्रेड रिग्स, फ्रेडरिक क्लीवलैण्ड, रिचर्ड गेबल, फैरेल हैडी आदि विद्वानों ने महत्व पूर्ण योगदान दिया।

1.2.1 तुलनात्मक लोक प्रशासन की मान्यताऐं

तुलनात्मक लोक प्रशासन का विकास अभी शैशव-अवस्था में है। अभी भी इस विषय पर प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध नहीं हो सका है। अतः तुलनात्मक लोक प्रशासन की मान्यताओं के सम्बन्ध में रॉबर्ट जैक्सन द्वारा व्यक्त मान्यताओं को भी प्रश्रय दिया जाता है। रॉबर्ट जैक्सन ने तुलनात्मक लोक प्रशासन की चार मान्यताओं का उल्लेख किया है-

1. प्रशासनिक व्यवहार में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं, जिनका व्यवस्थित विश्लेषण किया जा सकता है।
2. प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत जो पद्धतियाँ अपनायी गयी हैं, उनका अध्ययन विभिन्न संस्कृतियों और राष्ट्रों के सन्दर्भ में किया जा सकता है।
3. तुलनात्मक अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त निष्कर्षों की परीक्षा की जा सकती है।
4. ऐसी आशा की जाती है कि इस प्रकार का तुलनात्मक विश्लेषण प्रायोगिकता और सार्वभैमिकता की भिन्न-भिन्न मात्राओं के लिए सामान्यीकरण के विविध स्तरों पर प्रशासनिक प्रतिरूपों से सम्बन्धित परिकल्पनाओं के निर्माण में सहायक सिद्ध होगा। अन्ततः इस प्रकार की प्रतिज्ञप्तियों को लोक प्रशासन के सामान्य सिद्धान्तों में स्वीकृत किया जा सकेगा।

तुलनात्मक लोक प्रशासन की मान्यताओं के सन्दर्भ में जो प्रारम्भिक अध्ययन किये गये थे, उनमें वुडरो विल्सन ने अमेरिकी प्रशासन को पढ़ने, समझने तथा सुधारने के लिए यूरोपीय अनुभव पर जोर दिया था। जो प्रारम्भिक अध्ययन किये गये थे, उनमें अध्ययन का मुख्य केन्द्र स्थानीय समस्याएँ ही थीं, जिनका सम्बन्ध यूरोपीय

प्रशासनिक व्यवस्थाओं तक ही सीमित था। मात्र प्रसंगवश ही अन्य व्यवस्थाओं के नामों का उल्लेख किया गया था। लेकिन रॉबर्ट जैक्सन ने जो मान्यताएँ प्रकट की हैं, वह लगभग समस्त देशों में लागू होती हैं।

1.2.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास के कारण

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान और उसके बाद के काल को पुराने और नये लोक प्रशासन के साहित्य के मध्य एक विभाजक रेखा माना जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व के विकासशील देशों को ज्यों-ज्यों नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ा, त्यों-त्यों लगभग इसी रफ्तार में लोक प्रशासन का साहित्य समृद्ध और सबल होने लगा। इस काल में उठने वाली समस्याओं के समाधान में लोक प्रशासन अत्यधिक संघर्षशील बन गया। तत्पश्चात उसके स्वरूप और प्रकृति में अनेक बदलाव आये। इस दौरान अमेरिकी विद्वानों ने अनेक तुलनात्मक अध्ययन किये तथा धीरे-धीरे उनकी तुलना का केन्द्र सिर्फ यूरोपीय देश ही न होकर समस्त विश्व की प्रशासकीय व्यवस्थाएँ बनने लगीं। जिन प्रमुख कारणों ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास में अपना योगदान दिया, वे निम्नलिखित हैं-

1. **परम्परागत दृष्टिकोण की अपर्याप्तता-** समय की बदलती हुई परिस्थितियों में ऐसा महसूस किया जाने लगा था कि नवीन चुनौतियों के सन्दर्भ में परम्परागत दृष्टिकोण अपर्याप्त है। इसी सम्बन्ध में वाल्डो का एक कथन उल्लेखनीय है जिसमें उन्होंने ये कहा कि, यह (परम्परागत) दृष्टिकोण संस्कृति अवरोधी था तथा मुख्यतः पश्चिमी यूरोप के देशों तथा वैधानिक और औपचारिक लेखों तक ही सीमित था। उनका मानना था कि यह दृष्टिकोण मुख्यतः वर्णनात्मक था विश्लेषणात्मक या समस्या-समाधानकारी नहीं था। इसमें विद्यार्थी केवल एक देश के प्रशासन की जानकारी प्राप्त कर सकता था, लेकिन दूसरे देशों से उसकी समानता या अन्तर देखने में असमर्थ था।

   परम्परागत दृष्टिकोण की इन्हीं सब कमियों के कारण लोक प्रशासन के विद्वानों के द्वारा तुलनातमक अध्ययन प्रणाली का प्रचलन और प्रसार किया गया। तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रवृति लोक प्रशासन के अध्ययन को संकीर्णता के दायरे से निकालकर व्यापक आधार भूमि पर ला खड़ा करना है।
2. **अनुसंधान के नवीन उपकरणों तथा धारणाओं का उदय-** लोक प्रशासन के विद्वानों के द्वारा ये प्रयास किया गया कि लोक प्रशासन को परम्परागत दृष्टिकोण के संकुचित आवरण से बाहर निकाला जाये और उसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करने का प्रयास किया जाये। उनका मानना था कि यदि लोक प्रशासन को प्रभावशाली बनाना है तो उसे तुलनात्मक रूप देना होगा। तुलनात्मक लोक प्रशासन ही यथार्थ की खोज करता है और इसका लक्ष्य कानून और औपचारिक संस्थाओं के अध्ययन से आगे बढ़कर, उन सब संरचनाओं और यथार्थ प्रशासनिक प्रक्रियाओं का परीक्षण करना होता है, जो लोक प्रशासन और नीतियों के निर्धारण में एक प्रभावशाली भूमिका अदा करती है। अतः ये कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन के अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने हेतु भी तुलनात्मक अध्ययन का प्रयोग किया जाने लगा।
3. **अन्तर्राष्ट्रीय निर्भरता-** तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा के विकास के कारणों में से एक प्रमुख कारण ये भी था कि अब बदलते परिवेश में विभिन्न राष्ट्रों के बीच पारस्परिक निर्भरता भी बढ़ने लगी थी। अब ये महसूस किया जाने लगा था कि यदि देशों में प्रशासनिक सुधार किया जाना है, तो उसके लिये विभिन्न राष्ट्रों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं को जान कर और उनके मध्य तुलना स्थापित कर के ही किया जा सकता है। दूसरे देशों में किये जाने वाले विभिन्न प्रशासनिक प्रयोगों का लाभ प्राप्त करने के लिये अन्य देश अपनी सुविधा, वातावरण और परिस्थितियों के अनुसार उचित कदम उठा सकते हैं और वे सब तुलनात्मक अध्ययन से ही संभव है।

4. **सामाजिक सन्दर्भ का महत्व-** लोक प्रशासन तथा सामाजिक संरचना आपस में घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं। यह घनिष्ठता भी तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास में एक महत्व पूर्ण कारक मानी जाती है। तुलनात्मक लोक प्रशासन ही वो माध्यम है, जिसके आधार पर ये ज्ञात होता है कि एक ही प्रकार की प्रशासनिक संस्थाऐं दो देशों में अलग-अलग व्यवहार करती हैं और उनके परिणाम भी अलग-अलग होते हैं। इन सब का कारण हर देश की सामाजिक रूप रचना का वहाँ के प्रशासनिक संगठन के रूप तथा प्रक्रिया को प्रभावित करना है।
5. **विकासशील राष्ट्रों का सम्पर्क में आना-** युद्ध के समय पश्चिमी और विशेषतया अमेरीकी विद्वानों का बहुत से विकासशील राष्ट्रों के लोक प्रशासन के साथ सम्पर्क स्थापित हुआ, जिनमें इन्होंने कुछ नई विशेषताऐं देखीं और जिसमें उसकी रुचि पैदा हुई।
6. **नई घटनाओं का प्रशासनिक ढ़ाँचों पर प्रभाव-** वैज्ञानिक, सैद्धान्तिक तथा तकनीकी क्षेत्रों में होने वाली नई घटनाओं का प्रशासनों के ढ़ाँचों के स्वरूप पर प्रभाव पड़ा, जिसमें तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में रुचि को प्रोत्साहन मिला।
7. **विशेषताओं और मौलिकताओं को भली-भाँति जानने हेतु-** द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका, ब्रिटेन तथा यूरोप के अन्य विकसित देशों के प्रशासकों और विद्वानों का विकासशील देशों सहित अन्य देशों के लोक प्रशासन के सिद्धान्त तथा व्यवहार से परिचय हुआ। उन्हें विदेशी प्रशासनिक व्यवस्थाओं में अनेक नवीनताएँ और विशेषताएँ नजर आयीं। इन विशेषताओं और मौलिकताओं को भली प्रकार जानने के उद्देश्य से उनमें तुलनात्मक दृष्टिकोण(Comparative Approach) के प्रति रुचि जागृत होने लगी।
8. **लोक प्रशासन को वैज्ञानिकता की कसौटी पर परखना-** द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विभिन्न सामाजिक शास्त्रों ने अपने विषय का अधिकाधिक वैज्ञानिक होने का दावा प्रस्तुत किया। लोक प्रशासन उन शास्त्रों से अधिक वैज्ञानिक होते हुए भी तुलनात्मक अध्ययन के अभाव में वैज्ञानिक होने का खोखला दावा नहीं पेश कर सका। 1947 में रॉबर्ट ए0 डॉल ने भी अपने एक निबन्ध में कहा है कि ''जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं होगा तब तक वह विज्ञान नहीं माना जा सकता है।'' अतः लोक प्रशासन को वैज्ञानिकता की कसौटी पर खरा उतारने के लिए लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन को पर्याप्त महत्व दिया जाने लगा।
9. **प्रशासन की विषय-वस्तु के व्यवस्थित स्पष्टीकरण हेतु-** प्रारम्भिक काल में लोक प्रशासन में विषय-वस्तु के व्यवस्थित स्पष्टीकरण का अभाव था। किसी भी विषय के लिए उसकी विषय-वस्तु का व्यवस्थित ढंग से स्पष्ट न होना हानिकारक माना जाता है। एडवर्ड शिल्स की यह मान्यता है कि ''विभिन्न समाजों की व्यवस्थित तुलना करके उनकी समरूपता एवं विलक्षणताओं को इंगित और स्पष्ट किया जा सकता है।'' अतः लोक प्रशासन की विषय-वस्तु के व्यवस्थित स्पष्टीकरण हेतु भी तुलनात्मक दृष्टिकोण का विकास उपयोगी था।

इस प्रकार परम्परागत दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता, नये राष्ट्रों के सम्पर्क में आना आदि कई ऐसे कारण रहे जो तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास हेतु उत्तर दायी रहे।

1.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन

अब तक आप जान गये होंगे कि तुलनात्मक प्रशासन को यदि सामान्य शब्दों में परिभाषित किया जाये तो कहा जा सकता है कि इसका आशय दो या दो से अधिक प्रशासनिक इकाईयों की संरचना और कार्यात्मकता की तुलना से है। यदि इसके अर्थ को और व्यापक रूप से समझना चाहें तो कुछ विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं को देखने पर ये अर्थ और भी स्पष्ट हो जायेगा।

रिग्स के अनुसार, ''तुलनात्मक अध्ययन वह है जो मिश्रित रूप से अनुभवमूलक(Nomothetic) तथा परिस्थितिकीय (Ecological) हो।''

निमरोद रफाली ने लिखा है कि, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन तुलनात्मक आधार पर लोक प्रशासन का अध्ययन है।''

फैरेल हैडी के अनुसार, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन का सम्बन्ध मुख्य रूप से सिद्धान्त निर्माण प्रक्रिया से है।''

रूमकी वासु के अनुसार, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा हमें विभिन्न देशों में अपनाये जाने वाले उन प्रशासनिक व्यवहारों की जानकारी मिलती है, जिन्हें अपने राष्ट्र की प्रणाली में अपनाया जा सकता है।''

..... ''वस्तुतः तुलनात्मक लोक प्रशासन विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं का एक ऐसा तुलनात्मक अध्ययन है, जिसके निष्कर्षों के आधार पर लोक प्रशासन को अधिकाधिक वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया जाता है।''

1.3.1 तुलनात्मक लोक प्रशासन की विशेषताऐं

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर तुलनात्मक लोक प्रशासन की कुछ विशेषताऐं उभर के सामने आती हैं, जिनको निम्न बिन्दुओं के आधार पर देखा जा सकता है-

1. सर्वप्रथम तुलनात्मक लोक प्रशासन, लोक प्रशासन की एक अलग शाखा के रूप में विकसित हो रहा है।
2. यह लोक प्रशासन के अध्ययन के क्षेत्र में एक नई अवधारणा है।
3. इसके द्वारा दो या दो से ज्यादा देशों की व्यवस्थाओं या प्रशासनिक संगठनों के बीच तुलनात्मक अध्ययन व विश्लेषण किया जाता है।
4. तुलनात्मक लोक प्रशासन के माध्यम से विभिन्न देशों, राज्यों और संगठनों के बीच की दूरी को समाप्त करके उनके अनुभवों का लाभ उठाने का प्रयास किया जाता है।
5. इसमें परम्परागत सिद्धान्तों के स्थान पर वैज्ञानिक विधि पर ज्यादा बल दिया जाता है।
6. इसमें विशिष्टता के स्थान पर सामान्यीकरण की ओर जाने के प्रयास किये जाते हैं।
7. तुलनात्मक लोक प्रशासन पर्यावरणीय अध्ययन पर बल देता है और ऐसा मानता है कि लोक प्रशासन न केवल पर्यावरण से प्रभावित होता है बल्कि स्वयं भी पर्यावरण के घटकों को प्रभावित करता है।
8. पर्यावरणीय अध्ययन पर बल देने वाली अपनी प्रकृति के कारण ही तुलनात्मक लोक प्रशासन की एक और विशेषता उभर कर सामने आती है कि यह अन्य सामाजिक विज्ञानों से समन्वय स्थापित करने का प्रयास करता है। अर्थात् साधारण शब्दों में तुलनात्मक लोक प्रशासन अन्तरविषयी दृष्टिकोण अपनाने पर जोर देता है।

1.3.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति

तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति, लोक प्रशासन विषय से भी अधिक वैज्ञानिक एवं तर्कसम्मत मानी जाती है। इस सम्बन्ध में रॉबर्ट डहाल का मानना है- ''जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं बनाया जाता, तब तक लोक प्रशासन को विज्ञान मानने का दावा खोखला ही बना रहेगा।''

फैरेल हैडी ने तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति को चार रूपों में विभक्त किया है- सुधरी हुई पारम्परिक प्रकृति, विकासमान प्रकृति, सामान्य प्रकृति का प्रारूप और मध्यवर्ती सिद्धान्तों का प्रारूप।

इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन विभिन्न प्रशासनिक संस्थाओं तथा संगठनों के बीच परस्पर तुलना करने तथा विश्लेषित कर निष्कर्ष प्राप्त करने की प्रकृति रखता है। इसमें उन तथ्यों तथा समंकों को सर्वाधिक महत्व या प्राथमिकता प्रदान की जाती है जो सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए उत्तरदायी हैं अथवा वे समस्याएँ हैं जो सामाजिक-आर्थिक विकास के प्रतिफल स्वरूप उत्पन्न हुई हैं। सामान्य प्रणाली के प्रारूप से तात्पर्य है कि

सामाजिक परिवेश के अनुरूप ही प्रशासन तंत्र संचालित होता है, अतः एक ऐसा मॉडल या प्रारूप निर्मित किया जाता है जो सामान्य रूप से समाज एवं प्रशासन पर लागू किया जा सके। मध्यवर्ती सिद्धान्तों के प्रारूप से तात्पर्य उन सिद्धान्तों के पालन से है, जो सभी पक्षों पर व्यावहारिक रूप से लागू किए जा सकते हैं तथा जिनका तुलनात्मक एवं विश्लेषण परीक्षण किया जा सकता है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास के कारक जानने के बाद आइये अब इसके अर्थ को विस्तृत रूप में जानते हैं। सामान्य शब्दों में तुलनात्मक लोक प्रशासन से तात्पर्य ऐसे विषय से है, जिसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक प्रशासनिक इकाईयों की संरचना एवं कार्यात्मकता की तुलना की जाती है। ये तुलना विभिन्न प्रकार से की जा सकती है या यूँ कहें कि तुलना के प्रकार कुछ इस प्रकार से हो सकते हैं-

- संकर सांस्कृति अध्ययन- भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में कार्यरत प्रशासनिक संगठनों का अध्ययन।
- अन्तरा-सांस्कृतिक एवं संकर राष्ट्रीय- जब एक जैसी सांस्कृतिक व्यवस्था के दो देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अध्ययन किया जाता है।
- अन्तर्देशीय अध्ययन- इसके अन्तर्गत एक ही देश के दो राज्यों के मध्य प्रशासनिक संस्थाओं का अध्ययन किया जाता है। जैसे- महाराष्ट्र और गुजरात के सचिवालयों का अध्ययन।
- संकर सामयिक- दो अलग-अलग कालों की प्रशासनिक व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन करना संकर सामयिक अध्ययन कहलाता है। जैसे- मौर्यकालीन प्रशासन का मुगलकालीन प्रशासन से तुलनात्मक अध्ययन।
- संकर सांगठनिक- एक ही देश के मध्य नगरीय प्रशासन, वित्तीय प्रशासन, जिला प्रशासन आदि का अध्ययन।

इस प्रकार तुलना के विभिन्न स्वरूप स्पष्ट करते हैं कि, आधुनिक तुलनात्मक लोक प्रशासन का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। लोक प्रशासन में तुलनात्मक सम्बन्धी दृष्टिकोणों को दो वर्गों में रखा जा सकता है-

व्यापक दृष्टिकोण, इसमें विभिन्न संस्थाओं के परिवेशों में सरकारी अभिकरणों, व्यापारिक निगमों आदि का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

संकुचित दृष्टिकोण, यह दृष्टिकोण रिग्स से सम्बन्धित है। रिग्स तुलनात्मक शब्द को थोड़ा प्रतिबन्धित करते हुए उसे केवल आनुभाविक तथा सिद्धान्तपरक अध्ययनों तक सीमित रखना चाहते हैं। रिग्स ने लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन के रूप में तीन प्रकार की प्रवृतियों का वर्णन किया है- आदर्शात्मक से अनुभव सम्बन्धी उन्मुखता (Normative to Empirical), विशिष्टता से सामान्यपरकता अभिगम की ओर उन्मुखता (Ideographic to Nomothetic) और गैर-परिस्थितिकीय से परिस्थितिकीय (Non-Ecological to Ecological)।

1. **आदर्शात्मक से अनुभवमूलक उन्मुखता (Normative to Empirical)-** आदर्शात्मक अध्ययनों से तात्पर्य उन अध्ययनों से होता है, जिसमें प्रशासन द्वारा कुछ निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया जाता है। अर्थात् केवल सैद्धान्तिक नियमों की व्याख्या करने या केवल सैद्वान्तिक नियमों की व्याख्या करने या केवल आदर्शों की चर्चा करने के बजाय उन सब परिस्थितियों को महत्व दिया जाना चाहिये जो वास्तव में हमारे सामने हैं तथा प्रशासन को प्रभावित करती है। ये विश्लेषण ''क्या होना चाहिये'' के स्थान पर ''क्या है'' पर अधिक ध्यान देता है। अनुभवमूलक अध्ययनों में तथ्यों के संकलन पर अधिक बल दिया जाता है इसी कारण ''इसमें क्या है'' यह आधारित वाक्य होता है।

*लक्ष्य प्राप्त करने की आवश्यकता पर बल
*पारम्परिक एवं निर्देशात्मक

*प्रशासन

2. **विशिष्टता से सामान्यपरकता अभिगम की ओर उन्मुखकता(Ideographic to Nomothetic)-** ''इडियोग्राफिक'' तथा ''नोमोथेटिक'' शब्द विशेष रूप से रिग्स द्वारा रचित शब्द है। ''इडियोग्राफिक'' अध्ययन किसी एक विशेष ऐतिहासिक घटना, एक विशेष प्रशासनिक समस्या, एक विशेष संस्था, एक विशेष राष्ट्र, एक विशेष सांस्कृतिक-क्षेत्र अथवा एक विशेष जीवनी से सम्बन्धित होते हैं या यूँ कहा जा सकता है कि इन अध्ययनों में प्रशासनिक विश्लेषण की विषय-वस्तु कोई एक विशेष इकाई होती है। जबकि दूसरी ओर ''नोमोथेटिक'' अभिगम की विषय वस्तु गहन तुलनात्मक विश्लेषण पर आधारित होती है, और इसमें सदैव विशिष्टता की बजाय सामान्यता पर बल दिया जाता है या दूसरे शब्दों में यदि इस बात को समझना चाहें तो हम ये कह सकते हैं कि नोमोथेटिक (सामान्यपरकता) अध्ययन में उन तथ्यों को अधिक महत्व दिया जाता है जो सामान्यपरकता या व्यापकता लिये होते हैं। विशिष्टता की जगह सामान्यपरकता तभी आ सकती है, जब तुलनात्मक अध्ययन पर बल दिया जाये। इसके अध्ययन में गहन तुलनात्मक विश्लेषण पर आधारित सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया पर बल दिया जाता है। रिग्स का मानना था कि अब तुलनात्मक लोक प्रशासन अपने पारम्परिक ''इडियोग्राफिक'' रूप को छोड़कर ''नोमोथेटिक'' रूप धारण कर रहा है।

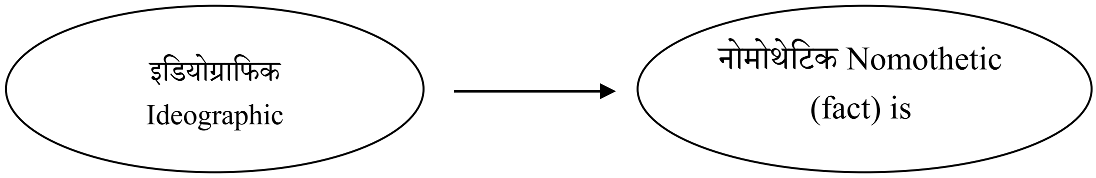

*इसमें अध्ययन मुख्यतः एक विशेष संस्था, एक विशेष राष्ट्र एवं विशेष सांस्कृतिक क्षेत्र, एक विशेष ऐतिहासिक घटना होता है।

*यह सामान्यीकरण तथा परिकल्पनाओं के निर्माण का प्रयास करता है।

3. **गैर-परिस्थितिकीय अध्ययन से परिस्थितिकीय अध्ययन की ओर उन्मुखकता (Non-Ecological to Ecological)-** रिग्स के अनुसार तीसरी प्रवृति परिस्थितिकीय परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित है। रिग्स का मानना था कि पारम्परिक अध्ययनों में प्रशासनिक संस्थाओं का विश्लेषण उनके आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि पर्यावरणों के सन्दर्भो में कम किया जाता था, अतः उनके अनुसार पर्यावरण के प्रशासन तथा प्रशासन के पर्यावरण पर पड़ने पर प्रभाव का विश्लेषण बहुत कम होता था। लेकिन अब धीरे-धीरे इस बात को स्वीकार किया जाने लगा है कि गतिशील पर्यावरणों में काम करने वाली प्रशासनिक संस्थाओं का वास्तविक व्यवहार उनकी परिस्थितिकी के सन्दर्भ के बिना नहीं समझा जा सकता। इसी कारण आधुनिक तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययनों में प्रशासन और उसके पर्यावरण के बीच होने वाली आपसी क्रियाओं का गहन विश्लेषण करने का प्रयास किया जाता है, या यूँ कहा जाये कि तुलनात्मक अध्ययनों में प्रशासनिक संगठनों का अध्ययन उसके बाहरी वातावरण एवं परिस्थितिकीय स्थितियों को ध्यान में रख कर किया जाता है तो कुछ गलत नहीं होगा।

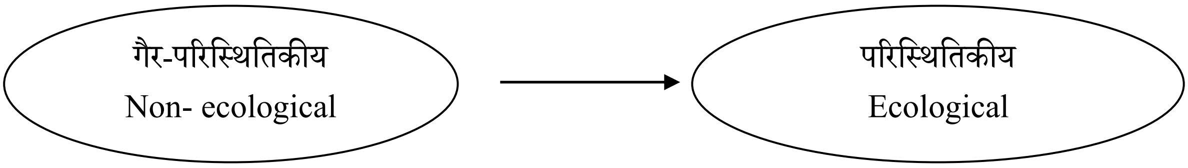

*प्रारम्भिक अध्ययन वाली स्थिति।
*प्रशासनिक संस्थाओं का विश्लेषण विभिन्न पर्यावरणों (आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि) के अन्तर्गत नहीं किया जाता था।
या
पर्यावरणीय कारकों का प्रशासनिक संस्थाओं पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन अनुपस्थित।

*प्रशासनिक संस्थाओं का वास्तविक व्यवहार परिस्थिति के संदर्भ के बिना नहीं समझा जा सकता है।
*आधुनिक तुलनात्मक प्रशासन में प्रशासन तथा उसके पर्यावरण के बीच होने वाली अन्तःक्रियाओं का विश्लेषण किया जाता है।

1.3.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के उद्देश्य

जैसा कि आपने अब तक तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ विभिन्न परिभाषाओं एवं विशेषताओं के आधार पर जाना, आप इस बात को भली भांति समझ गये होंगे कि तुलनात्मक प्रशासन विभिन्न प्रशासनिक संगठनों, संस्थाओं, अभिकरणों एवं विभागों की संरचनाओं तथा प्रक्रियाओं को समझता है ताकि विश्व स्तर पर या राष्ट्रीय स्तर पर कुछ ऐसे नियम बनाये जा सके जो पूरे प्रशासन को न केवल वैज्ञानिक आधार प्रदान करें बल्कि प्रशासन की समस्याओं के समाधान में भी सहायक हो सकें।
तुलनात्मक लोक प्रशासन के विभिन्न उद्देश्य हैं-

1. सभी प्रकार की प्रशासनिक समस्याओं, संरचना कार्यप्रणाली आदि का अध्ययन करके कुछ सामान्य नियमों और सिद्धान्तों की व्याख्या करना।
2. विभिन्न प्रशासनिक प्रणालियों की तुलनात्मक परिस्थिति को पहचानना एवं उनकी सफलताओं व असफलताओं के कारणों की जांच-पड़ताल करना।
3. लोक प्रशासन के अध्ययन से क्षितिज को व्यापक व्यवहारिक और वैज्ञानिक बनाना।
4. प्रशासनिक व्यवहारों में विभिन्न राष्ट्रों, संस्कृतियों, व्यवस्थाओं तथा पर्यावरण का विश्लेषण एवं व्याख्या करना।
5. प्रशासनिक सुधारों की कार्य नीति को समझना।

अतः यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन को समृद्ध, व्यापक और वैज्ञानिक बनाना ही तुलनात्मक लोक प्रशासन का उद्देश्य है।

1.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र

तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ समझने के बाद एक स्वभाविक सा प्रश्न ये उठता है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन किन-किन क्षेत्रों में किया जा सकता है? सामान्यतः लोक प्रशासन के अध्ययन का क्षेत्र विश्व के समस्त देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाऐं मानी जाती हैं, या यूँ कह सकते है कि, तुलनात्मक लोक प्रशासन एक विश्वव्यापी लक्षण बन चुका है। विश्व के हर देश में तुलनात्मक-क्षेत्र पर बल दिया जाने लगा है। तुलनात्मक

लोक प्रशासन का क्षेत्र उसकी तुलना करने की प्रकृति पर निर्भर करता है और तुलना का आधार उसके क्षेत्र को निश्चित करता है। इसके अध्ययन में निम्नलिखित बातों को सम्मिलित किया जा सकता है-

4. **सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत प्रशासन का अध्ययन-** तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत प्रशासन की निम्नलिखित बातों का अध्ययन किया जाता है- एक देश या संस्कृतिक की संरचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन, अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तः संस्कृति की संरचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन और विभिन्न राष्ट्र और संस्कृतियों की घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन।
5. **प्रजातांत्रिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन-** विभिन्न देशों की प्रजातांत्रिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन भी तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। इसमें इन संस्थाओं के कार्यों, गुण एवं महत्व आदि का अध्ययन किया जाता है जैसे उदाहरण के तौर पर भारत की प्रजातांत्रिक संस्थाओं की संयुक्त राज्य अमरीका या इंग्लैण्ड की ऐसी ही संस्थाओं के साथ तुलना किया जाना।
6. **प्रशासनिक नियंत्रण के विभिन्न साधनों का तुलनात्मक अध्ययन-** जिस प्रकार विभिन्न देशों की प्रजातांत्रिक संस्थाओं के गठन, कार्यों आदि का तुलनात्मक अध्ययन तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत माना है, उसी प्रकार विभिन्न देशों की कार्यपालिका, व्यवस्थापिक एवं न्यायपालिका प्रशासन पर नियंत्रण के किन साधनों का प्रयोग किया जाता है उन साधनों का तुलनात्मक अध्ययन भी इस विषय के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।
7. **कार्मिक-वर्ग की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन-** तुलनात्मक लोक प्रशासन अपने क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न देशों के कार्मिक-वर्ग के प्रशासन और उनकी विभिन्न समस्याओं के तुलनात्मक अध्ययन को भी समाहित करके रखता है। उदाहरण के लिये भारत एवं अमरीका के कार्मिक वर्ग के प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन।
8. **कार्यात्मक प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन-** तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में शिक्षा, समाज तथा आर्थिक प्रशासन आदि विभिन्न प्रकार के कार्यात्मक प्रशासनों का भी तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। उदाहरणर के तौर पर भारत व ब्रिटेन के शिक्षा प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन।
9. **अन्य प्रशासनों की तुलना-** तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र ना केवल उपरोक्त वर्णित पक्षों का तुलनात्मक अध्ययन समाहित करता है, बल्कि इसके अध्ययन में विदेशी प्रसाधन, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का प्रशासन, तुलनात्मक स्थानीय प्रशासन तथा मानव व्यवहार का भी तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

उपर्युक्त वर्णित तथ्य, तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र को समझने के लिये पर्याप्त प्रतीत होते हैं, परन्तु फिर भी यदि हम कुछ अन्य विद्वानों द्वारा तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र को देखें, तो पाते हैं कि उन्होंने इसे तीन स्तरों में विभाजित किया- वृहत्स्तरीय अध्ययन, मध्यवर्ती अध्ययन और लघुस्तरीय अध्ययन।

- **वृहत्स्तरीय अध्ययन-** सर्वप्रथम तुलनात्मक लोक प्रशासन का वृहत्स्तरीय अध्ययन आता है। इस अध्ययन में किसी एक देश की सम्पूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था का दूसरे देश की सम्पूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था के साथ तुलनात्मक अध्ययन का क्षेत्र शामिल किया जाता है। उदाहरण के तौर पर भारत की प्रशासनिक व्यवस्था का इंग्लैण्ड, जर्मनी आदि देशों की प्रशासनिक व्यवस्था से किया जाता है। इस अध्ययन में जब ''सम्पूर्ण'' क्षेत्र का तुलनात्मक अध्ययन करने की बात कही जाती है तो उसका अभिप्राय है कि तुलना किये जाने वाले राष्ट्रों के सभी प्रकार के पर्यावरण अर्थात् आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक पर्यावरणों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

- **मध्यवर्ती अध्ययन-** मध्यवर्ती तुलनात्मक अध्ययन क्षेत्र में दो देशों की सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था में से किसी एक बड़े अंग का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है, जैसे भारत और ब्रिटेन में नौकरशाही की तुलना, या भारत और अमरीका की स्थानीय सरकार का अध्ययन किया जाना। इस प्रकार के अध्ययन को मध्यवर्ती तुलनात्मक अध्ययन इसीलिये कहा जाता है, क्योंकि इसमें तुलना किये जाने वाले देशों की पूरी प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन नहीं किया जाता है और ना ही उन देशों के किसी सूक्ष्म अंग की तुलना की जाती है बल्कि प्रशासन के एक बहुत बड़े भाग की तुलना दूसरे देश की उसी सतर की प्रशासनिक व्यवस्था से की जाती है।
- **लघुस्तरीय अध्ययन-** सभी सामाजिक विज्ञानों में आजकल उपरोक्त दोनों अध्ययनों की अपेक्षा लघुस्तरीय अध्ययन अधिक प्रचलित होने लगा है और लोक प्रशासन इससे अछूता नहीं है। लघुस्तरीय अध्ययनों में किसी एक संगठन की दूसरे संगठन से तुलना की जाती है। सूक्ष्म अध्ययन प्रशासनिक प्रणाली के किसी छोटे (लघु) भाग का विश्लेषण होता है, अर्थात् इसमें अध्ययन का क्षेत्र छोटा और गहन होता है। उदाहरण के तौर पर भारत का दूसरे देशों के प्रशासनिक संगठनों की भर्ती या प्रशिक्षण प्रणाली का अध्ययन किया जाये। आजकल ऐसे अध्ययन अधिक प्रचलित भी हैं और इनको और उपयोगी भी माना जाता है।

1.5 तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व

अब तक आपने पढ़ा कि किस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणाऐं समय की बदली परिस्थितियों में पारम्परिक दृष्टिकोण की अपर्याप्तता के कारण उभर कर सामने आयी और लोक प्रशासन के विद्वानों ने लोक प्रशासन को परम्परागत दृष्टिकोण के संकुचित आवरण से निकाल कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण देने का प्रयास किया।

आज तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व व्यापक तौर पर स्वीकार कर लिया गया है। पिछले कुछ वर्षो में सामाजिक विज्ञानों में भी तुलनात्मक अध्ययन पर बल दिया जाने लगा है। विशेष तौर पर लोक प्रशासन को अधिकाधिक तौर पर वैज्ञानिक तथा उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिये तुलनात्मक लोक प्रशासन प्रभावशाली रूप से बहुत प्रयत्नशील रहा है। आज संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, भारत, जापान आदि देशों के महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को शामिल कर लिया गया है। सबसे पहले 1948 में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को स्वतंत्र रूप से कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में प्रारम्भ किया गया था और इसका श्रेय प्रो0 वाल्डो को जाता है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व इस बात से और भी ज्यादा बढ़ गया कि तुलना के बाद जो निष्कर्ष निकले उन्होंने तुलनात्मक लोक प्रशासन को और ज्यादा वैज्ञानिक बना दिया। विज्ञान के समान इसके सिद्धान्त विकसित हो गये हैं। अब तुलनात्मक लोक प्रशासन के कारण लोक प्रशासन में तुलना की जाती है, विश्लेषण किया जाता है और निष्कर्ष निकाले जाते हैं। दूसरा कारण टेलर का वैज्ञानिक प्रबन्ध रहा जिसकी अवधारणा ने इसे और अधिक वैज्ञानिक बना दिया है। इस प्रकार यदि हम ये कहते हैं कि तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व लोक प्रशासन के वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित अध्ययन के अर्थ में, शैक्षिक उपयोगिता के लिये तथा ऐसी अन्य प्रशासकीय प्रणालियों की जानकारी के लिये जो अन्य राष्ट्रों में होने वाले प्रशासनिक सुधारों व अन्य परिवर्तनों को उजागर करती है, के लिये है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के महत्व के सन्दर्भ में एक और तथ्य है, जिस पर इस सन्दर्भ में गौर किया जाना चाहिये वो है- प्रशासकीय राज्य की अवधारणा। आज के आधुनिक राज्य जिनका स्वरूप लोक कल्याणकारी है, उसमें राज्य के एक ऐसे स्वरूप ने जन्म लिया है। जिसमें प्रशासन का मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश इस हद तक

बढ़ गया है कि प्रशासन के असफल होते ही हमारी सभ्यता भी असफल हो सकती है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अन्तर्गत अब ये बात ज्यादा आसान हो गया है कि किसी भी विकासशील अथवा विकसित देश की प्रशासनिक प्रणाली का अध्ययन करके उसकी विशेषताओं को जाना जाये और ये देखा जाये कि क्या वे विशेषताऐं अपने देश के लिये उपयोगी हैं या नहीं, यदि हैं, तो उन्हें स्वीकार कर लिया जाये अन्यथा अस्वीकार।

विभिन्न देशों की सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक स्थितियों में भी बहुत अन्तर होता है और इसी कारण उनकी प्रशासनिक व्यवस्था में भी अन्तर पाया जाता है। प्रशासकीय सच्चाई का पता लगाने के लिये किसी भी देश के अन्दरूनी कारकों और उनके तुलनात्मक प्रभाव को समझना आवश्यक होता है। इन तुलनाओं के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों एवं विभिन्न पर्यावरणों के विषय में जानकारी प्राप्त की जाती है और ये जानने का प्रयास किया जाता है कि किस कारक का किसी प्रशासनिक व्यवस्था के किस अंग पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन इस दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है कि इस आधार पर यदि प्रशासन की तुलना की जाती है तो इससे प्रशासनिक ज्ञान में वृद्धि होती है और साथ ही समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिलती है।

विकासात्मक लोक प्रशासन के लिये भी तुलनात्मक लोक प्रशासन बहुत महत्वपूर्ण है। इसका कारण ये है कि दोनों का ही उदय लगभग द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुआ। इसको इस प्रकार से समझा जा सकता है कि अब विकासात्मक प्रशासन को अनेक नये विकास कार्यक्रमों एवं योजनाओं के सन्दर्भ में नयी-नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसके लिये प्रशासनिक सुधार और विकास दोनों आवश्यक हो जाते हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन के विद्वान विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक विवेचन करके ये बताने का प्रयास करते हैं कि विकास प्रशासन के लिये किस प्रशासकीय तकनीक को लागू किया जाये तथा कुशलता बढ़ाने के लिये प्रशासकीय संरचना में किस प्रकार के परिवर्तन किये जाये। तुलना के द्वारा प्राप्त निष्कर्ष विकास प्रशासन का मार्गदर्शन करते हैं।

लोक प्रशासन के विद्वानों द्वारा प्रशासनिक व्यवस्थाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण करके प्रशासकीय व्यवहार के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत करने जैसे विशेष उत्तर दायित्व को निभाने में भी तुलनात्मक लोक प्रशासन मदद करता है और महत्व पूर्ण बन जाता है। साधारण शब्दों में कहें तो लोक प्रशरासन के विद्वानों का ये विशेष उत्तर दायित्व होता है कि वे प्रशासनिक व्यवस्थाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण कर प्रशासकीय व्यवहार के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत करें। परन्तु ये विद्वान अपना ये उत्तरदायित्व तभी निभा सकते हैं जबकि वे प्रशासनिक संस्थाओं, व्यवस्थाओं व प्रक्रियाओं में जो विविधता या भिन्नता है इसका तुलनात्मक विश्लेषण करके न केवल स्वयं समझने का प्रयत्न करें बल्कि उस सम्बन्धित देश के प्रशासकों के लिये भी कुछ सुझाव प्रस्तुत करें। इसीलिये तुलना केन्द्र-बिन्दु बन गया है जो तुलनात्मक लोक प्रशासन को महत्वपूर्ण बनाता है।

इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन के महत्व को उपरोक्त वर्णन से समझने के पश्चात हम कुछ विद्वानों द्वारा तुलनात्मक लोक प्रशासन के महत्व के सम्बन्ध में दी गयी परिभाषाओं को भी देखते हैं, जिनसे तुलनात्मक लोक प्रशासन की महत्ता भली-भांति समझी जा सकती है।

विलियम ऐ0 सिफिन(W.A. Siffin)ने अपनी पुस्तक, "Towards the Comparative Study of Public Administration" में कहा गया है कि ''यदि विज्ञान मूलतः प्राविधि की बात है तो तुलनात्मक लोक प्रशासन का प्रमुख मूल्य यह है कि इसने वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया है।''

रॉबार्ट उसाल ने अपने निबन्ध, "The Science of Public Administration 1947" में तुलनात्मक लोक प्रशासन के महत्व को दर्शाते हुए कहा कि ''जब तक लोक प्रशासन के अध्ययन को तुलनात्मक नहीं बनाया जायेगा, तब तक वह विज्ञान नहीं बन सकता है।''

एडबर्ड शिल्स कहते हैं कि ''विभिन्न समाजों की व्यवस्थित तुलना करके उनकी समरूपता विलक्षणताओं को इंगित और स्पष्ट किया जा सकता है।''

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन की इस अवधारणा में राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन की दूरियों को कम किया है जो प्रशासन एवं नीति विज्ञान के कार्यानवयन के लिए आवश्यक भी है।

इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन के गुण/लाभ/महत्व को निम्न बिन्दुओं में सरलता से प्रदर्शित किया जा सकता है-

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन ने लोक प्रशासन के अध्ययन को अन्तर्विषयक बनाया।
2. तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा ही लोक प्रशासन के सार्वभौमिक सिद्धान्तों की रचना करना संभव हो सकी है या दूसरे शब्दों में प्रशासन के क्षेत्र में सामान्यीकरण को बढ़ावा दिया है।
3. इसके कारण सामाजिक अनुसंधान का क्षेत्र जो पूर्व में बहुत सीमित, संकीर्ण तथा स्थूल प्रकृति का था वो बहुत व्यापक तथा गहन हुआ है।
4. तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा अध्ययन पद्धति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया जाता है, जिसके कारण अध्ययन का एक व्यापक दृष्टिकोण उभर कर सामने आया है।
5. तुलनात्मक लोक प्रशासन ने ही विश्व के विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के मध्य तुलना आदि विश्लेषण को बढ़ावा दिया है, जिसमें एक-दूसरे के अनुभव से सीखा जा सकता है तथा कुछ सार्थक निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है।
6. इसके द्वारा विभिन्न देशों के मध्य प्रशासनिक विचार संस्थाऐं प्रशिक्षण की तकनीकी, नियम एवं प्रक्रियाओं का आदान-प्रदान होने लगा।
7. तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा विकास के लिये उत्तरदायी तत्वों की पहचान करना संभव हो सका, जो कि विकासशील देशों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।
8. तुलना के आधार पर प्रशासनिक संगठनों के आदर्श रूप और उपयोगी तरीकों की खोज सम्भव हो सकी है, जिन्होंने प्रशासन को अधिक कार्यकुशल, मितव्ययी और प्रभावशाली बनाने में योगदान दिया है।
9. तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा लोक प्रशासन के क्षेत्र को बहुत विस्तृत कर दिया गया है, क्योंकि इससे विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का उर्ध्वाधर एवं सामानान्तर अध्ययन किया जाने लगा है। इससे लोक प्रशासन के क्षेत्र को एक संगठन एक देश एवं एक संस्कृति से निकाल कर संकर(Hybrid) सांस्कृतिक, संकर राष्ट्रीय एवं संकर कालिक बनाया है।
10. विभिन्न देशों की संस्थाओं/संगठनों से प्राप्त ज्ञान का प्रयोग कर, प्रशासनिक व्यवस्थाओं की कार्यकुशलताओं में वृद्धि की जा सकती है।
11. उस पद्धति के कारण लोक प्रशासन के विद्यार्थियों, वैज्ञानिकों तथा प्रशासकों को दूसरे देशों की व्यवस्था को समझने में मदद मिलती है तथा ज्ञान का क्षेत्र भी व्यापक हुआ है।

इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन एक वैज्ञानिक प्रवृति की विश्वव्यापी अवधारणा है जो कुछ सामान्यीकृत सिद्धान्त विकसित करने को उत्सुक है।

अभ्यास प्रश्न-

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन का सम्बन्ध किससे है?
2. किस विद्वान तुलनात्मक लोक प्रशासन से सम्बन्धित नहीं है?
3. तुलनात्मक लोक प्रशासन किस बात पर बल देता है?
4. ''द इकोलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन'' के लेखक कौन हैं?

1.6 सारांश

प्रस्तुत अध्याय से आप ये जान गये होंगे कि तुलनात्मक लोक प्रशासन, लोक प्रशासन के ज्ञान की एक नयी शाखा है तथा परम्परागत लोक प्रशासन से सर्वथा भिन्न है। तुलनात्मक लोक प्रशासन एक नवीन अवधारणा है जो दो या अधिक प्रशासनों के अध्ययन पर बल देती हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा विभिन्न देशों तथा स्तरों पर प्रवर्तित प्रशासनिक सुधारों की कार्यनीति को समझने तथा लोक प्रशासन के क्षितिज को अधिक व्यापक, वैज्ञानिक और व्यवहारिक बनाने का प्रयास किया जाता है। एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स ने लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन के क्रम में तीन प्रकार की प्रवृत्तियों का वर्णन किया जो ''क्या होना चाहिये'' के स्थान पर ''क्या है'' पर बल देती है तथा विशिष्टता अर्थात् किसी एक संगठन व्यक्ति या समाज के अध्ययन के स्थान पर इन तथ्यों को अधिक महत्व देती हैं जो सामान्यपरकता या व्यापकता लिये होते हैं। साथ ही रिग्स ने तीसरी प्रवृत्ति के रूप में बल दिया कि, लोक प्रशासन को प्रभावित करने वाले सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा भौगोलिक पर्यावरण का भी गहनता से अध्ययन किया जाना चाहिये।

तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र विश्वव्यापी है। ये दो या अधिक देशों के सम्पूर्ण प्रशासकीय ढाँचे का वृहद स्तर या किसी एक देश के प्रशासनिक-तन्त्र के किसी एक भाग का दूसरे देश के उसी भाग से मध्य स्तरीय या लघु अर्थात् किसी एक इकाई की एक समस्या, कार्यप्रणाली, प्रक्रिया आदि का सूक्ष्म अध्ययन करता है। इस दृष्टि से आज के युग में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययनों ने प्रशासन के क्षेत्र में सिद्धान्त निर्माण तथा सामान्यीकरण को बढ़ावा दिया है तथा इस पद्धति के कारण न केवल विभिन्न देशों के मध्य तुलना व विश्लेषण कर उनके अनुभव से सीखने में मदद मिली, बल्कि इस अध्ययन पद्धति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाये जाने के कारण विषय का क्षितिज विस्तृत हुआ है।

1.7 शब्दावली

मान्यताऐं- स्वीकृत बात; तथ्य, अवरोधी- रोकने वाला, संकुचित- संकीर्ण, तंग, सँकरा, यथार्थ- सत्य जैसा होना चाहिए, परिवेश- वातावरण, माहौल, सामयिक- समायानुसार, वर्तमान समय का, आनुभविक- अनुभव, प्रयोग आदि के आधार पर प्राप्त होने वाला, सिद्धान्तपरक- वह सिद्धान्त तथा कार्य जिसमें परम्पराबद्ध सिद्धान्त या मत को सार्थक माना जाता है, गतिशील- उन्नतिशील, चलने वाला, क्रियाशील, घटक- किसी घटना, रचना या किसी परिणाम में अहम् भूमिका निभाने वाला आधार-तत्व, समाहित - एकत्र किया हुआ, संग्रहित।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. प्रशासनिक व्यवस्थाओं, प्रशासनिक नियमों व प्रशासनिक संस्कृति की तुलना से, **2.** वुडरो विल्सन, **3.** परिस्थिति कारकों, सामान्यीकरण व अनुभवमुलता पर, **4.** फ्रेड रिग्स

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर- 2013
2. डॉ0 आनन्द अवस्थी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
3. टी0 एन0 चतुर्वेदी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन- 1995

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. रमेश के0 अरोड़ा, तुलनात्मक लोक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
2. एम0 पी0 शर्मा, बी0एल0 सदाना, हरप्रीत कौर, लोक प्रशासन-सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल, इलाहाबाद-2015
3. अनिल गुप्ता, महिपाल चारण हिलोडी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर- 2005

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन की परिभाषा दीजिये तथा आधुनिक समय में इसकी प्रकृति एवं क्षेत्र की व्याख्या कीजिये।
2. तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र एवं महत्व की विवेचना कीजिये।
3. उन तत्वों की विवेचना कीजिए जिनके फलस्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात तुलनात्मक लोक प्रशासन का विकास हुआ।

इकाई- 2 तुलनात्मक लोक प्रशासन: अध्ययन के दृष्टिकोण

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 दृष्टिकोण का अभिप्राय एवं उपयोगिता
2.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का परम्परागत दृष्टिकोण
2.3.1 कानूनी दृष्टिकोण
2.3.2 ऐतिहासिक दृष्टिकोण
2.3.3 विषय-वस्तु दृष्टिकोण
2.3.4 राजनीतिक दृष्टिकोण
2.3.5 वैज्ञानिक दृष्टिकोण
2.3.6 संस्मरणात्मक दृष्टिकोण
2.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का अर्वाचीन दृष्टिकोण
2.4.1 संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण
2.4.1.1 प्रकार्य एवं संरचनाऐं
2.4.1.2 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की विशेषताऐं
2.4.1.3 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के प्रमुख तत्व
2.4.1.4 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की आलोचनाऐं एवं सीमाऐं
2.4.2 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण
2.4.2.1 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण की विशेषताऐं
2.4.2.2 परिस्थितिकी उपागम की आलोचना या सीमाऐं
2.5 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का व्यवहारवादी दृष्टिकोण
2.5.1 व्यवहारवाद का विकास
2.5.2 व्यवहारवाद की विशेषताऐं
2.5.3 व्यवहारवादी दृष्टिकोण के लोक प्रशासन पर प्रभाव
2.5.4 व्यवहारवादी दृष्टिकोण की आलोचना
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

ज्ञान के अध्ययन की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन किस प्रकार से किया जाये ये उस विषय की प्रकृति पर निर्भर करता है। विज्ञान व सामाजिक विज्ञान दोनों में ही अध्ययन की विभिन्न पद्धतियों का अध्ययन किया जाता है। विज्ञान का अभिप्राय ही तथ्यों पर आधारित क्रमबद्ध अध्ययन होता है अर्थात् विज्ञान सामान्य बातों को भी बिना

तर्कों तथा सत्यों के आधार पर परीक्षण किये बिना स्वीकार्य नहीं करता है और सिद्धान्त का निर्माण भी नहीं कर सकता है। वहीं दूसरी ओर हम सामाजिक विज्ञान की बात करें तो हम पाते हैं कि सामाजिक विज्ञान मानव व्यवहार से जुड़े होते हैं अतः इनके अध्ययन के लिये कोई एक दृष्टिकोण पर्याप्त नहीं हो सकता है, उन्हें सभी सम्भव दृष्टिकोणों का अध्ययन करके ये देखना होता है कि वे किस दिशा में और किस परिणाम की ओर ले जाते हैं। लोक प्रशासन भी सामाजिक विज्ञान का एक ऐसा ही विषय है जिसके सिद्धान्त पूरी तरह से प्राकृतिक विज्ञानों जैसे नहीं होते हैं जिनका परीक्षण किया जा सकता है। लोक प्रशासन को विज्ञान की तरह विकसित करने, इनके सिद्धान्तों तथा मान्यताओं का परीक्षण करने एवं इस विषय का विधिवत् अध्ययन करने के लिये कुछ दृष्टिकोण अपनाये गये हैं। इस अध्याय में हम तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये प्रचलित सभी दृष्टिकोणों या उपागमों का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोक प्रशासन के अध्ययन में प्रचलित विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों को जान पायेंगे।
- विभिन्न दृष्टिकोणों की विशेषताऐं व विषय में उनके अध्ययन की प्रासंगिकता को भी भली-भाँति समझ पायेंगे।

2.2 दृष्टिकोण का अभिप्राय एवं उपयोगिता

जैसा कि इस इकाई की प्रस्तावना में आपने पढ़ा कि लोक प्रशासन एक सामाजिक विज्ञान है और यह मानव व्यवहार तथा समाज से जुड़ा है। मानव व्यवहार एवं समाज से जुड़े व्यवहारों के सिद्धान्त पूर्णतया प्राकृतिक विज्ञानों जैसे नहीं होते हैं और इनका परीक्षण, प्राकृतिक विज्ञानों की भांति प्रयोगशालाओं में नहीं किया जा सकता है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या सामाजिक विज्ञानों के लिये कोई नियम विकसित किये जा सकते हैं या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर है कि, चूँकि मानव की बौद्धिक समस्याऐं बहुत विकसित जटिल और अस्थिर प्रकृति की होती हैं तो ऐसे में सिद्धान्त व नियम निर्धारण में बाधाऐं तो आती हैं, लेकिन फिर भी कुछ नियम ऐसे होते हैं जो समाज विज्ञानों में भी विकसित किये जाते हैं। सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन के लिये कुछ विशेष प्रकार की अध्ययन पद्धति या दृष्टिकोण(Approach) या उपागम अपनाये जाते हैं।

दृष्टिकोण का अर्थ होता है मानकों का एक ऐसा समूह जिसके आधार पर सैद्धान्तिक विचार-विमर्श के लिये प्रश्न और आधार सामग्री लेने या छोड़ने का निर्णय लिया जाता है। इसी बात को यदि सरल भाषा में समझना चाहें तो ये कहा जा सकता है कि दृष्टिकोण या उपागम या वैचारिक प्रतिमान से तात्पर्य उस मार्ग या विधि-प्रणाली से है जो किसी लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होती है। ये उपागम भी आसानी से तैयार नहीं होते बल्कि बहुत लम्बे अध्ययनों, शोधों तथा विश्लेषणों के बाद ही निर्मित हो पाते हैं।

एलवुड ने समाज विज्ञानों के लिये वैज्ञानिक पद्धति का महत्व बताते हुए कहा था कि ''जीव विज्ञान के लिये जो महत्व सूक्ष्मदर्शी का, खगोल विज्ञान के लिये जो उपयोग दूरबीन का है; वही उपयोग और महत्व समाज विज्ञानों के लिये 'वैज्ञानिक पद्धति' का है।''

यही वैज्ञानिक पद्धतियां, उपागम या अभिगम या दृष्टिकोण कहलाती है। इस सम्पूर्ण वर्णन के बाद उपागम या दृष्टिकोण शब्द की कुछ सामान्य सी विशेषताऐं इंगित की जा सकती हैं-

1. उपागम या दृष्टिकोण अध्ययन विधि को सरल और नियंत्रित बनाते हैं।
2. ये किसी भी अध्ययन को दिशा से भटकने व उसके मार्ग में आने वाली बाधाओं से बचाते हैं।

3. उपागमों के आधार पर ही ना केवल पुराने सिद्धान्तों का परीक्षण सम्भव हो पाता है, बल्कि नये-नये सिद्धान्तों का निर्माण भी किया जा सकता है।
4. उपागम ही विषय को वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं।
5. ये उपागम या दृष्टिकोण ही किसी भी विषय को प्रमाणिकता और विश्वसनीयता प्रदान करते हैं।

इस प्रकार अब तक के सम्पूर्ण विवरण के बाद आप ये समझ ही गये होंगे कि समाज विज्ञान के विभिन्न विषयों जिसमें लोक प्रशासन भी शामिल है, में किसी एक लक्ष्य तक पहुँचाने में जो प्रणाली या मार्ग या विधि सहायक सिद्ध होती है वो उपागम या दृष्टिकोण कहलाता है। इन दृष्टिकोणों के माध्यम से ही उस विषय का विद्यार्थी अनुसंधान की दृष्टि से विषय को समझ सकता है और उस विषय की व्याख्या भी उसी दृष्टिकोण से कर सकता है।

दृष्टिकोण का अगला चरण सिद्धान्त कहलाता है। जब दृष्टिकोण का कार्य विचाराधीन विषय के बारे में समस्याओं और आधार सामग्री के चुनाव से आगे निकल जाता है, तब दृष्टिकोण सिद्धान्त का रूप धारण कर लेता है। सिद्धान्त वे प्रस्थापनाऐं हैं, जिनसे किसी वस्तु की व्याख्या करने का प्रयास किया जाता है। अर्थात् सिद्धान्त का मुख्य कार्य व्याख्या करना है।

दृष्टिकोण या उपागम शब्द का अभिप्राय समझने के पश्चात, आइये अब तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये दृष्टिकोणों की आवश्यकता, उपयोगिता और प्रकार आदि पर विस्तृत चर्चा करते हैं।

जैसा कि आप जानते हैं कि, लोक प्रशासन का अध्ययन एक पृथक विषय के रूप में सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमरीका में प्रारम्भ हुआ था। सन् 1887 में वुडरो विल्सन द्वारा, ''प्रशासन का अध्ययन''(A Study of Administration) पर लिखा गया एक निबन्ध प्रकाशित हुआ, जिसे इस अध्ययन क्षेत्र की प्रथम युग प्रवर्तक घटना माना जाता है। इस समय तक लोक प्रशासन से सम्बन्धित अवधारणाऐं व व्याख्याऐं राजनीति विज्ञान विषय के साथ पढ़ाई जाती थी। विल्सन के इस निबन्ध की विषय-वस्तु का उद्देश्य प्रशासन को राजनीति से अलग एक स्वतंत्र विषय के रूप में प्रतिष्ठित करना था। प्रो0 वाल्डो ने भी वुडरो विल्सन को एक विधा के रूप में लोक प्रशासन का जनक माना और यह नितान्त सही है। लोक प्रशासन को राजनीति विज्ञान से पृथक अध्ययन के रूप में प्रतिष्ठित करने में एल0 डी0 व्हाइट की रचना 'Introduction to the study of Public Administration' का महत्वपूर्ण योगदान है। इस पुस्तक में एल0 डी0 व्हाईट ने लोक प्रशासन की कार्यविधियों, अवधारणाओं, नियमों तथा सिद्धान्तों को सशक्त रूप से प्रस्तुत किया। अर्थात् प्रारम्भिक काल में शासन और प्रशासन के मध्य गहन सम्बन्ध को पृथक करके नहीं देखा गया था, लेकिन कालान्तर में प्रशासनिक सिद्धान्तों, प्रक्रियाओं तथा कार्यप्रणाली को राजनीति विज्ञान से पृथक करके देखा जाने लगा और इस विषय को एक सैद्धान्तिक मान्यता मिलने में सहायता प्राप्त हुई। चूँकि लोक प्रशासन एक सामाजिक विज्ञान है और लोक सेवक सामाजिक व्यवहार से प्रभावित होते हैं। अतः लोक प्रशासन के अध्ययन से सम्बन्धित उपागम भी अन्य सामाजिक विज्ञानों, जैसे राजनीति विज्ञान तथा समाजशास्त्र इत्यादि में प्रचलित उपागमों से प्रभावित है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन अपेक्षाकृत एक नवीन विषय है और प्रारम्भ में हर नये विषय और स्वतंत्र विषय के सामने महत्वपूर्ण समस्या यह उत्पन्न होती है कि, तुलना का क्षेत्र क्या होना चाहिये? तथा अध्ययन के प्रति क्या दृष्टिकोण अपनाया जाये? ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के अध्ययन के लिये दो पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है- आगमनात्मक (Inductive) निगमनात्मक(Deductive) पद्धति।

आगमनात्मक पद्धति के अन्तर्गत हम विशेष वस्तु का विश्लेषण, पर्यवेक्षण तथा परीक्षण करने के बाद सामान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। अर्थात् विशेष से सामान्य की ओर अग्रसर होते हैं तथा निगमनात्मक पद्धति में हम सामान्य से विशेष की ओर अग्रसर होते हैं।

सामान्यतया सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन के लिये कोई भी एक दृष्टिकोण पर्याप्त नहीं हो सकता। उन्हें सभी सम्भव दृष्टिकोणों का अध्ययन करके ये देखना होता है कि, वे उसे किस दिशा में और किस परिणाम की ओर ले

जाते हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन की विचारधारा आगमनात्मक(Inductive) प्रकृति की है, जिसमें विशेष से सामान्य की ओर बढ़ने का प्रयास किया जाता है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये अनेक उपागम प्रचलित है, लेकिन इसके साथ भी, यही समस्या उत्पन्न होती है कि, अध्ययन के प्रति क्या दृष्टिकोण अपनाया जाये? प्रारम्भ में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये उन परम्परागत दृष्टिकोणों को अपनाने का प्रयास किया गया जो लोक प्रशासन के अध्ययन में अपनाये जा रहे थे। किन्तु शीघ्र ही इन दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता स्पष्ट हो गयी। और अब विषय को अधिक प्रयोगात्मक अनुभवपूरक और व्यवहारिक बनाने के लिये ऐसे दृष्टिकोणों की खोज प्रारम्भ हुई जो व्यापक और गहन हो, जिनमें विशेषीकरण के साथ-साथ व्यवस्था की समग्रता का ज्ञान हो सके तथा अध्ययन विषय की विभिन्नताओं के सन्दर्भ में आँका जा सके। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के दृष्टिकोणों को मूल रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है-

- परम्परागत दृष्टिकोण(Traditional Approach)
- अर्वाचीन दृष्टिकोण(Contemporary Approach)

इन दोनों दृष्टिकोणों के बारे में विस्तार से विवेचन करने से पहले आइये एक आरेख के द्वारा इन पर एक दृष्टि डाल ली जाये-

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के दृष्टिकोण

- परम्परागत दृष्टिकोण
  - कानूनी दृष्टिकोण
  - ऐतिहासिक दृष्टिकोण
  - विषय-वस्तु दृष्टिकोण
  - राजनीतिक दृष्टिकोण
  - वैज्ञानिक दृष्टिकोण
  - जीवन-वृत्तात्मक दृष्टिकोण
- अर्वाचीन दृष्टिकोण
  - संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण
  - परिस्थितिकीय दृष्टिकोण
  - व्यवहारवादी दृष्टिकोण

*इनका विस्तृत अध्ययन आगे के पृष्ठों में किया जा रहा है।

2.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का परम्परागत दृष्टिकोण

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विभिन्न उपागमों के बारे में दर्शाये गये आरेख के आधार पर हम सबसे पहले परम्परागत दृष्टिकोण को विस्तार से जानेंगे।

जैसा कि इस दृष्टिकोण के नाम से ही परिलक्षित होता है कि, ये प्रारम्भिक रूप में उपस्थित लोक प्रशासन के विचारकों का दृष्टिकोण है, इसीलिये ये परम्परागत(Traditional) दृष्टिकोण कहलाता है। इस दृष्टिकोण को परम्परागत दृष्टिकोण के अतिरिक्त अन्य कई नामों से भी जाना जाता है जैसे- संगठनात्मक, वैधानिक, ऐतिहासिक, औपचारिक, विशुद्ध, विचारात्मक और वर्णनात्मक दृष्टिकोण(structural, legal, historical, formal, normative, descriptive and perspective approach)। इस दृष्टिकोण का समर्थन करने वाले प्रमुख समर्थक हैं- व्हाइट, विलोबी एवं एण्डरसन आदि।

परम्परागत दृष्टिकोण की मान्यता है कि लोक प्रशासन की मूल समस्याऐं संगठन के कानूनी ढ़ाँचे से जन्म लेती हैं, जो संगठन के अन्तर्सम्बन्धों को, औपचारिकता से प्रस्तुत कर उसकी समस्याओं को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करती हैं। इस दृष्टिकोण के समर्थक संगठन के सिद्धान्त, संगठनों की विविधताऐं एवं ''संगठन को क्या चाहिये'' आदि प्रश्नों को आधार बनाकर चले हैं। परम्परावादी दृष्टिकोण की कुछ विशेषताऐं हैं, जिसमें कार्यकुशलता के मूल्य पर आधारित वर्णन प्रधान दृष्टिकोण, कानूनी दृष्टिकोण, राजनीतिक दृष्टिकोण, ऐतिहासिक दृष्टिकोण, प्रबन्धात्मक दृष्टिकोण, संस्थागत दृष्टिकोण आदि के आधार पर अध्ययन किया जाता था। इस प्रकार परम्परावादी दृष्टिकोण की ये विशेषताऐं बताती हैं कि यह दृष्टिकोण कानूनी, संरचनात्मक, औपचारिक, विचारात्मक और वर्णनात्मक था। अर्थात् इसका पूरा अध्ययन संस्थाओं के ईद-गिर्द घूमता है और संस्थाओं के बाहर देखने का प्रयास नहीं किया जाता है। इस दृष्टिकोण के लेखकों ने प्रत्यायोजन, पर्यवेक्षण, नियन्त्रण के क्षेत्र, नौकरशाही आदि का इस प्रकार विवेचन किया है, जैसे कि वे ही संरचना के ढ़ाँचे के सब कुछ हैं और उनमें परिवर्तन करके संगठन तथा प्रशासन को सर्वश्रेष्ठ बनाया जा सकता है। गुलिक, उर्विक, फेयोल आदि लेखकों ने अपने संगठनों के ग्राफ व मानचित्र प्रस्तुत किये हैं, जिनकी आलोचना भी हुई है।

परम्परागत दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये जो दृष्टिकोण अपनाये जाते रहे है उनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार है-

2.3.1 कानूनी दृष्टिकोण

लोक प्रशासन के अध्ययन के सम्बन्ध में कानूनी दृष्टिकोण का प्रयोग जर्मनी, बेल्जियम, फ्रांस आदि देशों में हुआ। इस दृष्टि के अनुसार प्रशासनिक संस्थाओं का अध्ययन कानूनी दृष्टि से किया जाता है। अर्थात् ये जानने का प्रयास किया जाता है कि इस संस्था के सम्बन्ध में कानून में क्या व्यवस्था है, कानून द्वारा इसे क्या शक्तियां प्राप्त हैं तथा इसकी क्या सीमाऐं हैं? और ऐसे ही कुछ और प्रश्नों का उत्तर ढूंढने का प्रयास किया जाता है। परम्परावादी दृष्टिकोण मुख्य रूप से कानूनी ही है जिसमें ये देखने पर बल दिया जाता है कि, कानून व्यक्ति के व्यवहार को किस प्रकार और किस सीमा तक प्रभावित करते हैं। वुडरो विल्सन ने भी कहा कि लोक प्रशासन विधि का ही क्रमबद्ध अध्ययन है। कानून के दो भाग होते हैं- संवैधानिक कानून एवं प्रशासनिक कानून। संवैधानिक कानून का उद्देश्य मौलिक रूप से सरकार के तीनों अंगों का पृथक-पृथक रूप से अध्ययन करना तथा उनके सम्बन्धों की व्यापक व्याख्या करना होता है। सरल शब्दों में संवैधानिक कानून में राजनीति के अध्ययन के साथ-साथ सरकार और उस के अंगों का अध्ययन भी किया जाता है, वहीं दूसरी ओर प्रशासकीय कानून में राज्य, जिले, स्थानीय शासन की संस्थाओं, सार्वजनिक निगमों, सत्ता तथा दायित्वों आदि का वर्णन किया जाता है। अमरीका तथा इंग्लैण्ड में भी अब इस दृष्टिकोण या पद्धति का उपयोग बढ़ रहा है। लोक प्रशासन को देश-काल के कानूनी ढ़ाँचे में काम करना होता है अतः उस ढ़ाँचे पर प्रकाश डालने के लिये कानूनी दृष्टिकोण उपयोगी साबित होता है। फिर भी इस दृष्टिकोण का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें सामाजिक, मनौवैज्ञानिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की उपेक्षा कर दी गयी है। एफ0जे0 गुडनाऊ इस दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थक थे।

2.3.2 ऐतिहासिक दृष्टिकोण

ये दृष्टिकोण समाजशास्त्रों के अध्ययन की एक बड़ी ही परम्परागत विधि है। इसमें अध्ययन के क्षेत्र विशेष की संस्थाओं के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन किया जाता है। पोलक के अनुसार ऐतिहासिक प्रणाली 'संस्थाऐं क्या हैं' और 'क्या रूप ले रही हैं' जैसे प्रश्नों की व्याख्या इस दृष्टि से करती हैं कि 'वे क्या थीं' और 'क्या बन गयी हैं' और वे ऐसी 'कैसे बनी'? अर्थात् इस प्रणाली में हमें ना केवल भूतकाल की व्याख्या प्राप्त होती है बल्कि हमें भविष्य के विवेचन के लिये भी कुछ बुनियादी सिद्धान्त प्राप्त हो जाते हैं। इसका सबसे बड़ा सकारात्मक पक्ष ये

है कि, मनुष्य पिछले अनुभवों से लाभ भी उठा सकते हैं और चूँकि हर देश का प्रशासन प्राचीन मान्यताओं, व्यवस्थाओं और परम्पराओं से प्रभावित रहता है, अतः वे इसके व्यवस्थित तथा तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास भी कर सकते हैं। अतीत एवं वर्तमान की योजनाओं तथा प्रक्रियाओं में तुलनात्मक खोज के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष हमें अनेक दोषों से बचा सकते हैं। इस प्रकार इसका लाभ यह है कि मनुष्य पिछले अनुभव से लाभ उठा सकता है। इतिहास हमारी सभी उपलब्धियों और सफलताओं का लेखा-जोखा है, हमें प्रेरणा देता है, हमारा मार्गदर्शन करता है और हमें सजग और सावधान बनाता है। शैक्षिक स्तर पर राजनीतिक और प्रशासनिक अध्ययनों का ऐतिहासिक होना और भी आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना वो शिक्षा अधूरी है।

2.3.3 विषय-वस्तु दृष्टिकोण

यह दृष्टिकोण लोक प्रशासन की किन्हीं सामान्य तकनीकों का अध्ययन करने की बजाय उसकी विशेष सेवाओं तथा उसके कार्यक्रमों के व्यक्तिशः अध्ययन पर बल देती है। उदाहरण के तौर पर शिक्षा, प्रतिरक्षा, पुलिस, राजस्व निर्धारण एवं संग्रह, आदि विशिष्ट विभाग पृथक-पृथक रूप से अध्ययन की विषय-वस्तु बनते हैं। भारत और इंग्लैण्ड में इस पद्धति का प्रयोग इन विशेष सेवाओं के अध्ययन के लिये काफी समय से किया जा रहा है। इस अध्ययन दृष्टिकोण में निहित दर्शन यह है कि, संगठन और प्रशासन ऐसे माध्यम हैं जिनसे किसी लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। इस प्रकार इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत हम ये पाते हैं कि लोक प्रशासन की समस्याओं पर आंशिक दृष्टि से विचार किया जाता है तथा विषय-वस्तु एवं 'पोस्डकॉर्ब' का सामंजस्यपूर्ण अध्ययन होता है। परम्परागत दृष्टिकोण में कार्यकुशलता तथा वर्णन प्रधान को प्राथमिकता दी जाती है।

2.3.4 राजनीतिक दृष्टिकोण

प्रशासन एक प्रशासकीय प्रक्रिया है। प्रशासन राजनीतिक संरचना में ही काम करता है। प्रशासन स्वयं कोई साधन नहीं है बल्कि एक साध्य मात्र है। अतः अच्छे प्रशासन की आवश्यकताओं को राजनीतिक व्यवस्था में ही ढूंढना उचित होगा। प्रशासकीय समस्याऐं सदैव से ही राजनीतिक समस्याओं का अंग होती है। अतः ये आवश्यक है कि प्रशासनिक समस्याओं का राजनीतिक दृष्टि से अध्ययन करा जाये। इस प्रकार राजनीति और प्रशासन का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। आज प्रत्येक वस्तु-विषय और घटना का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध राजनीति से है, अतः लोक प्रशासन को भी इस विषय के अनुसार ही देखने की आवश्यकता है। विधि-निर्माण के कार्य में लोक प्रशासन और राजनीति दोनों समीप दिखायी देते हैं और इस बात को भी स्वीकार करना होना कि सरकार या प्रशासन के कार्य राजनीतिक परिस्थितियों और मान्यताओं से अनुप्रेरित होते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रशासनिक विषय के विवेचन में राजनीतिक पृष्ठभूमि और सन्दर्भ के आधार पर अध्ययन किया जाता है।

2.3.5 वैज्ञानिक दृष्टिकोण

यह एक बहुत ही आधुनिक एवं महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है। अमरीका में वैज्ञानिक व्यवस्थापन आन्दोलन के फलस्वरूप प्रशासन के अध्ययन में भी वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग विगत कई वर्षों से किया जा रहा है। इस दृष्टिकोण में ऐसा माना जाता है कि जिस प्रकार भौतिक-विज्ञान का प्रयोग द्वारा अध्ययन किया जाता है, ठीक उसी प्रकार प्रशासन की समस्याओं का अध्ययन भी वैज्ञानिक पद्धतियों और मान्यताओं के अनुसार किया जाना चाहिये। लोक प्रशासन के सम्बन्ध में वैज्ञानिक प्रबन्ध पद्धति के प्रयोग का अर्थ होता है कि हम किस सीमा तक पर्यवेक्षण, प्रयोग व विश्लेषण को अपनाकर कुछ सामान्य सिद्धान्तों का निरूपण कर सकते हैं कि जिनका सामान्य रूप से उसी प्रकार की स्थिति में प्रयोग किया जा सके। लोक प्रशासन में इस पद्धति को लोकप्रिय बनाने का श्रेय फ्रेडरिक टेलर को हैं। टेलर ने प्रशासकीय समस्याओं के अध्ययन के लिये भी समयपरक कार्य तथा माप-सारणी

का उपयोग करके इसे एक नवीन मोड़ दिया। तकनीकी दृष्टिकोण के फलस्वरूप प्रशासन को एक स्वतंत्र प्रक्रिया समझा जाने लगा, जिसका उद्देश्य कार्यकुशलता तथा मितव्ययता है। ये प्रक्रिया लोक तथा निजी प्रशासन में समान रूप से निहित है। टेलर ने यही कहा कि निजी उद्योग के क्षेत्र और लोक प्रशासन के क्षेत्र में कार्यकुशलता सम्बन्धी समस्याऐं एक जैसी हैं। उनमें कोई मौलिक भिन्नताऐं नहीं पायी जाती है। अतः इन दोनों ही क्षेत्रों (निजी एवं लोक) में समान सर्वोतम तरीके खोजे जा सकते हैं। इस प्रकार प्रत्येक प्रकार के कार्यक्रम के प्रबन्ध के लिये सर्वोत्तम मार्ग वैज्ञानिक आधार पर खोजे जा सकते हैं। अमरीका में यह विचार बड़ी तेजी के साथ समर्थन प्राप्त करता जा रहा है कि लोक प्रशासन में कर्मचारियों की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिये, निजी प्रशासन की भांति, वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा का प्रयोग किया जा सकता है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध पद्धति का पर्याप्त महत्व होते हुए भी, इस आधार पर इसकी आलोचना की गयी है कि इसमें मानवीन तत्व के महत्व की उपेक्षा कर दी गयी है।

2.3.6 संस्मरणात्मक दृष्टिकोण

प्रशासन के ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मिलता-जुलता ही संस्मरणात्मक दृष्टिकोण है। इसका अर्थ है प्रसिद्ध अथवा वरिष्ठ प्रशासकों के अनुभवों तथा उनके कार्यों के अभिलेख के अध्ययन की प्रणाली। अर्थात् प्रसिद्ध अथवा वरिष्ठ प्रशासकों ने अपने अनुभव, संस्मरण या कार्यो के अभिलेख चाहे स्वयं लिखे हों अथवा दूसरों ने, उनके अध्ययन की प्रणाली ही जीवन-वत्तात्मक दृष्टिकोण कहलाता है। ये संस्मरण हर स्थिति में ऐसे होते हैं, जिन्हें पढ़कर प्रशासकीय समस्याओं तथा निर्णय की प्रक्रिया का वास्तविक और व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त होता है। हमारे देश में जीवन-वृत्त या संस्मरण लिखने की परम्परा इतनी विकसित नहीं है, जितनी की ये इंग्लैण्ड या अमरीका में है। अभी कुछ वर्षों में बनर्जी की, ‘‘Under the Two Masters’’ धर्मवीर की ‘‘The Memories of a Civil Servant’’ कौल की ‘‘The Untold Story’’ गाडानिल की ‘‘Government From Inside’’ आदि इस श्रेणी की कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनसे अनेक प्रशासकीय समस्याओं को समझने में सहायता मिलती है।

परन्तु इसमें भी एक कठिनाई यह रही है कि, ये जो सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की जीवन-गाथाऐं होती हैं, इनमें प्रशासकीय कार्यों की अपेक्षा राजनीतिक महत्व की बातों पर ज्यादा बल दिया जा रहा है। यद्यपि इस दिशा में एक प्रयास ये किया जा रहा है कि वे अपने अनुभवों को या तो स्वयं लिखें या दूसरों को यह अवसर प्रदान करें, ताकि लोक प्रशासन के विज्ञान की प्रगति में सहायता मिल सके।

2.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का अर्वाचीन दृष्टिकोण(Contemporary Approach)

वर्ष 1940 को वाल्डो ने लोक प्रशासन के अध्ययन के परम्परागत और अर्वाचीन दृष्टिकोणों के बीच विभाजन वर्ष के तौर पर माना। ये विभाजन या परिवर्तन अकस्मात नहीं हुआ। इसके लिये कुछ कारक या तत्व विशेष रूप से उत्तरदायी रहें हैं। इनमें से सबसे पहला कारक था कुछ नवीन प्रवृतियां। जैसे- 1. राजनीति और प्रशासन के बीच कठोर तथा सैद्धान्तिक पृथक्करण स्वीकार नहीं किया जाता है। 2. कार्यकुशलता और मितव्ययता को लोक प्रशासन का अपूर्ण एवं अपर्याप्त ध्येय माना जाने लगा और उसके स्थान पर सामाजिक क्षमता को ध्येय स्वीकारर किया जाने लगा। 3. पोस्डकॉर्ब दृष्टिकोणों में से कुछ का अर्थ बदल गया है और कुछ अब रूपान्तरित हो गये हैं। दूसरा कारक था कि अब लोक प्रशासन के अध्ययन पर प्रचलित दार्शनिक विचारधारा का भी प्रभाव पड़ा है। अर्वाचीन दृष्टिकोण के विकास में तीसरे और चौथे कारक के तौर पर परम्परागत दृष्टिकोण की दुर्बलताओं तथा लोक प्रशासन के वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने भी उल्लेखनीय कार्य किया। इस प्रकार अर्वाचीन दृष्टिकोण के विकास में अनेक कारकों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। आइये अब, परम्परागत दृष्टिकोण की भाँति ही अर्वाचीन दृष्टिकोण में सम्मिलित दृष्टिकोणों का विस्तार से अध्ययन करते हैं। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत हम निम्न दृष्टिकोणों के सन्दर्भ में

अध्ययन करेंगे- संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण(Structural-Functional Approach), परिस्थितिकीय दृष्टिकोण(Ecological Approach) और व्यवहारवादी दृष्टिकोण(Behavioural Approach)

2.4.1 संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण

सामाजिक विषयों के विश्लेषण में इस दृष्टिकोण का प्रयोग काफी समय से होता आ रहा है। लोक-प्रशासन में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का सिद्धान्त समाजशास्त्र से आया है। टॉलकट पारसन्स, राबर्ट मर्टन, मेरियन लेबी, गेबरियल आमण्ड आदि विचारक इस दृष्टिकोण के समर्थक थे। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण वह है, जो अध्ययन की विधियों में ढ़ाँचे या संरचना के गठन और उसके कार्यों की प्रक्रियाओं के बीच तालमेल के कारणों और परिणामों को पहचानने का प्रयत्न करता है। इसी बात को और स्पष्ट रूप से समझने के लिये राजनीतिक व्यवस्था को शारीरिक व्यवस्था के उदाहरण के आधार पर समझने का प्रयास करते हैं।

राजनीतिक व्यवस्था भी ठीक शारीरिक व्यवस्था की भाँति ही कार्य करती है। हालांकि ये सत्य है कि राजनीतिक व्यवस्था को व्यक्तियों के अनुसार विभाजित नहीं किया जा सकता है परन्तु, फिर भी वातावरण से उठने वाली मांगे तथा वातावरण से प्राप्त होने वाला समर्थन ही निवेशों(Input) का कार्य सम्पन्न करते हैं। राजनीतिक क्रियाओं में लिप्त संरचनाऐं इन्हें विशेष प्रक्रिया के द्वारा परिवर्तित करके नीति तथा नियमों को निर्गत कार्यों(Output) के रूप में समाज को प्रदान करती हैं। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। इसके अलावा इस व्यवस्था में अनेक विशिष्टीकृत इकाइयां या व्यवस्थाऐं(sub-system) होती हैं। ये हमेशा कार्यरत रहती हैं। इनका सबका अपना-अपना अलग-अलग कार्य और अस्तित्व होता है, फिर भी सम्पूर्ण व्यवस्था को चलाने में इनका पूर्ण योगदान होता है। ये इकाइयाँ या उप व्यवस्थाऐं कुछ इस प्रकार काम करती है कि अलग-अलग होते हुए भी एक दूसरे पर निर्भर होती हैं तथा इनमें से एक का आउटपुट(Output) दूसरे का इनपुट(Input) हो सकता है। ये इस प्रकार से अन्तःनिर्भर होती हैं। आधुनिक विचारक एवं वैज्ञानिक इन्हीं ''इनपुट'' और ''आउटपुट'' के सम्बन्धों और प्रक्रियाओं को पहचानना चाहते हैं और इसी काम के लिये वे जिन विधियों को अपना रहे हैं उनमें से एक विधि ''संरचनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण'' कहलाती है।

लोक प्रशासन में इस दृष्टिकोण का उल्लेख सर्वप्रथम 1955 में ड्वाइट वाल्डो ने किया और इसकी उपयोगिता पर भी प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि लोक प्रशासन को सामाजिक व्यवस्था के एक भाग के रूप में विश्लेषित करने के क्रम में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण एक महत्वपूर्ण माध्यम हैं। प्रो0 रिग्स को वाल्डो का विचार अच्छा लगा और उन्होंने दो वर्ष बाद ही 1957 में इस दृष्टिकोण के आधार पर अपना एक अलग मॉडल ''कृषक औद्योगिकी मॉडल'' प्रस्तुत किया। उसके बाद प्रो0 रिग्स तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में इस दृष्टिकोण के प्रमुख प्रयोगकर्ता बन गये। इस दृष्टिकोण की ये मान्यता होती है कि प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था की संरचना होती है, जो गतिशील मशीन के समान होता है। इस संरचना और इसके विभिन्न अंगों के द्वारा अपनी क्षमतानुसार कार्य किये जाते हैं। निर्धारित कार्यों को सम्पादित करने वाली विभिन्न संरचनाओं का तुलनात्मक विवेचन और विश्लेषण ही दृष्टिकोण का केन्द्र-बिन्दु है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों ने माना कि लोक प्रशासन एक सुनियोजित एवं गतिशील मशीन के समान है। जिस प्रकार एक साईकिल का अध्ययन किया जाता है, ठीक उसी प्रकार लोक प्रशासन का अध्ययन किया जाता है। साईकिल पैडल, हैंडल, चेन, पहिये से मिल कर बनती है, इन का सब का अपना अलग-अलग काम होता है। ये सभी भाग अन्तर्निभरता एवं सामूहिकता से कार्य करते हैं, उसी प्रकार हर प्रशासनिक संरचना के विभिन्न अंग होते हैं जो मिलकर काम करते हैं और ये ही संगठनात्मक कार्य कहलाता है। इन सबका सम्पूर्ण विश्लेषण करना ही संगठनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण है। इसमें माना जाता है कि, प्रत्येक व्यवस्था की अपनी कुछ विशेषताऐं होती हैं तथा विशेष लक्ष्य होता है। इसी के अनुरूप वो व्यवस्था अपने संगठन का निर्माण करती है। इसके अतिरिक्त व्यवस्था का हर अंग अपना विशेष कार्य करते हैं और साथ ही वे व्यवस्था

को गति भी देते हैं और उसे उसके उद्देश्य तक पहुँचने में भी सहायता करते हैं तथा हर अंग में कार्यात्मक विशेषीकरण रहते हुए भी उनमें अन्तर्निभरता रहती है।

2.4.1.1 प्रकार्य और संरचनाऐं

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के अनुसार प्रमुख संरचनाओं को देखा जाता है और फिर उसके कार्यों को देखा जाता है। या यों भी हो सकता है कि पहले प्रकार्यों को देखा जाये और फिर संरचनाओं की खोज की जाये कि कौनसी संरचना ये काम कर रही है। आशय ये होता है कि कभी ये धारणा बना कर नहीं चलना चाहिये कि अमुक संरचना के अमुक कार्य हैं। इसे उदाहरण के तौर पर यूँ समझा जा सकता है कि, हमें ये मान कर नहीं चलना चाहिये कि व्यवस्थापिका का कार्य नीति-निर्माण है या कार्यपालिका का कार्य केवल क्रियान्वयन है, बल्कि ये देखना चाहिये कि कौन सी संरचना किन प्रकार्यों को सम्पन्न कर रही है या उस संरचना का अस्तित्व क्यों है? उसकी कितनी उपयोगिता है? क्योंकि कोई भी संरचना तभी तक जीवित रह सकती है जब तक की उसकी उपयोगिता रहेगी।

इस प्रकार संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण या उपागम का मूल ईकाई व्यवस्था का अध्ययन है। आज ये बात सर्वसम्मत है कि किसी भी व्यवस्था में उस व्यवस्था की संरचना और प्रकार्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है तथा ये एक-दूसरे को प्रभावित भी करते हैं और सन्तुलित भी करते हैं। यही नहीं एक व्यवस्था के प्रकार्य एवं संरचना दूसरी व्यवस्था के प्रकार्यों व संरचना को भी प्रभावित करते हैं। उनमें क्रिया-प्रतिक्रिया चलती रहती है, इसलिये यह आवश्यक है कि व्यवस्था के अध्ययन में सम्पूर्ण व्यवस्था का अध्ययन किया जाये। इसमें आपस में अन्तर्निभरता होती है और एक व्यवस्था के घटकों की संरचना तथा प्रकार्यों से सम्पूर्ण व्यवस्था प्रभावित होती है।

2.4.1.2 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की विशेषताऐं

जैसा कि आप अब तक जान गये होंगे कि इस उपागम द्वारा सामाजिक प्रक्रियाओं को समझने के लिये संरचना एवं प्रक्रिया दोनों पर बल दिया जाता है। इस उपागम के अनुसार प्रकार्य (विशिष्ट प्रकृति के कार्य) संरचना के परिणाम होते हैं। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं होता है कि केवल एक प्रकार के कार्य एक संरचना द्वारा ही किये जाते हैं या एक संरचना केवल एक ही प्रकार के कार्य करती हो। अर्थात् एक प्रकार के कार्य बहुत सी संरचनाओं द्वारा या एक ही संरचना द्वारा बहुत से प्रकार्य एक साथ किये जा सकते हैं। अतः तुलनात्मक लोक प्रशासन में संरचना एवं उसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों का ही तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। प्रो0 एम0 पी0 शर्मा के द्वारा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम के सम्बन्ध में तीन मान्यताओं का वर्णन किया गया है। उनका मानना है कि इस उपागम का अध्ययन करते समय इन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिये- संस्था द्वारा किये जाने वाले प्रकार्यों(functions) की जानकारी। प्रकार्यों को पूरा करने वाली संरचनाओं की जानकारी और प्रकार्यों को किन परिस्थितियों में पूरा किया जाता है।

उपर्युक्त तीनों बातों की पूरी जानकारी प्राप्त करना ही इस उपागम का प्रमुख उद्देश्य होता है।

संक्षेप में, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की विशेषताओं को यदि बिन्दुवार देखना चाहें तो निम्न बिन्दुओं में देख सकते हैं-

- यह दृष्टिकोण लोक प्रशासन को सुनियोजित एवं गतिशील तंत्र मानता है।
- इस दृष्टिकोण की मान्यता होती है कि प्रत्येक संस्था की एक निश्चित व्यवस्था होती है।
- हर संरचना द्वारा किये जाने वाले कार्य दूसरी संरचना के कार्यों को प्रभावित भी करते हैं और परस्पर लक्ष्यों की पूर्ति को भी प्रभावित करती है।

- संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की मान्यतानुसार प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था कुछ 'इनपुट' ग्रहण करती है और 'आउटपुट' के रूप में कुछ परिणाम उत्पन्न करती है। इनपुट के अन्तर्गत हितों का समाजीकरण तथा राजनीतिक संचार आदि तत्वों को सम्मिलित किया जाता है। एवं आउटपुट के रूप में प्रशासनिक व्यवस्था कुछ परिणाम उत्पन्न करती है, यथा- नियम निर्माण, नियम क्रियान्वयन, जन कल्याण आदि।
- कुछ विद्वानों द्वारा ऐसा माना जाता है कि हर समाज के अस्तित्व के लिए कुछ संरचनाऐं एवं कुछ कार्य मूलभूत होते हैं एवं एक ही संरचना के द्वारा भिन्न-भिन्न वातावरण में भिन्न-भिन्न कार्य किये जाते हैं। प्रो0 रिग्स ने प्रत्येक समाज के पांच कार्य मूलभूत माने हैं। ये हैं- आर्थिक, सामाजिक, संरचनात्मक, प्रतीकात्मक तथा राजनीतिक। किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था के लिये ये ही कार्य मूलभूत माने जाते हैं।
- यह उपागम एक मूल्य-निरपेक्ष (स्वतंत्र) उपागम है।
- अन्य- कार्य संचालन से व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है, इन प्रभावों का अध्ययन किया जा सकता है, संस्था पर पड़ने वाले प्रभाव लाभदायक या हानिकारक हो सकते हैं और इन्हें संस्था में कार्य कहा जाता है। यदि ये कार्य अच्छी दशा में है तो सुकार्य कहलाते है और यदि विपरीत दिशा में है तो विकार्य (अपकार्य) कहलाते हैं।

2.4.1.3 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के प्रमुख तत्व

ये उपागम बहुत महत्वपूर्ण उपागम के तौर पर अनेक बार उपयोग में लाया गया। आमण्ड तथा कोलमैन ने विकासशील देशों के अध्ययन के लिये इस दृष्टिकोण का उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त इस दृष्टिकोण के अनुसार लूसियन पाई ने दक्षिण-पूर्व एशिया का, माइनर वीनर ने दक्षिण एशिया का, कोलमैन ने सहारा क्षेत्र का, ब्लैक स्टोन ने लैटिन अमरीका का तथा डेकार्ट एवस्टोव ने दक्षिण-पूर्वी यूरोप का अध्ययन किया है। आमण्ड तथा कोलमैन का विचार है कि तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन के लिये यह एक अच्छा दृष्टिकोण है। उन्होंने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण को दो रूपों में ग्रहण किया है- अपने पहले किये गये अध्ययन में इन्होंने प्रकार्यों पर अधिक बल दिया है और अपने बाद के अध्ययनों में आमण्ड तथा कोलमैन ने संरचनाओं को भी पर्याप्त महत्व दिया है।

पहले किये गये अध्ययनों में जब आमण्ड तथा कोलमैन ने प्रकार्यों(Functions) पर अधिक बल देते हुये माना कि सभी राजनीतिक व्यवस्थाऐं सात प्रकार के कार्य करती है। इन सात कार्यों में चार 'इनपुट'(Input) कार्य व तीन 'आउटपुट'(Output) कार्य हैं। इन 'इनपुट' व 'आउटपुट' कार्यों को ही संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का प्रमुख तत्व माना जाता है। आमण्ड तथा कोलमैन के अनुसार ये 'इनपुट' तथा 'आउटपुट' कार्य निम्नलिखित हैं-

इनपुट कार्य	**आउटपुट कार्य**
राजनीतिक समाजीकरण तथा नियुक्ति। हितों का समाजीकरण तथा रूचि उत्पन्न करना। हितों का समूहीकरण या रूचि का संग्रहण। राजनीतिक संचार या राजनीतिक सम्प्रेषण।	नियम बनाना। नियम लागू करना। नियम अधिनियम तथ जनकल्याण।

इस प्रकार कार्यों का 'इनपुट' और 'आउटपुट' कार्यों के रूप में विभेदीकरण करने के बाद आमण्ड तथा कोलमैन ने विकासशील देशों के सन्दर्भ में निवेश(इनपुट) कार्यों को अधिक महत्वपूर्ण माना है। चूंकि ये विद्वान व्यवहारवादी हैं, इसलिये इन्होंने प्रक्रियाओं के अध्ययन पर अधिक बल दिया है, संरचनाओं पर कम। वे असल में कार्यों के आधार पर संरचनाओं को समझना चाहते हैं। आमण्ड का मानना था कि प्रत्येक राजनीतिक संरचना कुछ

ना कुछ कार्य करती है। राजनीतिक व्यवस्था में उन कार्यों को करने के लिये कितनी विशेषीकृत संरचनाऐं हैं तथा इन कार्यों को कितनी कुशलतापूर्वक किया जाता है, सम्पूर्ण राजनीतिक विकास इसी पर निर्भर करता है। अपने बाद के अध्ययनों में आमण्ड ने संरचनाओं को भी पर्याप्त महत्व दिया है।

राबर्ट मर्टन ने भी प्रकार्यों पर अधिक बल दिया है, जबकि मेरियन जे0 ब्लेबी संरचनाओं के अध्ययन को अधिक महत्व देते हैं। वहीं फ्रेड रिग्स का कहना है कि हमें संरचनाओं तथा प्रकार्यों दोनों के अध्ययन को बराबर महत्व देना चाहिये, तभी अध्ययन वास्तविक हो सकेगा।

2.4.1.4 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की आलोचनाऐं अथवा सीमाऐं

यद्यपि तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में संरचनात्मक दृष्टिकोण का अत्याधिक महत्व है, फिर भी इस दृष्टिकोण में अनेक कमियाँ है। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की निम्नलिखित आधारों पर आलोचनाऐं की जाती हैं। इन्हें इस दृष्टिकोण की सीमाऐं भी कहा जा सकता है-

1. **वास्तविक अध्ययन सम्भव नहीं-** यद्यपि विकासिशील देशों के अध्ययन के लिये इस उपागम को उपयुक्त माना गया है। परन्तु इस आधार पर इसकी आलोचना की गई कि, वास्तव में इस उपागम के आधार पर वास्तविक अध्ययन सम्भव नहीं है। विकासशील देशों की अनेक समस्याऐं जैसे- धर्म, जाति, गरीबी, भाषावाद आदि राजनीतिक व्यवस्थाओं पर अपने प्रभाव डालती हैं। ऐसा माना गया है कि प्रकार्यात्मक आधार पर इस प्रकार का अध्ययन सम्भव नहीं हो सकता है।
2. **परिवर्तन विरोधी-** यह दृष्टिकोण व्यवस्था की उपयोगिता तथा उनके रख-रखाव से सम्बन्धित समस्याओं से अधिक सम्बन्धित दिखायी देता है। अतः यह परिवर्तन विरोधी है।
3. **सुधारवादी नहीं-** संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण द्वारा किया जाने वाला अध्ययन अत्यन्त वास्तविक हैं, यह केवल वर्तमान का अध्ययन करता है, भविष्योन्मुखता की इस उपागम में अत्यन्त कमी है। यह राजनीतिक व्यवस्था के वर्तमान स्वरूप तथा कार्यों का अध्ययन समाज की उप व्यवस्था के रूप में करता है तथा परिवर्तन की ओर दिशा-निर्देश नहीं करता।
4. **यथास्थितिवाद-** यह दृष्टिकोण यथास्थितिवाद का समर्थन करता है। इसका मुख्य उद्देश्य राजनीतिक व्यवस्था को साम्यवाद से बचाना है। ये हमेशा धीमी गति से राजनीतिक व्यवस्थाओं को पश्चिमी ढर्रे पर ढालना चाहता है। यही कारण है कि मार्क्सवादियों के द्वारा कभी भी इस दृष्टिकोण का समर्थन नहीं किया गया। यह दृष्टिकोण 'परिवर्तन कैसे हो?' इसका विश्लेषण नहीं करता। यह विकासशील देशों के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन में सहायक नहीं है, इसलिये कुछ विचारकों द्वारा इसे 'ढीला-ढाला' तथा 'अपूर्ण' दृष्टिकोण भी कहा जाता है।
5. **संरचना की उपयुक्तता बताने में असमर्थ-** यह उपागम इस आधार पर भी आलोचना की जाती है कि ये परिस्थितियों के अनुसार कौनसी संचना उपयुक्त होगी, इस बात को बताने में भी असमर्थ है।
6. रूढ़िवादिता- इस उपागम की आलोचना का एक आधार यह भी है कि ये रूढ़िवादी है। इसे रूढ़िवादी मानते हुए परिवर्तन का विरोधी कहा जाता है, इसके पीछे ये भी तर्क दिया जाता है कि इसमें पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति उदासीनता मिलती है।
7. **प्राकृतिक संरचनाओं का पक्ष-** इस उपागम के द्वारा कृत्रिम संरचनाओं के स्थान पर प्राकृतिक संरचनाओं का पक्ष लिया जाता है, जो इसकी आलोचना का एक अन्य कारण माना जाता है।
8. **संरचना एवं प्रकार्यों के मध्य सम्बन्ध-** इस उपागम की मान्यता कि प्रत्येक संरचना एवं व्यवस्था द्वारा किये जाने वाले प्रकार्यों के मध्य सदैव सम्बन्ध की व्याख्या की जा सकती है, भी आलोचना का शिकार हुई है, क्योंकि वास्तव में ऐसी व्याख्या सदैव कर पाना कठिन होता है।

अन्त में ये कहा जा सकता है कि संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को अधिक मूल्य-निरपेक्ष बनाने में सहायता प्रदान की है एवं पश्चिमी देशों की प्रशासनिक प्रणालियों के वैज्ञानिक अध्ययन को सरल बनाया है। इस दृष्टिकोण के आधार पर विभिन्न प्रशासनिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। इस अध्ययन पद्धति के आधार पर यथार्थवादी विश्लेषण भी संभव है। वस्तुतः संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक अभिगम का तुलनात्मक लोक प्रशासन में अभी सीमित उपयोग ही किया गया है। रिग्स के प्रतिमानों के अतिरिक्त इस दृष्टिकोण का उपयोग नहीं के बराबर है।

2.4.2 पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण

प्रशासन और संगठन के अध्ययन हेतु इस दृष्टिकोण का प्रारम्भ द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुआ। आधुनिक युग में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में इस दृष्टिकोण का बहुत महत्व पूर्ण स्थान है। इसे तुलनात्मक अध्ययन के नाम से भी जाना जाता है। पारिस्थितिकीय(Ecology) शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द 'Oikos' से हुई है, जिसका अर्थ है, घर या रहने का स्थान। यह उपागम जीव विज्ञान के परिस्थितिकीय दृष्टिकोण पर आधारित है, जिसके अनुसार जिस प्रकार एक पौधे के विकास के लिये विशेष प्रकार की जलवायु, मिट्टी, तापमान तथा नमी आदि की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार प्रत्येक समाज का विकास उसके अपने इतिहास, आर्थिक-सामाजिक संरचनाओं, मूल्यों, परिस्थितियों, राजनीतिक व्यवस्था आदि से जुड़ा होता है। यद्यपि लोक प्रशासन की संस्थाऐं तथा संगठन सावयवी नहीं हैं, तथापि इन संस्थानों की कार्यप्रणाली अवश्य ही पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होती है। अतः लोक प्रशासन अपने परिवेश से अलग रहकर कार्य नहीं करता। परिवेश और वातावरण प्रशासन को प्रभावित करता है।

जे0एम0 गॉस, राबार्ट ए0 डहल, मार्टिन, व प्रो0 रिग्स लोक प्रशासन के अध्यन के परिस्थितिकीय दृष्टिकोण के समर्थक विद्वान माने जाते हैं। इन सब विद्वानों में से भी रिग्स वो पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इस दृष्टिकोण के प्रति महत्वपूर्ण योगदान दिया। रिग्स ने विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अपने अध्ययन में प्रशासनिक, आर्थिक, तकनीकी, राजनीतिक तथा संचार कारकों के बीच सम्बन्धों का विस्तृत परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया है।

परिस्थितिकीय उपागम की मूल मान्यता यह है कि प्रशासनिक व्यवहार, ब्राह्य पर्यावरण जैसे- संस्कृति, समाज, मूल्य, परम्पराओं तथा समस्याओं आदि का परिणाम है। सरल अर्थ में प्रशासनिक प्रक्रिया एक ऐसी व्यवस्था है, जिसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है और जो निस्सन्देह बाह्य सामाजिक संस्कृति का ही विस्तार है। लोक प्रशासन में परिस्थितिकी उपागम की शुरूआत 1947 में जॉन एम0 गॉस ने की। उन्होंने कहा ''सरकारी कार्यों पर जनता, स्थान, भौतिक सुविधाओं, मूल्यों, परम्पराओं तथा व्यक्तित्व इत्यादि का पर्याप्त पड़ता है। अर्थात पर्यावरण तथा प्रशासन आपस में क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं।'' अतः लोक प्रशासन के अध्ययन में परिस्थितिकीय कारकों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। प्रशासनिक संगठन अपने आप में एक स्वतंत्र चर के रूप में कार्य नहीं कर सकते हैं, बल्कि वे अपने आस-पास के सामाजिक संगठनों आदि से भी प्रभावित होते हैं। अतः लोक प्रशासन में केवल संगठनों की आन्तरिक संरचना, कार्य, प्रक्रिया तथा व्यवस्था को जानना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि संगठन किस माहौल में कार्यरत है, यह जानना अधिक उपयोगी है।

इसी प्रकार इस दृष्टिकोण के एक अन्य समर्थक रॉबर्ट डहाल के अनुसार ''एक स्थान पर लोक प्रशासन के अध्ययन में यदि कुछ निष्कर्ष प्राप्त हों तो उनका दूसरे स्थान पर स्थित प्रशासनिक संस्थाओं पर परीक्षण करके ही कुछ सिद्धान्त विकसित किये जा सकते हैं, क्योंकि प्रत्येक स्थान पर परिस्थितिकी एक समान नहीं होती है। अतः इससे प्रशासनिक सिद्धान्तों का भली-भाँति परीक्षण हो जाता है। लोक प्रशासन में सामान्यीकृत नियम प्रतिपादित करने के लिये इसकी प्रविधियों तथा प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में ज्ञान का दायरा विस्तृत करना होगा। अतः प्रशासन के ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक सन्दर्भों को विश्लेषित किया जाना चाहिए।''

2.4.2.1 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण की विशेषताऐं

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों द्वारा परिस्थितिकीय उपागम के सन्दर्भ में दिये गये विवरणों के आधार पर इसकी कुछ मान्याताओं या विशेषताओं को बिन्दुओं में देखते हैं-

1. लोक प्रशासन भी मानव समाज का एक अंग होता है।
2. जिस प्रकार जीव-जन्तु, वनस्पतियां तथा मानव अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित होते हैं, ठीक उसी प्रकार प्रशासनिक संगठन भी सम्बन्धित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक, सभी प्रकार के कारकों से प्रभावित होते हैं।
3. प्रत्येक प्रशासनिक व्यवहार, प्रशासनिक संगठनों के बाहरी वातावरण एवं भिन्न-भिन्न प्रकार के कारकों का एक मिश्रित परिणाम है।
4. प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था अपने बाहरी वातावरण या परिस्थितिकी से निरन्तर क्रिया-प्रतिक्रिया करती रहती है।
5. प्रशासन ना केवल बाहरी वातावरण से प्रभावित होता है, बल्कि वह पर्यावरण को भी प्रभावित करता रहता है।
6. किसी भी संगठन की आन्तरिक प्रशासनिक कार्य-संस्कृति उस देश या समाज के मूल्यों तथा परम्पराओं से बहुत प्रभावित रहती है।
7. तुलनात्मक लोक-प्रशासन के सार्वभौमिक नियम प्रतिपादित करने के लिये उनका तुलनात्मक परिस्थितिकीय अध्ययन किया जाना आवश्यक होता है।

समाज की कुछ आवश्यकताऐं ऐसी होती हैं जो कि परम्परागत, आधुनिक तथा संक्रमणशील सभी प्रकार के समाजों में उपस्थित होती हैं। रिग्स ने भी कहा कि समाज की कुछ आवश्यकताऐं ऐसी होती है जो परम्परागत, आधुनिक तथा संक्रमणशील सभी प्रकार के समाजों में समान रूप से पायी जाती है। इसी प्रकार कुछ ऐसी प्रशासनिक आवश्यकताऐं भी हो सकती हैं। लुई ममफोर्ड ने कहा कि ''किसी भी प्रकार का जीवन दूसरे से अलग होकर नहीं रह सकता, क्योंकि पर्यावरण के बिना किसी भी प्रकार का जीवन सम्भव नहीं है।''

2.4.2.2 परिस्थितिकी उपागम की आलोचना या सीमाऐं

परिस्थितिकी उपागम तुलनात्मक लोक प्रशासन का मुख्य उपागम बन चुका है। ये उपागम प्रयोग में लाने में तो सरल होता है, किन्तु इसको प्रयोग करते समय कुछ समस्याऐं आती है-

1. प्रत्येक शोधकर्ता सामाजिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक मूल्यों को अपनी दृष्टि से देखता है। अतः दूसरे देश की सांस्कृतिक विरासत को समझना एक जटिल कार्य होता है।
2. मानव व्यवहार तथा समाज दोनों ही जटिल संरचनाऐं हैं। अतः यह अनुमान लगाना कठिन है कि सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन, प्रशासन के द्वारा आ रहे हैं या इसके कारक कुछ और हैं?
3. विश्व के सभी देशों में सामाजिक व्यवस्था तथा प्रशासनिक संस्कृति में बहुत विविधता पायी जाती है। ऐसे में इसका विश्लेषण बहुत जटिल हो जाता है और सामान्यीकरण की ओर जाना या सामान्यीकृत आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण करना मुश्किल हो जाता है। इसे भारत के उदाहरण से समझा जा सकता है, जहाँ थोड़े मील पर ही बोली, खान-पान, पहनावा सब बदल जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त सभी सीमाओं या कमियों को देखने के बाद से स्पष्ट हो जाता है कि ये कमियाँ उपागम से ज्यादा उसको उपयोग में लाने वालों से सम्बन्धित है। अतः इन कमियों के उपरान्त भी ये उपागम उपयोगी परिणाम देने वाला हो सकता है।

2.5 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का व्यवहारवादी उपागम(Behavioural Approach)

व्यवहारवादी दृष्टिकोण या उपागम का अध्ययन निम्नलिखित विन्दुओं के माध्यम से करते हैं-

2.5.1 व्यवहारवाद का विकास

व्यवहारवादी उपागम को जानने से पूर्व आइये हम व्यवहारवाद को भली-भाँति जानें और देखें कि ये किस प्रकार से विकसित हुआ। व्यवहारवाद ने तुलनात्मक लोक प्रशासन को बहुत प्रोत्साहन प्रदान किया है। यह अक्सर ‘व्यवहारिक क्रांति’ का नाम दिया जाता है। यह बीसवीं शताब्दी के चौथे और पांचवें दशक में मानवीय सम्बन्धों के आन्दोलन के साथ-साथ प्रारम्भ हुआ। किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात प्रभुत्वशाली दृष्टि बन गया। इसका विकास चेस्टर बर्नार्ड व हरबर्ट साइमन ने किया। इसके उपरान्त इसके समर्थकों में पीटर एम0 बलाऊ, मर्टन, वीडनर, सायर्स, फ्रेड0 डब्ल्यू0 रिग्स, इलाऊ आदि थे। अनिवार्य रूप से व्यवहारवाद का सम्बन्ध विभिन्न वातावरण में मानवीय व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन करना है। इस प्रकार लोक प्रशासन में व्यवहारवाद की प्रारम्भिक जड़ें सन् 1930 के मानव सम्बन्ध आन्दोलन से जुड़ी हैं। लोक प्रशासन के अध्ययन के प्रति व्यवहारवादी दृष्टिकोण में ‘सिद्धान्तों’ के आधार पर गुलिक, उरविक तथा अन्य लेखकों के विचारों को चुनौती दी। इन विचारों को प्रायः शास्त्रीय, पारम्परिक अथवा रूढ़िवादी (Orthodox) दृष्टिकोण कहा जाता था। इस वाद को जन्म देने वालों में हरबर्ट साइमन का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। साइमन ने 1946 में ‘लोक प्रशासन में लोकोक्तियां’(Proverbs in Public Administration) नामक लेख में यह बताया कि, अब तक लोक प्रशासन में अनेक बातें केवल लोकोक्तियों की तरह स्वयंसिद्ध मान कर ही दोहरायी जा रही हैं। इनको सिद्ध करने के लिये किसी प्रमाण, तथ्य, विवेचन या तर्क की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती है। लेकिन व्यवहारिक दृष्टि से ये कथन असत्य सिद्ध होते हैं। यदि लोक प्रशासन को विज्ञान की श्रेणी में लाना है तो इसके लिये इसके सिद्धान्तों और मान्यताओं को व्यवहार की कसौटी पर खरा उतरना चाहिये। इसी प्रकार सन् 1947 में हरबर्ट साइमन ने अपनी पुस्तक, "Administrative Behaviour: A Study of Decision-Making Process in Administrative Organization" में लोक प्रशासन के अध्ययन के पारम्परिक दृष्टिकोण का खण्डन किया। साइमन ने कहा कि यदि हम संगठन का सही और वैज्ञानिक विवेचना करना चाहते हैं तो वह अध्ययन व्यवहार पर आधारित होना चाहिये।

व्यवहारवादी दृष्टिकोण तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का नवीनतम दृष्टिकोण माना जाता है। ये दृष्टिकोण मनोविज्ञान व समाजशास्त्र के सिद्धान्तों व व्यवहारों से प्रभावित माना जाता है। राजनीतिशास्त्र के अध्ययन के लिये जिन विचारकों ने व्यवहारवादी दृष्टिकोण का समर्थन किया उन्होंने ही तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में इस उपागम के उपयोग की प्रेरणा दी। इस दृष्टिकोण को विकसित करने का श्रेय अमरीकी राजनीतिक वैज्ञानिकों को जाता है। आज यह दृष्टिकोण सर्वाधिक महत्व पूर्ण दृष्टिकोण माना जाता है।

ये दृष्टिकोण परम्परागत अध्ययन, प्रणालियों तथा सिद्धान्तों के विद्रोह स्वरूप प्रारम्भ हुआ। यह एक अन्तरविषयी उपागम है, जो वैज्ञानिक पद्धति तथा मूल्य निरपेक्ष दृष्टिकोण का समर्थन करता है। व्यवहारवादी दृष्टिकोण प्रशासनिक व्यवहार पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और इसकी विवेचना करके समग्र प्रशासन उनकी संरचनाओं तथा प्रक्रियाओं आदि के बारे में अध्ययन करना चाहता है। व्यवहारवाद का अभिप्राय प्रशासनिक तथ्यों की व्याख्या और विश्लेषण का एक विशिष्ट तरीका होता है। व्यवहारवाद अनुभवात्मक तथा प्रविधियों के निरन्तर सुधार में विश्वास करता है तथा इसमें कल्पना और व्यक्तिनिष्ठ मूल्यों तथा मानवीय विवरणों आदि का कोई स्थान नहीं है। इसका उद्देश्य लोक प्रशासन को अधिकाधिक वैज्ञानिक बनाना ही होता है। यदि व्यवहारवाद के अर्थ के बारे में विचार किया जाता है तो कह सकते है कि इसके अर्थ के विषय में कोई समान दृष्टिकोण नहीं

पाया जाता है। उदाहरण के तौर पर कुछ व्यवहारवादी इसे केवल एक मनोदशा अथवा मनोवृति मानते हैं और कुछ ऐसा मानते हें कि इस दृष्टिकोण के अपने कुछ निश्चित विचार एवं सिद्धान्त एवं इसकी अपनी कुछ कार्यविधियां है। जैसा कि आपने अभी जाना कि, व्यवहारवादी दृष्टिकोण को विकसित करने में डेविड ईस्टन, वाइडनर ब्याऊमर्टन, हैडी, रिग्स, माइकल क्रोजियर, सायर्स आदि ने महत्व पूर्ण योगदान दिया। इन सभी विद्वानों ने अपने अध्ययन का मूल आधार व्यवहारवाद की मूल मान्याताओं को माना है। डेविड ईस्टन ने जिन्हें व्यवहारवादी क्रान्ति का उद्-घोषक कहा जाता है, इस दृष्टिकोण को 'वैज्ञानिक मनोदशा का प्रतिबिम्ब' कहा है। उनके अनुसार यह एक 'बौद्धिक प्रवृति' और 'तथ्यात्मक शैक्षणिक आन्दोलन' है। व्यवहारवादी एक दृष्टि ही नहीं बल्कि इसे एक समग्र क्रान्ति के तौर पर देखा जाता है। इसकी चार मूल मान्यताऐं हैं-

1. व्यवहारवादियों की ये मान्यता है कि अध्ययन की इकाई जब तक बहुत बड़ी(Macro) है, तब तक अध्ययन गहन नहीं बन सकेंगे। अतः उनका मानना है कि इस विशालता को विशेषीकरण की दृष्टि से तोड़कर लघुता (Micro) की इकाइयों में परिवर्तित कर दिया जाये। अर्थात् ये दृष्टिकोण छोटे-छोटे विषयों पर गहन और गम्भीर अध्ययन और विश्लेषण को प्राथमिकता देता है।
2. व्यवहारवादी दृष्टिकोण अध्ययन की वैज्ञानिकता का बड़ा पक्षधर है। अर्थात् यह निरीक्षणवादी, अनुभववाद, तुलनात्मक एवं प्रयोगवादी शोधकर्ता है।
3. तीसरी मान्यता ये है कि ज्ञान की समग्रता एवं सच्चाई इस बात पर निर्भर करती है कि वह ज्ञान के अन्य पहलुओं से कितना सम्बन्धित है।
4. यह दृष्टिकोण एक अनुभवमूलक सिद्धान्त का प्रणयन करना चाहता है। व्यवहारवादी अनुभव, निरीक्षण, प्रयोग, सन्दर्भ ज्ञान, परिस्थिति विवेचन आदि के आधार पर सम्पूर्णता का गहनता से विश्लेषण करते हैं और ये मानकर चलते हैं कि तुलनात्मक लोक प्रशासन अध्ययन विज्ञान के रूप में अपनी स्वतंत्र विचारधाराओं का आविष्कार कर सकता है।

व्यवहारवादी दृष्टिकोण के ध्यान का केन्द्र मानवीय व्यवहार है जिसमें मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा मानव विज्ञान भी सम्मिलित है। यह प्रशासनिक प्रक्रियाओं का, जो कई प्रकार के संगठनों में सामान्य है, विवरण देने का दावा करता है। संक्षेप में व्यवहारवाद का सम्बन्ध व्यक्ति के केवल बाहरी कार्यों से नहीं है, बल्कि उसकी भावनात्मक, ज्ञानात्मक और मूल्यांकनात्मक प्रक्रियाओं से भी है।

2.5.2 व्यवहारवाद की विशेषताऐं

डेविड ईस्टन, कैटालिन, राबर्ट डहाल आदि व्यवहारवादी विचारकों के द्वारा व्यवहारवादी उपागम की कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया गया है-

1. **वैज्ञानिकता के प्रति झुकाव-** व्यवहारवादी विचारक सदैव अपने अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने का प्रयास करते हैं। हरबर्ट साइमन जो इस दृष्टिकोण के एक प्रमुख विचारक माने जाते हैं, ने लोक प्रशासन का अध्ययन करते समय क्या होना चाहिये के स्थान पर, जो है उसका विवेचन किया। व्यवहारवादियों का ये मत है कि, लोक प्रशासन एक वैज्ञानिक अध्ययन विषय है, इसको केवल मूल्यों सम्बन्धी विवेचन करने की अपेक्षा तथ्यसंगत, वास्तविक और व्यवहारिक बनाया जाना चाहिए। इसके निष्कर्ष स्थायी और सर्वव्यापी होने चाहिये। इसके लिये वैज्ञानिक अध्ययन प्रणाली को अपनाया जाना चाहिये। ऐसा होने पर ही लोक प्रशासन का अध्ययन सत्य, निष्पक्ष, गहन एवं विश्वसनीय बन पायेगा। यही कारण रहा कि सभी व्यवहारवादी विचारक निरीक्षणवादी, अनुभववादी एवं प्रयोगवादी शोधकर्ता बन गये।
2. **व्यष्टि(Micro) अध्ययन का समर्थन-** व्यवहारवादी विचारक ऐसा मानते हैं कि, अध्ययन की इकाई जब समष्टि (Macro) अर्थात् बड़ी होती है तो अध्ययन गहन नहीं हो पाता है। अतः उन्होंने माना कि

अध्ययन को गहन और विशिष्टकृत बनाने के लिये अध्ययन को व्यष्टि(Micro) अर्थात् छोटी-छोटी इकाइयों में बाँटना चाहिये। अर्थात् व्यापकता की अपेक्षा गहनता की ओर बढ़ना चाहिये या यूँ कहें कि समष्टि से व्यष्टि(Macro to Micro) की ओर बढ़ना चाहिये। व्यवहारवादी दृष्टिकोण ने छोटे-छोटे विषयों के गम्भीर अध्ययन और विश्लेषण को प्राथमिकता दी है। व्यवहारविदो के मतानुसार किसी बड़े संगठन का अध्ययन करने के लिये हमें उस संगठन में पर्यवेक्षण की प्रक्रिया, आदेश की एकता, नियंत्रण प्रक्रिया, प्रत्यायोजन व्यवस्था आदि पहलुओं में से किसी एक पहलू का गहन अध्ययन करना चाहिये। इसका कारण यह है कि मानव मस्तिष्क की शक्तियों, ध्यान, अनुभव और रूचि आदि सीमित होते हैं।

3. **अनुभवमूलक सिद्धान्त-** व्यवहारवादी विचार अनुभववाद से अत्यधिक प्रभावित है। इसका कारण है कि व्यवहारवादी विचारक, अनुभव, निरीक्षण, प्रयोग, सन्दर्भ ज्ञान और परिस्थिति के विवेचन के आधार पर समस्याओं का विवेचन करते हैं। इन विचारकों ने ये भी माना कि लोक प्रशासन भी एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में अपनी स्वतंत्र विचारधाराओं का निर्माण कर सकने में समर्थ है।
4. **सन्दर्भ विशेष का महत्व-** लोक प्रशासन की समस्याओं की विवेचना वैज्ञानिक विधि के सन्दर्भ में ही किया जाना चाहिये, ऐसी व्यवहारवादी विचारकों की मान्यता है। अर्थात् यह ज्ञान की पूर्णता या निरपेक्षता में विश्वास नहीं करता। इस दृष्टिकोण की मान्यता है कि ज्ञान की सत्यता और उपयोगिता उसके सन्दर्भ विशेष पर ही निर्भर करती है। ज्ञान के दूसरे अन्य विषयों के साथ उनके अन्तर्सम्बन्ध महत्व रखते हैं।
5. **अनौपचारिक सम्बन्धों का अध्ययन-** ये उपागम मनुष्यों के बीच के अनौपचारिक सम्बन्धों के अध्ययन पर बल देता है, क्योंकि यदि प्रशासनिक संगठनों में केवल औपरचारिकतापूर्ण व्यवहार रखा जाये तो ये कभी-कभी बहुत अव्यवहारिक एवं अमानवीय भी हो सकता है। ऐसा माना गया है कि प्रशासन में भी इस प्रकार की अनेक समस्याऐं आती हैं, जिनमें मानवीय दृष्टिकोण को महत्व दिया जाना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त एक और तर्क ये भी दिया जाता है कि, लोक प्रशासन में मानव ही कार्यरत होते हैं। अतः उसमें उनके अनौपचारिक सम्बन्धों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है।
6. **नेतृत्व का गुण-** ये दृष्टिकोण इस बात पर भी बल देता है कि लोक प्रशासन में व्यक्तियों में नेतृत्व के ऐसे गुण होने चाहिये, जिसके द्वारा अपने अधीनस्थों से अपने कार्य में सहयोग प्राप्त कर सके और साथ ही उनका कुशलतापूर्वक नेतृत्व भी कर सके।
7. **व्यक्ति और प्रशासन का सिद्धान्त-** व्यवहारवादी उपागम व्यक्ति के प्रशासनिक संगठन के साथ सम्बन्ध पर विशेष बल देता है। इसमें प्रशासन व व्यक्ति के कार्य करने के उद्देश्य, निर्णय लेने की प्रक्रिया व अधिकार के स्वरूप पर विशेष विचार किया जाता है।
8. **अन्तर्निभरता और अर्न्तअध्ययन सम्बन्धी ज्ञान की समन्वित पुष्टि-** व्यवहारवादी उपागम अन्तर्निभरता और अर्न्तअध्ययन सम्बन्धी ज्ञान की एक समन्वित दृष्टि माना जाता है। एक ओर तो यह उपागम लोक प्रशासन के अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन पर बल देता है, वहीं दूसरी ओर ये लोक प्रशसन को एक स्वतंत्र विज्ञान मानता है।

2.5.3 व्यवहारवादी दृष्टिकोण के लोक प्रशासन पर प्रभाव

आप अब तक यह जान गये होंगे कि, लोक प्रशासन के अध्ययन को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने में व्यवहारवादी उपागम का विशेष योगदान रहा। 1960 के दशक के करीब ये दृष्टिकोण शिखर पर था। इस दृष्टिकोण में लोक प्रशासन पर बहुत प्रभाव डाला। इसे निम्न बिन्दुओं में देखा जा सकता है-

1. **वैज्ञानिक अनुभववाद-** व्यवहारवाद ने वैज्ञानिक अनुभववाद के माध्यम से लोक प्रशासन को नवीन दृष्टि व नवीन क्षेत्र प्रदान किया। व्यवहारवादियों ने औपचारिक दृष्टिकोण के साथ व्यवहारवादी मान्याताओं को जोड़कर उसे पूर्ण बनाने का प्रयास किया।
2. **विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक सिद्धान्त के समारम्भ का सूचक-** ये दृष्टिकोण अभी समाज विज्ञानों में विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक सिद्धान्त के आरम्भ का सूचक है। इस दृष्टिकोण से लोक प्रशासन के अध्ययन को एक नवीन दृष्टि, नवीन सोच दिशा-बोध एवं नया स्वरूप प्राप्त हुआ है।
3. **सन्दर्भ के महत्व का प्रतिपादन-** इस दृष्टिकोण के द्वारा लोक प्रशासन के विद्वानों को सन्दर्भ का महत्व पता चला। इस दृष्टिकोण के कारण ही लोक प्रशासन का अध्ययन समाजशास्त्र, दर्शनशासत्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र के सिद्धान्तों, पद्धतियों, उपलब्धियों तथा दृष्टिकोणों के समीप आया है।
4. **प्रविधियों एवं तकनीकों का प्रयोग-** व्यवहारवाद ने लोक प्रशासन में भी नवीन तकनीकों और प्रविधियों के प्रयोग को समभव बनाया।
5. **शोध का विषय बनाना-** इस दृष्टिकोण के द्वारा सैद्धान्तिक प्रस्थापनाओं को यथार्थ के सन्दर्भ में शोध का विषय बनाया जा सकता है।
6. **लोक प्रशासन का सम्बन्ध 'क्या लेना याहिये' के स्थान पर 'क्या है' से स्थापित करना-** इस दृष्टिकोण ने लोक प्रशासन के मूल्यों को स्वतंत्र बनाने का प्रयास किया है। लोक प्रशासन के मूल्यों को आधुनिकता और एकता प्रदान करने के लिए इसका सम्बन्ध 'क्या होना चाहिये' के स्थान पर 'क्या है' से स्थापित किया है।
7. **नवीन दृष्टि प्रदान करना-** व्यवहारवादी दृष्टिकोण ने अपने निष्कर्षों के माध्यम से लोक प्रशासन को एक नवीन दृष्टि, नवीन पद्धति, नये मापन और नवीन विषय-क्षेत्र प्रस्तुत किये है।
8. **लोक प्रशासन को व्यवहारिक विषय बनाना-** व्यवहारवादी दृष्टिकोण ने लोक प्रशासन को एक वैचारिक अध्ययन के विषय के स्थान पर व्यवहारिक अध्ययन का विषय बनाया है तथा इसे केवल वर्णनात्मक विषय की बजाय एक विश्लेषणात्मक विषय की ओर उन्मुख किया।
9. इस प्रकार व्यवहारवादी उपागम क्षेत्रीय दृष्टिकोण के विपरीत सर्वव्यापी होने पर बल देता है। इसने लोक प्रशासन में वैज्ञानिक अनुसंधान तथा व्यवस्थित सिद्धान्त-निर्माण को प्रेरणा दी। अब परिकल्पनाओं का अन्तः सांस्कृति सन्दर्भ में परीक्षण करने से तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन एक आवश्यकता बन गया है। विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं के भिन्न-भिन्न पर्यावरणों का अध्ययन करने के लिये तुलनात्मक लोक प्रशासन ने कई सामाजिक विज्ञानों से धारणाऐं, उपकरण तथा जांच-परिणाम उधार लिये हैं और इस प्रकार अन्तर्विषयक(Interdisciplinary) दिशा विकसित की है, स्वयं व्यवहारवाद में एक छाते(umbrella) का काम किया है। जिसके अधीन तुलनात्मक लोक प्रशासन जो न केवल लोक प्रशासन के साथ अपितु अन्य कई विषयों के साथ विभिन्न रीतियों की अन्तर्क्रिया प्राप्त हुई है।

2.5.4 व्यवहारवादी दृष्टिकोण की आलोचना

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर आप भली-भाँति जान गये होंगे कि व्यवहारवादी उपागम ने लोक प्रशासन के अध्ययन को एक नया दृष्टिकोण, नई दिशा दी और अपनी उपयोगिता भी साबित की। हींज यूलाउ के अनुसार, अवसर पूर्ण धारणाऐं, भय, समय, संकीर्ण दृष्टि, कार्य प्रविधियों तथा पद्धतियों की अपूर्णता, आदि कुछ ऐसी सीमाऐं हैं जो व्यवहार की सफलता पर अंकुश भी रखती हैं और उसे सीमित भी रखती हैं। 1960 के दशक के करीब व्यवहारवादी दृष्टिकोण अपने चरमोत्कर्ष पर था। अमरीकी राजनीति संस्कृति जीवन प्रणाली तथा विज्ञान बनाने के सम्मान ने इसे विकसित होने में सहायता प्रदान की। परन्तु जैसे-जैसे इस दृष्टिकोण की मान्यता बढ़ने लगी,

इसकी कमियां भी सामने आने लगी। हींज यूलाउ के अनुसार, अवसर के पूर्ण धारणाऐं, भय, समय, संकीर्ण दृष्टि, कार्य प्रविधियों तथा पद्धतियों की अपूर्णता, आदि कुछ ऐसी सीमाऐं हैं जो व्यवहार की सफलता पर अंकुश भी रखती हैं और उसे सीमित भी रखती हैं। मलफोर्ड सिबले ने व्यवहारवाद की कुछ और सीमाओं को विस्तार से वर्णन किया है, जो इस प्रकार हैं-

1. **लोक प्रशासन को विज्ञान मानते की बात अनिश्चयपूर्ण-** व्यवहारवादी विचारकों के द्वारा मानव व्यवहार का विज्ञान प्रस्तुत नहीं किया जा सका। इतने समय बाद भी लोक प्रशासन को विज्ञान मानने की बात अभी अनिश्चयपूर्ण ही बनी हुई है।
2. **लोक प्रशासन को प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानों के समकक्ष बनाने का दुराग्रह-** व्यवहारवादी विचारक इस बात को भूल जाते हैं कि, प्राकृतिक विज्ञानों तथा लोक प्रशासन के तथ्यों में बहुत अन्तर है। वास्तव में लोक प्रशासन को प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानों के समकक्ष बनाने का प्रयास करना अत्यधिक कठिन है।
3. **अध्ययन की पद्धति पर अत्यधिक बल-** व्यवहारवादी विचारक अध्ययन की पद्धति पर अधिक बल देते हैं। अनेक बार ये भी देखा गया है कि व्यवहारवादी विचारकों ने महत्वपूर्ण विषयों को छोड़कर महत्वहीन विषयों के सम्बन्ध में तथ्यों और आंकड़ों को एकत्रित करने में ही अपने आपको बहुत व्यस्त रखा है।
4. **अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन में कट्टरपंथी-** व्यवहारवादी विचारक एक ओर जहाँ अपने निष्कर्षों तथा मान्यताओं को सापेक्ष मानते हैं, वहीं दूसरी ओर वे उस समय तक किसी के अस्तित्व को महत्व नहीं देते जब तक कि उसे गिना, तोला या मापा नहीं जाता। इस दृष्टि से ये भी धार्मिक कट्टरपंथियों के समकक्ष बन जाते हैं।
5. **अन्तिम मूल्यों के सम्बन्ध में स्पष्ट नहीं-** कुछ आलोचक विद्वानों का मानना है कि व्यवहारवादी विचारकों ने अन्तिम मूल्यों के विवेचन के बारे में कुछ नहीं कहा, जो कि एक असन्तोषजनक स्थिति है। अतः ये कहा गया है कि कोई भी उद्देश्यहीन कार्य प्रशासनिक कार्य की कोटि में कैसे हो सकता है?
6. **रूढ़िवादी-** व्यवहारवादी विचारक अपने आपको मूल्य निरपेक्ष मानते हैं परन्तु वास्तव में स्थायित्व के पक्षधर हैं इस प्रकार वे रूढ़िवादी बन गये हैं।
7. **इतिहासोत्तर प्रकृति-** व्यवहारवादी विचारकों की प्रकृति इतिहासोत्तर मानी जाती है, क्योंकि उनकी पद्धति में अब तक जो हो चुका है उसकी अवहेलना की गयी है।
8. **लघु-स्तरीय एवं अति महत्वपूर्ण घटनाओं पर अधिक ध्यान-** एक आलोचना ये भी की जाती है कि व्यवहारवादियों ने अपनी समस्त शक्ति लघु-स्तरीय एवं महत्व पूर्ण घटनाओं के अध्ययन में लगायी है और ऐसा माना गया कि इन्होंने व्यष्टि और समष्टि दोनों स्तरों पर अनेक महत्वपूर्ण पक्षों को उपेक्षित किया है।
9. **उपयोगितावाद पर प्रश्न चिन्ह-** व्यवहारवादी विचारकों ने वैज्ञानिकता की आड़ में जिस तरह से कल्पना शक्ति का सहारा लिया है, उसके कारण इस वाद की उपयोगिता पर ही प्रश्न-चिन्ह लग गया है।
10. **मात्र एक मनोवृत्ति-** कुछ वैज्ञानिक इस दृष्टिकोण या उपागम को एक सिद्धान्त या अध्ययन का उपागम मानने की अपेक्षा मात्र एक मनोवृत्ति ही करार देते हैं, जो एक विशेष सोच से प्रेरित थी।
11. **नीति-निर्माण में सीमित उपयोग-** नीति-निर्माण के क्षेत्र में भी व्यवहारवाद का उपयोग सीमित है। इस क्षेत्र में व्यवहारवाद से प्राप्त निष्कर्ष के अतिरिक्त कई अन्य कारक भी महत्वपूर्ण होते हैं।

12. **मानव-व्यवहार का सटीक विश्लेषण करने में समर्थ-** व्यवहारवादी उपागम से अभी तक मानव व्यवहार का सटीक विश्लेषण नहीं हो सका है क्योंकि, विश्व की सबसे जटिल अवधारणा, आश्चर्य तथा समस्या 'मानव व्यवहार' ही है। व्यवहारवादी भी मानव व्यवहार की व्याख्या करने में असमर्थ हैं।

व्यवहारवादी उपागम की उपरोक्त कमियों या आलोचनाओं के कारण ही सन् 1920 के आस-पास उत्तर-व्यवहारवादी आन्दोलन का आरम्भ हुआ। राजनीतिशास्त्री डेविड ईस्टन में व्यवहारवाद को पर्याप्त मात्रा में विकसित किया तथा उन्होंने ही उत्तर-व्यवहारवाद की शुरूआत की। उत्तर -व्यवहारवाद में वास्तविकताओं को समझने, मानव कल्याण को गति देने, पूर्ण मूल्य-निरपेक्षता से बचने तथा विचारों की संगतता को महत्व दिया गया है। अतः कहा जाता है कि परम्परावादी अध्ययन प्रणालीवाद(Thesis) थी, व्यवहारवादी आन्दोलन प्रतिवाद(Antithesis) बना, उत्तर-व्यवहारवादी संश्लेषण या संवाद(Synthesis) का पर्याय है।

अभ्यास के प्रश्न-

1. 'इडियोग्राफिक' तथा 'नोमोथेटिक' शब्द किसके द्वारा रचित है?
2. व्यवहारवादी उपागम के बारे में कौन सा वाक्यांश सही है?
3. कौन विद्वान लोक प्रशासन की परिस्थितिकी अथवा पर्यावरणात्मक अध्ययन से नहीं जुड़ा है?
4. लोक प्रशासन के अध्ययन में व्यवहारवादी दृष्टिकोण की उत्पत्ति किस विद्वान ने की?

2.6 सारांश

प्रस्तुत अध्याय में आपने जाना कि सामान्यतया लोक प्रशासन के अध्ययन की सुविधा हेतु मुख्यतया दो प्रकार के दृष्टिकोण प्रचलित हैं- परम्परागत एवं अर्वाचीन। परम्परागत दृष्टिकोण को मानने वाले विचारक संगठन के सिद्धान्त, विशेषताओं, आवश्यकताओं आदि पक्षों को केन्द्रीय विषय मानते हैं। इन विचारकों ने लोक प्रशासन की सम्पूर्ण समस्याओं को कानूनी दृष्टिकोण से देखा और लोक प्रशासन की व्याख्या में औपचारिकता, ऐतिहासिकता, वर्णनात्मकता एवं वैचारिकता को प्राथमिकता दी। इस दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थक व्हाइट, विलोबी और एण्डरसन हैं। परम्परागत दृष्टिकोण के अन्तर्गत कानूनी, ऐतिहासिक, विषय-वस्तु, राजनीतिक, वैज्ञानिक एवं जीवन-वृत्तात्मक(संस्मरणात्मक) पद्धतियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं। इन पद्धतियों में क्रमशः ऐतिहासिक पद्धति के आधार पर ही प्रशासकीय विकास का अध्ययन, संवैधानिक और प्रशासकीय कानून के माध्यम से सरकार के तीनों अंगों (व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका) आदि का तथा विभिन्न विभागों के संगठन, स्थानीय इकाइयों का गठन कैसे किया जाता है तथा ये कार्य कैसी करती हैं आदि का अध्ययन किया जाता है। साथ ही प्रशासकीय योजनाओं तथा सेवाओं का अध्ययन, निरीक्षण और पर्यवेक्षण के आधार पर विशिष्ट घटनाओं से सामान्य नियम बनाने की आवश्यक सामग्री का संग्रह करके उसे विभिन्न वर्गों में विभाजित करने की तथा इनके सम्बन्ध में विभिन्न कल्पनाऐं करके उनकी सत्यता परखने की पद्धति का अनुसरण किया जाता है। राजनीतिक दृष्टिकोण के आधार पर प्रशासकीय समस्याओं को राजनीतिक समस्याओं का अंग ही माना गया तथा आवश्यकता जाहिर की गयी कि प्रशासनिक समस्याओं को समझने के लिये राजनीतिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। वरिष्ठ प्रशासकों के कार्यों तथा अनुभवों के अभिलेखों तथा संस्मरणों का अध्ययन करके प्रशासन की समस्याओं तथा निर्णय की प्रक्रिया का वास्तविक एवं व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करने की बात जीवन-वृत्तात्मक पद्धति में मानी गयी।

आधुनिक अथवा अर्वाचीन दृष्टिकोण के अन्तर्गत-संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण, परिस्थितिकी दृष्टिकोण तथा व्यवहारवादी दृष्टिकोण को सम्मिलित किया जाता है। संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थक आमण्ड, ईस्टन एवं एप्टर माने जाते हैं। इस दृष्टिकोण का उपयोग किसी व्यवस्था का वर्णन करने के लिए एक पद्धति के रूप में किया जाता है। वाल्डो ने माना था कि यह पद्धति उपागम समाजशास्त्रीय उद्देश्यों और पद्धतियों

की प्रतिबद्धता से प्रेरित है, लेकिन यह मानविकी की परम्परागत संवेदनशीलता तथा शोध की अपेक्षा शिक्षा की व्यवहारिक रूचि से प्रभावित है। परिस्थितिकी दृष्टिकोण का सर्वप्रथम प्रयोग आई0 एम0 गॉस ने किया। रिग्स तथा डहल ने भी इस दृष्टिकोण के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। परिस्थितिकी दृष्टिकोण के अन्तर्गत प्रशासनिक समस्याओं का अध्ययन लोगों और उनके वातावरण के समर्थन में उनकी नागरिक मनोवृत्तियों और कुछ विशेष समस्याओं को दृष्टि में रख कर किया जाता है। रिग्स ने भी इस मामले में व्यापक चर्चा करते हुए कहा कि वातावरण का भले ही संगठन और प्रशासन पर प्रभाव पड़ता है, किन्तु संगठन और प्रशासन का वातावरण पर प्रभाव नहीं पड़ता है।

लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में व्यवहारवादी दृष्टिकोण का प्रचलन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुआ। साइमन, वीडनर, रिग्स आदि विचारकों ने लोक प्रशासन के अध्ययन के लिये व्यवहारवादी दृष्टिकोण को अपनाया अर्थात् इन्होंने प्रशासनिक संगठन में मानवीय व्यवहार का स्वरूप कैसा होता है? और विभिन्न प्रकार के संगठन किस तरह अन्य गतिविधियों को संचालित करते हैं? के अध्ययन पर बल दिया है। व्यवहारवादी दृष्टिकोण के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक तथा परिमाणात्मक पद्धतियों को प्रयोग में लिया जाता है। मनोवैज्ञानिक पद्धति ने अपनी मान्यताओं से ये सिद्ध करने का प्रयास किया कि मनुष्य या समूहों की इच्छाऐं तथा उनके व्यवहार प्रशासन को प्रभावित करते हैं इसलिये कानून बनने से पहले मानवीय तत्व का अध्ययन कर लेना आवश्यक है।

2.7 शब्दावली

प्रमाणिकता- किसी वस्तु आदि के संदर्भ में अनुभव के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत न करने अपितु उसे परीक्षण के उपरान्त स्वीकार करने की अवस्था, प्रस्थापनाऐं- विशिष्ट रूप से संस्थापित करना, आगमनात्मक- तर्क की जिस प्रक्रिया में एकाकी प्रेक्षणों के ज्ञात तथ्यों को जोड़कर अधिक व्यापक कथन निर्मित किया जाता है, परिलक्षित- अच्छी तरह से देखा भाला हुआ, अनुप्रेरित- जो किसी प्रेरणा से प्रेरित हो, अभिलेख- महत्वपूर्ण लेख, दस्तावेज, मितव्ययता- कम खर्चा, चर- परिचायक या गतियान, विश्लेषित- अलग किया हुआ, गतिशील- उन्नतिशील, क्रियाशील जिसमें गति हो, समाजीकरण- वह प्रक्रिया जिसमें मनुष्य दूसरों से अन्तःक्रिया करता हुआ समाज के रीति रिवाजों, विश्वासों को सीखता है, मूल्य-निरपेक्ष- जो किसी के पक्ष में न हो, संक्रमणशील- जिसमें निरन्तर बदलाव हो रहा हो, यथार्थवादी- जो वस्तु, विचार या सिद्धान्त जिस रूप में हो उसे उसी रूप में स्वीकार करना, मनोवृत्ति- मन की स्वभाविक स्थिति जिसके कारण व्यक्ति किसी ओर प्रवृत होता या हटता है, संगतता- संगत होने की अवस्था या भाव, प्रतिवाद (Antithesis)- विरोध, खण्डन, किसी कथन को मानने से इन्कार करना, दुराग्रह- अनुचित, सापेक्ष- जो दूसरों पर आधारित तथा आश्रित हो, संवाद/संश्लेषण- सहमति या स्वीकृति।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिग्स, **2.** अपनी प्रकृति में अनुभविक, **3.** डवाईट वाल्डो, **4.** चेस्टर बर्नाड और हरबर्ट साइमन

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 अवस्थी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा-2004
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर-2013
3. टी0एन0 चतुर्वेदी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन-1978

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य समग्री

1. अनिल गुप्ता, महिपाल चारण हिलोडी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, यूनिवर्सिटी बुब हाउस, जयपुर-2005

2. एम0पी0 शर्मा, बी0एल0 सदाना, हरप्रीत कौर, लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल, इलाहाबाद-2015

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन के अध्ययन की प्रमुख पद्धतियों का वर्णन कीजिए। इसमें से आप किस पद्धति को क्षेयस्कर समझते हैं और क्यों?
2. लोक प्रशासन के अध्ययन की विभिन्न प्रणालियों का वर्णन कीजिए।
3. लोक प्रशासन के अध्ययन में विभिन्न उपागमों की विवेचना कीजिए।
4. लोक प्रशासन के अध्ययन में संरचनात्मक-कार्यात्मक उपागम की व्याख्या कीजिए।

इकाई- 3 प्रशासन का सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवेश

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 पर्यावरण तथा लोक प्रशासन
3.3 प्रशासन का सांस्कृतिक परिवेश
3.4 प्रशासन का सामाजिक परिवेश
3.5 प्रशासन का राजनीतिक परिवेश
3.6 प्रशासन का आर्थिक परिवेश
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन में पर्यावरण, परिवेश अथवा परिस्थितिकी के अध्ययन का विचार वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। ऐसा माना गया है कि जिस प्रकार से एक पौधे के लिये उपयुक्त जलवायु, प्रकाश और बाहरी वातावरण की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार से एक सामाजिक संस्था के विकास और प्रशासन के लिये भी एक विशेष वातावरण आवश्यक है। मार्क्स के समय से ही यह माना जाता है कि व्यक्ति, समाज एवं प्रशासन के समस्त क्रियाकलापों का स्वरूप उसकी बाहरी परिस्थितियों के द्वारा निर्धारित होता है। आज जब सम्पूर्ण राज्य का स्वरूप ही प्रशासनिक हो गया है तो किसी भी संस्था या संगठन के विस्तृत विवेचन हेतु पर्यावरण का अध्ययन एवं विवेचन आवश्यक हो गया है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि लोक प्रशासन कई तत्वों से प्रभावित होता है जैसे. पर्यावरण, संस्कृति, राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक. परिवेश। लोक प्रशासन समाज विज्ञान का एक विषय है। इसे समझने के लिये देश में चारों ओर होने वाली घटनाओं का अध्ययन आवश्यक है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- पर्यावरण और लोक प्रशासन की अन्तर्सम्बद्धता को समझ पायेंगे।
- भली-भाँति समझ पायेंगे कि विभिन्न प्रकार का पर्यावरण लोक प्रशासन को किस प्रकार प्रभावित करता है?

3.2 पर्यावरण तथा लोक प्रशासन

मनुष्य तथा उसके सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा अन्य संस्थान पर्यावरण की देन है। पर्यावरण (Ecology) का शब्द जीवशास्त्र से लिया गया है। जहाँ इसका अभिप्राय होता है, पशु जाति तथा इसके प्राकृतिक वातावरण में परस्पर निर्भरता। किसी सामाजिक व्यवस्था में, वातावरण या पर्यावरण का अर्थ है- संस्थान, इतिहास, विधि,

आचारशास्त्र, धर्म, शिक्षा, परम्परा, विश्वास, मूल प्रतीक, पौराणिक गाथाऐं आदि, जिनको भौतिक तथा अभौतिक संस्कृति का नाम दिया जाता है। लोक प्रशासन सहित सभी संस्थानों पर समाज के पर्यावरण और संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार लोक प्रशासन अपने पर्यावरण से प्रभावित होता है, ठीक उसी प्रकार वह स्वयं भी पर्यावरण को प्रभावित करता है। एक ही प्रकार की संस्थाऐं अलग-अलग वातावरणों में विभिन्न प्रकार से कार्य करती है। अतः यदि हम किसी संस्था के संगठन और उसके कार्यों का समुचित ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो तत्सम्बन्धी वातावरण का विवेचन करना आवश्यक होगा। चूंकि लोक प्रशासन एक उप-व्यवस्था है, इसकी सामाजिक व्यवस्था के साथ परस्पर क्रिया होती है, सामाजिक व्यवस्था इसके आकार को ढालती है और यह सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करता है। लोक प्रशासन के सम्बन्ध में ये बात पूर्ण रूप से सत्य है, क्योंकि जो प्रशासनिक संस्थाऐं एक देश में सफलतापूर्वक कार्य करती है, उनको दूसरे देश भी अपनाने का प्रयास करते हैं। इनकी सफलता के लिये आवश्यक होता है कि उसके लिये उपर्युक्त पर्यावरण की व्यवस्था की जाये। अतः उस देश विशेष की समस्या परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन या विवेचन किया जाना आवश्यक हो जाता है। इसके साथ ही एक ही देश में वहाँ की प्रशासनिक संस्थाओं के संगठन और कार्य को सही रूप से समझने के लिये ये आवश्यक है कि उस देश की सामाजिक व्यवस्था और सरकार के रूप में भी अध्ययन किया जाये। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में पर्यावरण का विशेष महत्व है। प्रशासन के कुछ विशेषताऐं एक विशेष वातावरण में ही उपलब्ध होती हैं। अतः तुलनात्मक दृष्टि से यह अध्ययन किया जाना चाहिये कि कौन सा वातावरण किस संस्था के लिये उपयुक्त होता है, ताकि किसी देश में नयी प्रशासनिक संस्थाओं की शुरूआत करते समय उपयुक्त परिवेश की व्यवस्था की जा सके। अर्थात् लोक प्रशासन तथा पर्यावरण का सम्बन्ध द्विपक्षीय है। जिस प्रकार लोक प्रशासन अपने पर्यावरण से प्रभावित होता है, ठीक उसी प्रकार वह स्वयं भी पर्यावरण को प्रभावित करता है। इस सन्दर्भ में वी0पी0 सिंह कहते हैं ''किसी भी समय प्रशासन पर सांस्कृतिक वातावरण का अचूक प्रभाव होता है।'' 1947 में जॉन एम0 गॉस ने, लोक नौकरशाही और इसके पर्यावरण की अनिवार्य परस्पर निर्भरता का अध्ययन करने के लिये पर्यावरण की धारणा को लागू करने की आवश्यकता पर बल दिया। उसी वर्ष राबर्ट डहल ने अंतः सांस्कृतिक अध्ययनों की बात कही और प्रशासनिक ढाँचों और व्यवहार पर पर्यावरण के प्रभाव पर बल दिया। उन्होंने कहा कि लोक प्रशासन, 'राष्ट्रीय. मनोविज्ञान' तथा राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण जिसमें वह विकसित होता है, के प्रभाव से बच नहीं सकता। 1950 के उपरान्त ही पर्यावरण की लोक प्रशासन के साथ संगति (Relevance) के अध्ययन में वास्तविक और विस्तृत रूचि देखी गयी। लोक प्रशासन के पर्यावरणात्मक अध्ययन के अर्थ और महत्व को रमेश के0 अरोड़ा तथा अगस्टो फेरेरोस ने बताया कि लोक नौकरशाही को समाज के कई बुनियादी संस्थानों में से एक समझा जाना चाहिये। अतः इसके ढाँचे और कार्य को समझने के लिये इसका अध्ययन दूसरे संस्थानों के साथ पारस्परिक सम्बन्धों के सन्दर्भ में ही किया जाना चाहिये। अतः उस देश विशेष की समस्या. परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन या विवेचन किया जाना आवश्यक हो जाता है। इसके साथ ही एक ही देश में वहाँ की प्रशासनिक संस्थानों के संगठन और कार्य को सही रूप से समझने के लिये ये आवश्यक है कि उस देश की सामाजिक. व्यवस्था और सरकार के रूप के सन्दर्भ में भी अध्ययन किया जाये।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में पर्यावरण का विशेष महत्व होता है। प्रशासन की कुछ विशेषताऐं एक विशेष वातावरण में ही उपलब्ध होती हैं। अतः तुलनात्मक दृष्टि से यह अध्ययन किया जाना चाहिये कि कौन सा वातावरण किस संस्था के लिये उपयुक्त होता है? ताकि किसी देश में नयी प्रशासनिक संस्थाओं की शुरुआत करते समय उपयुक्त परिवेश की व्यवस्था की जा सके। डॉ0 आर0 के0 दुबे ने पर्यावरण या परिवेश के अध्ययन की इसी महत्ता को बताते हुए कहा कि ''लोक प्रशासन के आधुनिक विचारकों की ये मान्यता है कि किसी भी प्रशासनिक समस्या की जानकारी हेतु सम्बन्धित प्रशासन के बाह्य. परिवेश का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।''

सन् 1961 में एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स की पुस्तक, "The Ecology of Public Administration" प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में लोक प्रशासन तथा पर्यावरण जिसमें वह विकसित होता है, के बीच परस्पर क्रिया को तुलनात्मक ढंग से समझने का प्रयास किया गया था। रिग्स का कहना है कि ''किसी भी प्रशासनिक संरचना का महत्व उसकी परिस्थितिकी के अन्तर्गत ही समझा जा सकता है।'' रिग्स के अतिरिक्त जॉन एम0 गौस, रॉबर्ट डल, रास्को मार्टिन आदि विद्वानों ने भी लोक प्रशासन में पर्यावरण के अध्यन को व्यापक, विस्तृत एवं समृद्ध बनाया है। लोक प्रशासन की परिस्थितिकी का अध्ययन करने एवं तद्अनुसार प्रशासनिक कार्यकलापों का विश्लेषण करने से प्रशासनिक सुधारों को एक सार्थक दिशा मिल सकती है एवं परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप प्रशासनिक प्रक्रियाऐं तथा व्यवहार परिवर्धित किया जा सकता है।

अतः यह स्वीकार कर लिया गया है कि विभिन्न स्थितियों में लोक प्रशासन के पर्यावरणात्मक आयामों का ज्ञान लोक प्रशासन के अध्ययन के वैज्ञानिक विकास में सहायता दे सकता है। इसका व्यवहारिक महत्व इस बात में है कि, यह तकनीकी सहायता तथा प्रशासनिक विकास के क्षेत्रों में नीति-निर्माण प्रक्रिया का व्यवहारिक ज्ञान प्रदान करता है।

3.3 प्रशासन का सांस्कृतिक परिवेश

जैसा कि आपने अभी जाना कि लोक प्रशासन सहित सभी संस्थानों पर समाज के पर्यावरण और संस्कृति का भी प्रभाव पड़ता है। सामान्यतः सभ्यता तथा संस्कृति में वही अन्तर माना जाता है जो शरीर तथा आत्मा में होता है। सभ्यता बाह्य, भौतिकवादी तथा शीघ्र परिवर्तित होने वाले सामाजिक सन्दर्भों की व्याख्या करती है, जबकि संस्कृति आन्तरिक, आध्यात्मिक तथा मानव व्यवहार के पक्षों से जुड़ी है। 'संस्कृति' शब्द की उचित व्याख्या करना बहुत कठिन है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि संस्कृति का अर्थ किसी समुदाय की जीवनशैली है, जिसका समुदाय के रहन-सहन, खान-पान, पहनावा एवं जीवनशैली पर विशेष प्रभाव पड़ा है एवं समाज की संस्कृति अपने नागरिकों को अनेक आदर्शात्मक मूल्य प्रदान करती है। इन मूल्यों से लोक प्रशासन का संगठन एवं व्यवहार भी अछूता नहीं रहता है। प्रशासन के संगठन में विभिन्न कर्मचारियों के आपसी सम्बन्धों, उच्च अधिकारियों के निम्न अधिकारियों के प्रति दृष्टिकोण आदि पर इस बात का विशेष प्रभाव पड़ता है कि उस समाज विशेष की संस्कृति और मूल्य क्या हैं? एक-दूसरे को सम्मान देना, शिष्ट भाषा में विरोध करना तथा किसी भी कार्य के प्रति सहयोग, सहानुभूति और मानवीय दृष्टिकोण अपनाना, अन्तः संस्कार और संस्कृति की ही अमूल्य देन होते हैं। संस्कार, संस्कृति और मान्यताओं को ध्यान में रखकर ही प्रशासनिक व संवैधानिक कानूनों का निर्माण किया जाता है और यही कारण है कि एक देश की प्रशासनिक व्यवस्था तथा कानून दूसरे देश की प्रशासनिक व्यवस्था तथा कानून से एकदम भिन्न और विपरीत होते हैं। जी0ई0 ग्लेडन ने भी अपनी पुस्तक, "Dynamics of Public Administration" में लोक प्रशासन और सांस्कृतिक परिवेश के सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि ''यदि प्रशासनिक संस्कृति रूपान्तरण के कारण हुई प्रगति से सामजंस्य स्थापित नहीं करती, तो सामाजिक असन्तोष और हिंसा से ढांचा अन्ततः ध्वस्त ही हो जायेगा। सामाजिक संस्कृति की अनुकूलन क्षमता ही प्रशासन में लोक सामांजस्य और व्यवस्था बनाये रखने में प्रमुख भूमिका निभाती है।''

यदि भारतीय संस्कृति पर नजर डालें तो, भारतीय संस्कृति की धारा अनेकों बार अवरूद्ध भी हुई, परन्तु समय-समय पर भारतीय महापुरूषों ने उसे पुनः एकीकृत किया। साथ ही आधुनिक स्वरूप प्रदान करके उसे शाश्वत भी बना दिया। सामाजिक मूल्य, सम्प्रदाय, रूढ़ियां, भाषा, संचार, रहन-सहन, खान-पान, बोली तथा धर्म आदि संस्कृति के अंग माने जाते हैं। लोक प्रशासन को प्रभावित करने वाले प्रमुख सांस्कृतिक पर्यावरणीय कारकों में धर्म एवं साम्प्रदायिक आस्थाऐं, भाषा एवं बोली, शिक्षा तथा मूल्य, पहनावा, परम्पराऐं, रीति-रिवाज, लिपि, संचार के साधन आदि आते हैं।

सभ्यता व संस्कृति निरन्तर परिवर्तित होती रहती है और इसे कई कारकों ने परिवर्तित किया है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया कभी बहुत तीव्र और कभी धीमी भी रही है। व्यक्ति के व्यवहार तथा प्रशासन के कार्यकरण को प्रभावित करने में सम्बन्धित समाज की सांस्कृतिक विशेषताऐं बहुत प्रभाव डालती है। यदि धर्म के सन्दर्भ में देखा जाये तो भारत जैसे देश में अनेक धर्म को मानने वाले लोग रहते हैं। धर्म का अभिप्राय सामान्य शब्दों में होता है। वे तत्व जिनके रहने से ये समाज रहता है और जिनके ना रहने से यह समाज बिखर कर नष्ट हो जाता है। जैसे- धैर्य, क्षमा, उदारता, सन्तोष, ईमानदारी, पवित्रता, ज्ञान, सत्य, प्रेम, अहिंसा, परोपकार, सहयोग, अपनी ही भांति दूसरों की चिंता करना आदि और धर्म के इन तत्वों को नैतिक मूल्य या श्रेष्ठ जीवन-पद्धति के तत्व भी कहा जा सकता है। साथ ही ये कर्तव्य भी कहला सकते हैं और मानवीय सद्-गुण भी। ये तत्व दुनिया में सर्वत्र और सभी के लिये कल्याणकारी होते हैं और मानव-मात्र के लिये हितकर भी होते हैं। इनकी हितकारिता को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई कोई भी नहीं नकार सकता। धर्म को जीवन और आचरण में पूर्णतः उतार लेने के लिये और व्यक्ति के आत्मिक विकास के लिये भारत में विभिन्न दर्शनों एवं सम्प्रदायों का विकास हुआ है जैसे- अद्वैत, वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध तथा सिक्ख आदि। धर्म साध्य होता है और सम्प्रदाय उसकी प्राप्ति का साधन। भाषा, विचार-अभिव्यक्ति का एक अनिवार्य साधन है। जिन देशों की राष्ट्रीय भाषा होती है, वहाँ प्रशासन का कार्य सुविधाजनक बन जाता है।

उपरोक्त सभी सांस्कृतिक तत्वों के बारे में जानने के बाद ये स्पष्ट हो जाता है कि लोक प्रशासन संस्कृति में बांधा है, क्योंकि इसकी स्थिति या पर्यावरण इसको ढालता है तथा यह विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों या पर्यावरणों में निजी विशेषताओं का विकास करता है। विभिन्न देशों में लोक प्रशासन के ढ़ाँचों और कार्यों को देखने से पता चलता है कि औपचारिक संगठनों में बाहरी एकरूपता है, फिर भी उनके अनौपचारिक तथा व्यवहारिक नमूनों में बहुत अधिक विभिन्नताऐं हैं। इसका कारण भी यही है कि, प्रत्येक का रूप उसके समाज की संस्कृति ही प्रदान करती है। इन विभिन्नताओं के कारण ही एफ0 डब्ल्यू रिग्स सामाजिक ढ़ाँचों का वर्गीकरण तीन श्रेणियों में करते हैं- संयोजित (Fused), प्रिजमीय(Prismatic) तथा निवर्तित(Diffracted) और उन्होंने इन तीनों श्रेणियों में प्रशासन की निजी विशेषताओं का उल्लेख किया है। प्रिजमीय समाज के विश्लेषण में प्रशासनिक ढ़ाँचों पर पड़ने वाला पर्यावरण का प्रभाव ही ध्यान का मुख्य केन्द्र है।

यह अवश्य कहना होगा कि किसी भी समाज के सांस्कृतिक मूल्य अपरिवर्तनीय नहीं होते। संस्कृति परिवर्तनशीन है और संस्कृति तथा प्रशासन में निरन्तर परस्पर क्रिया होती रहती है। यही परस्पर क्रिया लोक प्रशासन तथा सरकार की भूमिका की पुनर्व्याख्या करती है। ये पारस्परिक क्रिया एकपक्षीय अथवा एक दिशोन्मुखी नहीं है अर्थात् केवल संस्कृति तथा पर्यावरण ही प्रशासन को प्रभावित नहीं करता अपितु यह द्विपक्षीय या द्वि-दिशोन्मुखी है। लोक प्रशासन भी समाज की संस्कृति और पर्यावरण पर समान रूप से प्रभाव डालता है। भारत में संस्कृति तथा प्रशासन के बीच परस्पर क्रिया के एक अध्ययन में बी0 पी0 सिंह लिखते है कि ''भारत में एक नया प्रशासनिक लोकाचार अधिकाधिक देखने में आ रहा है जो सामान्य इच्छा को प्रतिबिम्बित करने का प्रयास करता है और नई चुनौतियों का मुकाबला करने के लिये वह अपनी संगठनात्मक योग्यता तथा आदान(Inputs) को विकसित कर रहा है। इस सन्दर्भ में प्रशासन निरन्तर हमारे समाज की राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों की व्यवस्था के साथ परस्पर क्रिया में लगा है। यह इन व्यवस्थाओं को परिवर्तित करने वाले प्रभाव का कार्य करता है और साथ ही स्वयं भी इन सम्बन्धित व्यवस्थाओं की क्रियाओं से प्रभावित होता है। चूँकि लोक प्रशासन संस्कृति से बंधा है अत: इसका परिणाम यह है कि एक पर्यावरणात्मक स्थिति का लोक प्रशासन किसी भिन्न सांस्कृतिक. पर्यावरण से प्रतिरोपित(transplanted) नहीं किया जा सकता। रॉल्फ ब्रायबंटी(Ralph Braibanti) भी इस निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं। उनका कथन है ''जब संस्थानों को एक पर्यावरण से दूसरे वातावरण में प्रतिरोपित या स्थानान्तरित किया जाता है तो उनका विकास पूर्वकल्पित मार्गों पर नहीं होता और हो सकता है कि वे ऐसी आवश्यकताओं को पूरा करें जो उनकी उत्पत्ति के स्थान की आवश्यकताओं से भिन्न हो।'' एक समाज से लाये

गये विचारों और ढ़ाँचों को प्राप्तकर्ता समाज में पूर्व स्थित विचार और ढांचा परिवर्तिन ही एक बहुत ही गतिशील प्रक्रिया के द्वारा ढाल देते हैं। जिस प्रक्रिया को विभिन्न नाम दिये जाते हैं जैसे- संस्कृति प्रसारण तथा अभिग्रहण(culture radiation and reciption) और स्वदेशीकरण का सर्पिल गति से बढ़ना (spiralling indegenization)।

निष्कर्ष के तौर पर ये कहा जा सकता है कि प्रशासनिक व्यवहार को भली-भाँति समझने एवं उसका आर्थिक विश्लेषण करने के लिये प्रशासन के राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक पर्यावरण को समझना आवश्यक होता है। गाई पीटर्स तथा माइकल क्रोजियर, लोक प्रशासन की आन्तरिक संस्कृति या प्रशासनिक संस्कृति(Administrative culture) के अध्ययन की भी आवश्यकता प्रतिपादित करते हैं। प्रशासनिक संस्कृति वे पारम्परिक तरीके या ढंग हैं, जिसमें धार्मिक सोच और कार्य करते हैं। प्रत्येक देश में लोक प्रशासन की आन्तरिक संस्कृति बाह्य कारकों से अत्यधिक प्रभावित रहती है। भारत में बाबूराज, फाईलराज, नेता-संस्कृति, स्पीड मनी (कार्य शीघ्र करने के लिये पैसा देना) तथा नियमों के चक्रव्यूह प्रशासनिक संस्कृति के पर्याय हैं।

यह स्वयं-सिद्ध है कि अन्य संस्थानों की भाँति नौकरशाही भी समाज, जिसका की वह भाग है, को प्रतिबिम्बित करती है। औपचारिक नियमों एवं विवेकपूर्ण आचार का अध्ययन विशाल सामाजिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण जिसका कि नौकरशाही एक भाग है, के सन्दर्भ में किया जाना चाहिये। उदाहरण के तौर पर, भारत में अंग्रेजों ने असैनिक सेवाओं का विकास सामान्य योग्यता, ईमानदारी, निष्पक्षता तथा राजनीतिक तटस्थता के सिद्धान्तों के आधार पर किया था। भारत की नौकरशाही की भूमिका इन आदर्श नियमों की भाषा में नहीं समझी जा सकती, अपितु इसका अध्ययन तो इनकी सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं तथा दिशाओं के सन्दर्भ में होना चाहिए। अतः अनुभवमूलक अध्ययनों के आधार पर इस दृष्टिकोण को समर्थन मिलता है कि संस्कृति और प्रशासनिक उप-व्यवस्था के बीच निकट का सम्बन्ध है। गाई पीटर्स ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि ''कई बार नौकरशाही का चित्रण ऐसे किया जाता है, जैसे कि वे अपने समाजों को कुचलती चली जाती है। किन्तु वे अपने समाज तथा उनके मूल्यों के साथ कई पतले, परन्तु सशक्त बन्धनों से बंधी होती है।''

3.4 प्रशासन का सामाजिक परिवेश

किसी भी समुदाय का सामाजिक पर्यावरण जो उसके संस्थानों, संस्थात्मक नमूनों, वर्ग अथवा जाति सम्बन्धों, ऐतिहासिक वसीयत संपदा(legacy), परम्पराओं, धर्म, मूल्यों की व्यवस्था, विश्वास तथा आदर्श, लोकाचार आदि पर आधारित होता है, उस के प्रशासन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है, इसका कारण ये है कि लोक प्रशासन के भीतर का मानवीय तल अपने समाज की उपज होता है। विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाऐं और संस्थाऐं लोक कर्मचारियों के चरित्र की रचना करती है। लोक सेवा में सम्मिलित होने से पूर्व ही वे समाज के मूल्यों, लोकाचार तथा परम्पराओं को अपना लेता है। सामाजिक वातावरण में वह जिस दृष्टिकोण और रवैये का विकास कर लेता है, वे लोक सेवा में उसके निर्णयों को बहुत हद तक प्रभावित करते हैं। विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाऐं व संस्थाऐं लोक कर्मचारियों के चरित्र की रचना करती है। किसी भी प्रशासन की अनुक्रियाशीलता(Responsiveness) उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि, मूल्यों और व्यवहारों से अलग करके नहीं देखी जा सकती, यही उसकी निर्णय क्रिया तथा समाज में जिस प्रकार के लोगों से वह अपने आप को जोड़ता है उन पर जबरदस्त प्रभाव डालते हैं। रिग्स के द्वारा किये गये अध्ययनों के अनुसार किसी भी समुदाय का सामाजिक पर्यावरण जो उसके संस्थानों, समूहों, वर्ग (या जाति) सम्बन्धों, ऐतिहासिक विरासत, परम्पराओं, धर्म, मूल्य, आस्था, विश्वास, आदर्श तथा लोकाचार आदि पर आधारित होता है, उसके प्रशासन पर गहरा प्रभाव डालता है।

भारतीय समाज की विशेषता यह कि वह बहुलवादी समाज है, सभी सामाजिक प्राणी लोक सेवकों की भूमिका निभाते हैं। संक्षेप में, सामाजिक पर्यावरण से सम्बन्धित निम्नलिखित कारक महत्वपूर्ण एवं निर्णायक भूमिका

निभाते हैं- वर्ग तथा जाति, सामाजिक परम्पराऐं एवं मूल्य, सामाजिक न्याय एवं समानता, सामाजिक सम्बन्ध, पारिवारिक संस्कार, शिक्षा संस्थानों की भूमिका, सामाजिक परिवर्तनशीलता की दर, संचार के साधन, स्वैच्छिक संगठन और जनसंख्या तथा स्वास्थ्य।

भारत में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधारों पर अनेक वर्ग बन जाते हैं। समाज के इन वर्गों को पहचानना तथा उनमें जो वर्ग या जाति पिछड़ी और कमजोर है, उसे विशेष सुविधाऐं देकर ऊपर उठाना, प्रशासन का महत्वपूर्ण दायित्व बन जाता है। इसी प्रकार भारतीय समाज की संरचना के आधार जाति (वर्ग) और उप-जाति है। प्रारम्भ से ही भारतीय समाज जाति प्रधान रहा है और स्वतंत्रता के बाद समस्त राजनीतिक गतिविधियां, चुनाव, नियुक्तियां, दलों आदि में जाति का प्रभाव बढ़ा है और यह एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। प्रो0 जैन ने लिखा है कि, ''जनजातीय, भाषार्थी, धार्मिक, क्षेत्रीय और जातिगत निष्ठा भारतीय समाज की आधार रचना की मूल विशेषता है। इसने यहाँ की राजनीतिक और प्रशासनिक प्रणाली पर गहरी छाप डाली है और विकास की प्रक्रियाओं को भी प्रभावित किया है।'' इन सबके अतिरिक्त एक और तथ्य जो प्रशासनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है कि, प्रशासन को अब केवल कानूनी न्याय के आधार पर नहीं चलाया जा सकता, बल्कि प्रशासन के संचालन के लिये आज सामाजिक न्याय अधिक आवश्यक बन गया है। इसके साथ-साथ सामाजिक संस्थाओं का लोक प्रशासन की नौकरशाही से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। सामाजिक संस्थाओं का प्रशासन पर निरन्तर दबाव बना रहता है। इस सामाजिक दबाव के कारण लोक प्रशासन सतर्क एवं उत्तरदायी बना रहता है। दूसरी ओर, सामाजिक जागरूकता भी प्रशासनिक व्यवहार को जनोपयोगी बनाने में सहायता करती है। इससे ये बात और स्पष्ट हो जाती है कि प्रशासन को सामाजिक परिवेश के अनुसार संचालित करना पड़ता है। समाज, प्रशासन के अनुसार नहीं बल्कि प्रशासन, समाज के अनुसार संचालित होता है।

सामाजिक पर्यावरण के अन्य तत्व जैसे- रूढ़ियां(mores), परिवर्तन अथवा सुधार की ओर समाज का रवैया, धर्म, भाषा, परिवार या कबीले जैसे रक्त सम्बन्धी समूह, संघटन के तत्व जैसे संचार और यातायात के साधन आदि भी लोक प्रशासन को प्रभावित करते हैं। रिग्स ने परिवारों सम्प्रदायों, सामाजिक वर्गों तथा सभाओं जैसे समूहों आदि सामाजिक ढ़ाँचों का लोक प्रशासन पर सम्भावित प्रभाव देखा था। इनका लोक सेवाओं की भर्ती, समाजीकरण, पदोन्नति तथा गतिशीलता पर महत्वपूर्ण प्रभाव है। इसके अतिरिक्त, सामान्य सहमति तथा समानता जैसे प्रशासनिक मूल्यों को ढालने के लिये प्रशासन में संस्कृति और प्रतीकों की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाज में जो तनाव और संघर्ष प्रचिलत होते हैं, नौकरशाही उसका प्रतिनिधित्व करती है। यदि हमारा समाज गुटों में बँटा है और प्रान्त या क्षेत्रों की ओर झुकता है तो निश्चित रूप से यह संकीर्ण दृष्टिकोण सरकारी कर्मचारियों का भी प्रतिनिधित्व करता है। उदाहरण के तौर पर, नाइजीरिया में विस्तृत परिवार का प्रभाव बहुत महत्व रखता है, राजनीतिक संरक्षण की अपेक्षा भाई-भतीजावाद की समस्या बहुत बड़ी है, अतः राजनीतिज्ञ तथा असैनिक कर्मचारी दोनों ही पर रिश्तेदारों के एक दायरे को सहायता या समर्थन करने के लिए उग्र तथा निरन्तर दबाव रहता है। भाई-भतीजावाद, पक्षपात तथा भ्रष्टाचार केवल नाइजीरिया की ही विशेषता नहीं है। वास्तव में यह अधिकतर विकासशील देशों के लोक प्रशासन के बहुत सामान्य लक्षण हैं। इसका कारण यह है कि इन देशों में पारिवारिक या रक्त-सम्बन्ध अभी भी बहुत सशक्त हैं, जबकि पश्चिमी देशों में बहुत हद तक कम हो गये हैं। इसके अतिरिक्त विकासशील समाजों में यद्यपि भाई-भतीजावाद तथा भ्रष्टाचार की औपचारिक रूप से आलोचना की जाती है, फिर भी ये काफी प्रचलित हैं और इनको समाज की अदृश्य मान्यता प्राप्त है। प्रिजमीय (Prismatic) समाजों की व्याख्या करते हुए रिग्स कहते हैं कि ये रिवाज लोक प्रशासन में औपचारिकतावाद का कारण है। माइकल क्रोजियर ने फ्रांस की नौकरशाही के व्यवहार में वहाँ के सामाजिक, सांस्कृतिक नियमों की भूमिका महत्वपूर्ण मानी है। रूस के प्रशासन का आधुनिकीकरण करने के प्रयासों में पीटर महान(Peter the Great) को कड़े विरोध का सामना करना पड़ा था, क्योंकि परम्परागत सामाजिक मान्यताऐं शीघ्रता से परिवर्तित नहीं होती है। परिवार, वंश, मूल

निवास स्थान, सामुदायिक मान्यताऐं तथा सामाजिक मूल्य व्यक्ति के संस्कारों के भीतर तक समाहित होते हैं। यही कारण है कि पश्चिमी देशों में भाई-भतीजावाद का प्रचलन कम है, क्योंकि वहाँ व्यक्ति तथा परिवार (रक्त सम्बन्धी) की घनिष्ठता एवं आत्मीयता उस प्रकार की नहीं है, जैसे कि भारत या अन्य विकासशील देशों में पायी जाती है। शहरी बनाम ग्रामीण समाज की जीवनशैली तथा उनकी महत्वपूर्ण प्रकृति के पदों पर शहरी एवं अंग्रेजी पृष्ठभूमि के व्यक्तियों का विशेषाधिकार एवं सेना में जवानों के पदों पर ग्रामीण युवाओं का चयन सम्पूर्ण सामाजिक ढ़ाँचे की स्वतः व्याख्या करते हैं।

3.5 प्रशासन का राजनीतिक परिवेश

लोक प्रशासन की जड़ें राजनीति में होती हैं। राजनीति का सम्बन्ध किसी देश के शासन से होता है और शासन का क्रियात्मक रूप प्रशासन में दिखता है। प्रशासन और राजनीति का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ होता है। दोनों ही एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। राजनीतिक पर्यावरण, सामाजिक पर्यावरण से पूर्णतया अलग नहीं होता है। यह दोनों मिल कर वह स्थिति या वातावरण बनाते हैं, जिनमें लोक प्रशासन को यदि अधिक नहीं तो उतना अवश्य प्रभावित करता है जितना कि सामाजिक पर्यावरण। राजनीति परिवेश में जब बदलाव आता है, तब प्रशासनिक संस्थाओं में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि किसी भी देश के लोक प्रशासन तथा उसकी संरचनाओं पर वहाँ के राजनीतिक परिवेश का गम्भीर प्रभाव पड़ता है। शासन तथा राजनीतिक पर्यावरण एक-दूसरे के पर्याय बनते जा रहे हैं। राजनीतिक पर्यावरण के कुछ कारक जैसे- संवैधानिक पर्यावरण, शासन प्रणाली, शक्तियों का बंटवारा, राजनीतिक दलों की मान्यताऐं, राजनीतिज्ञ व लोक सेवक सम्बन्ध आदि लोक प्रशासन की परिस्थितिकी को प्रभावित करते हैं।

भारतीय सन्दर्भ में प्रशासन एवं राजनीतिक पर्यावरण की विवेचना करने के लिये हमें इसको विकासशील और विकसित देशों के सन्दर्भ में समझना होगा। विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों में राजनीतिक पर्यावरण सर्वथा भिन्न प्रकृति का पाया जाता है एवं दोनों स्थानों में लोक प्रशासन में अन्तर दिखाई पड़ता है। विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्था भिन्न होती है, क्योंकि वहाँ की सेवाऐं थोड़ी परिपक्वता प्राप्त होती है तथा वहाँ आधुनिकता भी देखने को मिलती है। आधुनिकीकृत राजनीति में कई प्रकार के लक्षण देखने को मिलते हैं, जैसे- नौकरशाही का विशेषीकरण, उच्चस्तरीय व्यवसायिक पुट, कार्यक्षेत्र विस्तार, आपसी सामंजस्य, जनसहयोग, सच्चरित्रता आदि। नियंत्रण एवं आपसी समन्वय सहित अधिकार क्षेत्र की भी स्पष्टता रहती है, अतः विकसित राष्ट्रों की राजनीति एवं लोक प्रशासन दोनों मिलकर राष्ट्रीय विकास में योगदान देते हैं। वहीं दूसरी ओर यदि विकासशील राष्ट्रों की ओर देखें तो वहाँ राजनीतिक व्यवहार बहुत ही अस्पष्ट एवं अपरिपक्व दिखाई देता है। इन राष्ट्रों की राजनीतिक प्रक्रियाऐं तथा संस्थाऐं एक संक्रमणकाल से गुजरती हैं, जहाँ विकासवादी विचारधाराऐं, सरकारों की अस्थिरता, शासक तथा शासकों के मध्य खाई, राजनीतिक संस्थाओं में असन्तुलन तथा विदेशी शक्तियों का प्रभाव दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त विकासशील राष्ट्रों में राष्ट्रीय समस्याओं तथा विवादित विषयों पर सर्वसम्मति का अभाव पाया जाता है परिणामस्वरूप सत्तारूढ़ शासक दल द्वारा पूर्ववर्ती राजनीतिक दल द्वारा बनायी गयी नीतियों तथा कार्यक्रमों को परिवर्तित कर दिया जाता है। राजनीतिक दलों की संविधान, कानून तथा राष्ट्रीय विकास के प्रति कटिबद्धता नहीं होती है, बल्कि वो वोटों की राजनीति में ज्यादा विश्वास करते हैं। फैरेल हैडी, आमण्ड, राबर्ट टूकर तथा शोल्स आदि ने विकसित एवं विकासशील देशों में शासन, राजनीति एवं नौकरशाही को वर्गीकृत करने का प्रयास किया, उनके अनुसार प्रशासन की कुछ विशेषताऐं इस प्रकार से हैं-

1. **आधुनिकीकृत प्रशासन(Mordernizing Administration)-** जापान आधुनिकीकृत प्रशासन का उदाहरण माना जाता है। जापान के संविधान के अनुसार लोक सेवक किसी विशेष समूह के नहीं बल्कि समाज के प्रतिनिधि माने जाते हैं। यहाँ लोक सेवक राजनीतिक निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

2. **परम्परागत स्वेच्छाचारी व्यवस्था(Traditional-AutocraticSystem)-** ऐसी व्यवस्था में यमन, पेरू, मोरक्को आदि शामिल किये गये हैं, जहाँ जनाधिक्य की समस्या भी है। यहाँ परम्परागत राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था पायी जाती है। अर्थात् दलों या दबाव समूहों का अस्तित्व न के बराबर है, प्रशासनिक तंत्र एवं सेना स्वेच्छाचार्य शासकों की इच्छाओं को पूरा करने में व्यक्त होती है। समाज के विकास को शासकों द्वारा प्राथमिकता नहीं दी जाती है, केवल प्रयास भर किये जाते हैं।
3. **नागरिक संस्कृति(Civic Culture)-** नागरिक संस्कृति का प्रचलन संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ब्रिटेन में पाया जाता है। यहाँ राजनीतिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक संस्कृति में समानता है तथा लोकसेवक राजनीति के साथ मिलकर काम करते हैं। सामाजिक शक्तियाँ अर्थात् नागरिक भी इन देशों में लोक प्रशासन में विशेष भूमिका निभाती हैं।
4. **शास्त्रीय प्रशासन(Classic Administration)-** फ्रान्स तथा जर्मनी जैसे देशों में शास्त्रीय प्रशासन प्रवर्तित है, जहाँ कितनी भी राजनीतिक उथल-पुथल क्यों न मचे, लोक प्रशासन यथावत कार्य करता रहता है। अधिकार सम्पन्न लोक सेवक बहुत शक्तिशाली भूमिका निभाते हैं तथा राजनीतिक क्रियाकलापों में भी रूचि लेते हैं।
5. **नौकरशाही अभिजन व्यवस्था(Bureaucratic Elite System)-** इस प्रकार की व्यवस्था के उदाहरण में म्यांमार (बर्मा), इण्डोनेशिया, इराक, सूडान एवं कई अफ्रीकी देशों को शामिल किया जाता है। इन देशों में शासक वर्ग तथा लोक सेवक वर्ग में समाज के उच्च वर्ग, धनी किसान, उद्योगपति और प्रभुत्व सम्पन्न शामिल होते हैं। इन लोगों की वास्तव में सामाजिक न्याय एवं विकास में कोई आस्था नहीं होती, वहीं दूसरी तरफ जनता का भी इन पर ज्यादा विश्वास नहीं होता। लोक सेवकों की अपेक्षा सैनिक अधिकारी शासन सत्ता और राजनीति के ज्यादा समीप होते हैं।
6. **प्रभावशाली दल: गतिशील व्यवस्था(Dominant Party: Mobilization System)-** मिस्त्र, घाना, अल्जीरिया, बोलिविया एवं अन्य पश्चिमी अफ्रीकी देशों में प्रवर्तित है। इन देशों की राजनीति में दमन एवं निरंक्रुशता अधिक मात्रा में पायी जाती है। इन देशों में केवल एक ही राजनीतिक दल अग्रणी रहता है, बाकी दलों को आगे नहीं आने दिया जाता है। विशिष्ट समूह, शिक्षित युवा, नौकरशाही तथा अभिजन आदि सत्ता के प्रति अपनी स्वामिभक्ति प्रदर्शित करते हैं।
7. **प्रभावशाली दल: अर्द्ध प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यवस्था(Dominant Party: Semi Competitive System)-** इस के अन्तर्गत ऐसे देश आते हैं, जहाँ एक ही राजनीतिज्ञ वर्षों तक अपना प्रभुत्व बनाये रखता है। हालांकि यहाँ अन्य दल भी मौजूद होते हैं, परन्तु वे कड़ी प्रतिस्पर्द्धा में नहीं होते हैं। भारत की कांग्रेस पार्टी और मैक्सिको की पी0आर0आई0 इसके उदाहरणों में शामिल हैं। डेविड एप्टर इसे गतिशील व्यवस्था मानते हैं, जिसका उद्देश्य समाज परिवर्तन, पंथ निरपेक्षता तथा समानता स्थापित करना है। यहाँ नौकरशाही की स्थिति मध्यम होते हुए पूर्णतया प्रभावी नहीं कहीं जा सकती है।
8. **बहुलवादी प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यवस्था(PolyarchialCompetitveSystem)-** इस व्यवस्था में फिलीपीन्स, मलेशिया, लेबनान, ब्राजील, तुर्की, श्रीलंका जैसे विकासशील देशों को शामिल किया जाता है। इन देशों में अनेक राजनीतिक दल, समूह या संगठन कार्य करते हैं। ये सभी संगठन भी प्रतिस्पर्द्धा की दौड़ में चलते हैं और नीति निर्माण एवं अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों पर इनकी सहमति रहती है। राबर्ट डाल ने बहुलवाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत बताया है कि प्रत्येक संगठन किसी ना किसी स्तर पर अपनी भूमिका अवश्य निभाता है। जनसाधारण के बीच सक्रिय रहकर राजनीतिक दल न केवल जनमत का निर्माण करते हैं, बल्कि शासन सत्ता की प्राप्ति के लिये सदैव संघर्ष करते हैं। इस संघर्ष में वे नौकरशाही से भी उलझते रहते हैं।

9. **साम्यवादी सर्वाधिकारवादी व्यवस्था(Communist Totalitarian System)-** इस व्यवस्था के अन्तर्गत वे विकासशील देश आ जाते हैं, जहाँ साम्यवाद का प्रचलन है। जैसे- रोमानिया, पोलैण्ड, हंगरी, बुल्गारिया आदि। लेकिन बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में साम्यवाद का मोह हटने लगा था। साम्यवाद का तात्पर्य उस शासन व्यवस्था से है, जिसमें जनता के कल्याण एवं विकास की सम्पूर्ण जिम्मेदारी सरकार स्वयं उठाती है और उत्पादन के समस्त साधनों पर राज्य का नियंत्रण रहता है। दूसरी ओर सर्वाधिकारवाद वह व्यवस्था है, जब व्यक्ति के जीवन की समस्त गतिविधियां सरकार के नियंत्रण में आ जाती हैं तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का कोई महत्व नहीं रहता है। साम्यवादी सर्वाधिकारवादी व्यवस्था अब उपरोक्त वर्णित सभी देशों में दम तोड़ चुकी है।

उपरोक्त वर्णित राजनीतिक, संवैधानिक वर्गीकरण, समय के साथ परिवर्तित होता रहता है, क्योंकि स्वयं राजनीति भी समसामायिक परिस्थितियों से प्रभावित होती रहती है।

इस प्रकार इन सभी विशेषताओं को देखने के बाद भारतीय सन्दर्भ में राजनीतिक पर्यावरण को समझना अधिक आसान हो जाता है। राजनीतिक अस्थिरता के सन्दर्भ में यदि भारत की स्थिति की विवेचना की जाये तो भारत में वर्ष 1989 से 1998 के मध्य हुए चार आम चुनावों के समय केन्द्र में त्रिशंकु विधायिका(Hung Parliament) की स्थिति उत्पन्न होने पर अस्थिर सरकारों द्वारा शासन संचालित किया गया। इस प्रक्रिया में राजनीतिक कार्यपालिका सुदृढ़ नहीं कहीं जा सकती है, क्योंकि गठबन्धन या साँझा सरकारें बिना किसी सहारे के नहीं चल सकती हैं। इस राजनीतिक अस्थिरता का दुष्परिणाम यह हुआ है कि परम्परागत नौकरशाही अर्थात् स्थायी कार्यपालिका की निंरकुशता नियन्त्रित होने के स्थान पर और अधिक बढ़ी तथा विकास की प्रक्रिया नकारात्मक रूप से प्रभावित हुई है। इसी प्रकार यदि राजनीतिक परिदृश्य में व्याप्त निराशा, संघर्ष, अस्थिरता और अवसरवादिता के समग्र सामाजिक ढ़ाँचे और लोक प्रशासन की कार्यप्रणाली को प्रभावित करने का प्रश्न है, तो भारत में भी ये स्थिति पायी जाती है। सैद्धान्तिक रूप से कोई भी लोक सेवक राजनीतिक कार्यकलापों में भाग नहीं ले सकता है, फिर भी प्रशासनिक अधिकारियों में पर्याप्त मात्रा में राजनीतिक भेदभाव पाया जाता है। सरकारी कर्मचारियों के स्थानान्तरण तथा पदस्थापन में दिखाई देने वाली राजनीतिक संकीर्णताऐं लोक प्रशासन को व्यापक रूप से प्रभावित करती है। नीति-निर्माण का कार्य राजनीतिक मंत्री द्वारा किया जाता है एवं निष्पादन का कार्य लोक सेवकों का होता है। ऐसी स्थिति में राजनीतिक मान्यताओं का प्रशासन पर प्रभाव पड़ना स्वभाविक है। 'नवीन लोक प्रशासन' की विचारधारा भी यह मानती है कि राजनीति तथा लोक प्रशासन का पृथक्करण ना तो सम्भव है और ना ही व्यवहारिक।

3.6 प्रशासन का आर्थिक परिवेश

आधुनिक युग में आर्थिक विकास का अत्यधिक महत्व हो गया है। कुछ समय पूर्व तक राजनीतिक परिस्थितियों को ही अधिक महत्व दिया जाता था, परन्तु पिछले कुछ वर्षों से आर्थिक विकास के अनुसार ही नवीन इकाईयों का गठन किया जाता है। आर्थिक पर्यावरण ऐसा तत्व है जो लोक प्रशासन के साथ परस्पर क्रिया में लगा होता है। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की आर्थिक स्थिति का वहाँ के लोक प्रशासन के स्वरूप, संगठनों और कार्यों पर प्रभाव पड़ता है। किसी भी देश का लोक प्रशासन वैसा ही होता है, जैसा कि वहाँ का आर्थिक पर्यावरण होता है। उच्च स्तरीय संसाधनों से सम्पन्न देश का प्रशासनिक-तंत्र विकसित होता है तो दूसरी ओर आर्थिक विपन्नताओं से जूझते विकासशील राष्ट्रों का प्रशासनिक तंत्र व्याधिग्रस्त होता है। प्रायः सभी विकासशील देशों में तीव्र आर्थिक विकास एवं आधुनिकीकरण के लिये प्रशासनिक सुधारों को आवश्यक समझा जाता है। सामान्यतः अर्थव्यवस्था की प्रकृति तथा नीतियां राजनीति एवं प्रशासन द्वारा निर्धारित की जाती हैं। प्रशासन को आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला जाता है और इनके लिये समय-समय पर प्रशासनिक सुधार किये

जाते हैं। किसी भी देश की योजना को लागू करने का दायित्व भी प्रशासन का ही होता है, अतः देश की प्रशासनिक प्रणाली वहाँ के आर्थिक जीवन को नियंत्रित करती है। आज की प्रशासनिक व्यवस्था का स्वरूप मात्र कानून व्यवस्था तक ही सीमित न होकर, व्यक्ति के जीवन के हर पहलू को सवारने के लिये लोक कल्याणकारी बन गया है। डॉ0 आर0 के0 दुबे लिखते हैं ''लोक कल्याणकारी राज्य में आर्थिक विकास और सामाजिक विकास की अनेकों नवीन योजनाऐं संचालित की जाती है। प्रत्येक आर्थिक योजना पर्यावरण की परिस्थितियों से ही प्रभावित होती है, लेकिन इन योजनाओं को लागू करना लोक प्रशासन का दायित्व बन जाता है। आर्थिक विकास कार्यक्रमों को पूरा करने की लोक प्रशासन की क्षमता उत्पादन का महत्वपूर्ण निर्णायक तत्व होती है। आर्थिक विकास के उद्देश्यों को प्राप्त करने तथा अपनी योग्यता को बढ़ाने हेतु लोक प्रशासन को आमतौर पर नये मूल्यों को भी अपनाना पड़ता है। अतः आर्थिक वातावरण तथा लोक प्रशासन दोनों एक-दूसरे के साथ क्रिया-प्रतिक्रया करते हैं तथा एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।'' लोक प्रशासन और पर्यावरण के आर्थिक पहलू को कुछ तथ्यों का अध्ययन करके और स्पष्टता से समझा जा सकता है।

1. आधुनिक काल में यह माना जाता है कि सामाजिक, आर्थिक विकास की प्रक्रिया मूलतः लोक प्रशासन की कार्यकुशलता पर निर्भर करती है।
2. आर्थिक विकास की प्रक्रिया में लोक प्रशासन की भूमिका महतवपूर्ण है। प्रशासन को सदा आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने के लिये समय-समय पर प्रशासनिक सुधार किये जाते हैं।
3. किसी भी देश की आर्थिक दशाओं में प्रगति या अवनति प्रशासन की नीतियों पर निर्भर करती है।
4. आर्थिक व्यवहार का प्रशासन पर भी प्रभाव पड़ता है। कोई भी देश जब अपना आर्थिक विकास करना चाहता है, तब उसे तदनुसार संस्थागत परिवर्तन करने होते हैं। ऐसी व्यवस्था की जाती है कि अधिक काम करने का प्रोत्साहन प्राप्त हो।
5. अर्थव्यवस्था की समस्त गतिविधियों पर राज्य एवं समाज के हित में नियंत्रण करने का दायित्व भी प्रशासन का होता है।
6. अर्थ या वित्त, प्रशासन का जीवन-रक्त कहा जाता है। जिस प्रकार रक्त का नियमित प्रवाह शरीर के संचालन के लिये आवश्यक होता है। ठीक उसी प्रकार लोक प्रशासन को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये भी पर्याप्त साधन, कर्मचारियों का सन्तोष, कार्य की उचित दशाऐं आदि की व्यवस्था वित्त के द्वारा ही की जाती है।
7. विकासशील देशों का प्रशासन जो विकास प्रशासन का पर्याय बन चुका है, का प्रमुख उद्देश्य भी सामाजिक, आर्थिक विकास को सुनिश्चित करना होता है।
8. इसके अतिरिक्त तीव्र आर्थिक विकास किसी भी देश में नियोजित तरीके से ही प्राप्त किया जा सकता है। नियोजन का उद्देश्य सीमित साधनों के द्वारा कम समय में अधिक लक्ष्यों की प्राप्ति होता है। इनकी प्रगति के लिये प्रशासन का स्वरूप लोक कल्याणकारी हो जाता है और विकासशील प्रशासन का जन्म होता है। इस प्रकार लोक प्रशासन नियोजन तन्त्र का चालक और प्रेरक होता है।
9. लोक प्रशासन की सबसे महत्वपूर्ण कमी या समस्या भ्रष्टाचार के अनेक कारण हैं, जिनमें से प्रमुख आर्थिक ही है। अतः प्रशासन को भ्रष्टाचार रहित रखने के लिए आर्थिक उपाय ही खोजने होंगे।

अतः निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि ना केवल प्रशासन आन्तरिक जीवन को नियंत्रित करता है, बल्कि देश की आर्थिक स्थिति का प्रभाव भी प्रशासन पर पड़ता है। लोक प्रशासन की समस्याऐं वास्तविक होती हैं तथा पूर्ण अर्थव्यवस्था का ही एक अंग होती है। लोक प्रशासन का सम्बन्ध, कार्य एवं प्रकृति देश के आर्थिक जीवन का एक निर्णायक तत्व मानी जाती है।

विकासशील देशों में लोक अधिकारियों का कम वेतन तथा सरकारी भ्रष्टाचार भी उनके आर्थिक विकास के निम्न स्तर, तथा तकनीकी और मानवीय साधनों की कमी से जुड़े हुए हैं। विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था भी पिछड़ी हुई मानी जाती है, क्योंकि उसमें जनाधिक्य, परम्परागत देशों की भरमार, कम औद्योगिकीकरण, तकनीकी पिछड़ापन, गरीबी, बेरोजगारी, संसाधनों की कमी या निम्न गुणवता, कृषि पर बहुत अधिक निर्भरता आदि की समस्याऐं भी जुड़ी रहती हैं। अर्थव्यवस्था की इस शोचनीय स्थिति के कारण ही लोक प्रशासन के सम्मुख नित नई चुनौतियां उत्पन्न होती रहती हैं। इसी कारण यह कहा जाता है कि, किसी भी देश के आर्थिक पर्यावरण को समझे बिना प्रशासन का विश्लेषण करना जटिल एवं अव्यवहारिक है। भारत सहित विश्व के अधिकांश विकासशील देशों में एक ओर पर्याप्त भूमि अनुपयोगी पड़ी है, वहीं दूसरी ओर बेरोजगारी बढ़ रही है। वास्तव में विकासशील देशों में आर्थिक संसाधनों तथा नीतियों में समन्वय एवं व्यवहारिकता का पर्याप्त अन्तर रहने के कारण अर्थव्यवस्था का संचालन बिखरा हुआ है और कमजोर दिखाई पड़ता है। अमेरीकी प्रशासन का अध्ययन करने के पश्चात एफ0डब्ल्यू0 रिग्स का निष्कर्ष था कि अमेरीकी प्रशासन की बहुत सी विशेषताऐं उसकी अर्थव्यवस्था के नमूने पर ढली हुई है, यही बात विकासशील देशों के प्रशासन के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। संयुक्त राज्य अमरीका में आर्थिक उत्पादकता बहुत ऊँची है और इसका प्रशासन से सम्बन्ध है। अमरीका के आर्थिक संख्यात्मक प्रबन्धों में कमी वाले साधनों का उपयोगी तथा विवेकपूर्ण प्रयोग होता है। इससे सेवाओं और उत्पादन में बहुत वृद्धि होती है, इससे कई सामाजिक मूल्यों को ऐसा समझा जाता है, जैसे कि वे कोई वस्तु हो और बाजार में खरीदी या बेची जाती हो। भूमि, मनुष्य की मजदूरी, धन, समय, सभी बिकाऊ समझे जाते हैं और समाज बाजार को केन्द्रीय संस्थान मानकर कार्य करता है। रिग्स का कहना है कि अमरीकन समाज का बाजार के प्रति उन्मुख होने में हमारी प्रशासन व्यवस्था पर प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार का प्रभाव है। अमरीका के लोक कार्मिक प्रशासन के कई नियम, जैसे- 'समान कार्य के लिये समान वेतन' (नौकरशाही मजदूरी के लिये कीमतों को बराबर करना), किसी सरकारी कर्मचारी को उसका कार्य सन्तोषजनक ना होने पर पद से हटा देना (''पद के लिये योग्यतम व्यक्ति'' का सिद्धान्त), नौकरशाह तथा नियुक्त करने वाले अभिकरण के बीच सम्बन्धों का निश्चित होना तथा समझौते की शर्तों पर आधारित होना (समझौता करने का अधिकार) आदि अमरीका की आर्थिक व्यवस्था से प्रभावित है। इसी प्रकार अमरीका के लोक वित्तीय प्रशासन ने भी मार्केट सिद्धान्त से संकेत प्राप्त किया है। वहाँ कर(Tax) की दर राज्य द्वारा दी जाने वाली सेवाओं से सम्बन्धित है तथा निष्पादन बजटिंग प्रणाली(Performance Budget System) इसी के उदाहरण माने जाते हैं। रिग्स का मानना है कि ''अमरीका का मार्केट समाज प्रशासनिक क्षेत्र में भी वहीं भौतिक मूल्य लागू करना चाहता है, जो वह मार्केट में लागू करता है।'' रिग्स आगे चलकर फिर कहते है, ''अधिकतर अमरीका के लोक प्रशासन के सार का निर्धारण उसके मार्केट समाज की आर्थिक आवश्यकताऐं करती हैं। जो बात सामान्य तौर पर किसी भी औद्योगिक दृष्टि से विकसित समाज के लिए सत्य हो सकती है, वह यह है कि वह अपनी अर्थव्यवस्था के समर्थन के लिये उपयोगी तथा विवेकपूर्ण संस्थानों पर आधारित होता है। मार्केट तथा ब्यूरो (सरकारी विभाग) दोनों ही औद्योगिक समाज के अनिवार्य ढ़ाँचे हैं। अतः मेरा निष्कर्ष यह है कि यह इतना अधिक स्वयं मार्केट नहीं है, अपितु औद्योगीकरण है, जिसके परिणामस्वरूप एक विवेकपूर्ण(achievement oriented) लोक प्रशासन व्यवस्था की स्थापना सम्भव तथा अनिवार्य दोनों है।''

बाजारीकरण(marketization) लोक प्रशासन के अन्य पक्षों, जैसे- नियोजन, संचार लोक सम्बन्ध, प्रबन्ध, व्यवसायिक तथा स्टॉफ संगठन आदि को भी प्रभावित करता है। विद्वान प्रशासनिक ब्यूरो अर्थात् सरकारी विभाग को एक प्रकार का बाजार ही मानते हैं, जिसमें भाग लेने वाले निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने का अधिक से अधिक प्रयास करते हैं। इसके बदले में लोक प्रशासन अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है। विकसित हो या विकासशील

सभी प्रकार के देशों में लोक प्रशासन लाइसेंसों आदि कुछ परिस्थितियों में वस्तुओं के मूल्यों को निर्धारित करके एकाधिकारों को रोकने, आयात-निर्यात को नियन्त्रित करने आदि तरीकों से अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करता है। आजकल अर्थव्यवस्था, प्रशासन तथा समाज के अन्तर्सम्बन्धों के क्रम में सकल राष्ट्रीय मुख की नई अवधारणा भी जन्म ले रही है। यह अवधारणा यह मान कर चलती है कि विकासशील राष्ट्र विश्व की प्रतिस्पर्द्धा के कारण अपनी सांस्कृतिक पहचान तथा आर्थिक सुख खोते जा रहे हैं। अतः राष्ट्रीय आर्थिक विकास, की प्रक्रिया में उन आध्यात्मिक मूल्यों का लोप न हो, जो मानव सभ्यता के अभिन्न तत्व है। पिछले दशकों से यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण रूप से उठ रहा है कि पश्चिमी मॉडल पर आधिारित विकास कार्यक्रम विकासशील राष्ट्रों की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है। अतः इन देशों की अर्थव्यवस्था को स्थानीय कारकों एवं विशेषताओं के आधार पर पुर्नसंचित किया जाना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न-

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन का सम्बन्ध किससे है?
2. लोक प्रशासन किस प्रकार का विज्ञान है?
3. ''लोक प्रशासन पर बाह्य वातावरण का प्रभाव पड़ता है'' यह मान्यता किस उपागम से सम्बन्धित है?

3.7 सारांश

इस अध्याय के द्वारा आप ये अवश्य समझ गये होंगे कि लोक प्रशासन एक मानवीय क्रिया है, इसलिये इस पर पर्यावरण का व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति, समाज एवं प्रशासन के समस्त क्रियाकलापों का निर्धारण बाह्य परिस्थितियों द्वारा होता है। लोक प्रशासन के आधुनिक विचारकों की यह मान्यता है कि किसी भी प्रशासनिक अवस्था की सम्पूर्ण जानकारी हेतु सम्बन्धित प्रशासन के बाह्य परिवेश का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। जो प्रशासनिक संस्थाऐं किसी एक देश में सफलतापूर्वक काम करती हैं, उन्हें दूसरे देशों में अपनाने के प्रयास किये जाते हैं, लेकिन उस प्रशासनिक व्यवस्था को दूसरे देशों में अपनाये जाने के पूर्व दोनों के पर्यावरण का सूक्ष्म अध्ययन एवं विवेचन आवश्यक हो जाता है। परिवेश सम्बन्धी तत्व न सिर्फ समाज में प्रभावशाली परिवर्तन लाते हैं, बल्कि पर्यावरण सम्बन्धी तत्व प्रशासन और उसके कार्यक्रमों को भी व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं। 1961 में एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स की पुस्तक "The Ecology of Public Administration" में लोक प्रशासन और पर्यावरण के मध्य परस्पर क्रिया को तुलनात्मक ढंग से समझने का प्रयत्न किया था। प्रशासन और पर्यावरण एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं और इस प्रक्रिया की गतिशीलता की समझ प्रशासन को समझने के लिये आवश्यक हैं। इस समझ को परिस्थितिकी दृष्टिकोण का नाम दिया गया। रिग्स ने ही अपने 'साला मॉडल' में बताया था कि लोक प्रशासन पर सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तत्वों का भी प्रभाव पड़ता है। प्रशासन के संगठन में विभिन्न कर्मचारियों के आपसी सम्बन्धों, उच्च अधिकारियों के प्रति निम्न अधिकारियों के दृष्टिकोण आदि पर समाज की संस्कृति और मूल्यों का व्यापक प्रभाव पड़ता है। रिग्स ने ही ये भी कहा कि किसी समुदाय का सामाजिक परिवेश उसके संस्थानों, संस्थागत नमूनों, वर्ग, जाति सम्बन्धों, ऐतिहासिक विरासत, परम्पराओं, धर्म, मूल्यों की व्यवस्था, विश्वास, आदर्श आदि पर आधारित होता है। वर्तमान प्रशासन का संचालन केवल कानूनी न्याय के आधार पर नहीं, सामाजिक न्याय के आधार पर होता है।

प्रशासन और राजनीतिक परिवेश का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ होता है। चूँकि लोक प्रशासन की जड़े राजनीति में निहित होती है। अतः राजनीतिक परिवेश में किसी तरह के परिवर्तन का प्रभाव प्रशासनिक संरचनाओं पर पड़ता है।

लोक प्रशासन पर आर्थिक परिवेश के प्रभाव के सम्बन्ध में भी ये सत्य है कि, किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की आर्थिक स्थिति वहाँ के प्रशासनिक स्वरूप, संगठन और कार्यों को प्रभावित करती है। किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिये प्रशासन में सुधार आवश्यक होता है। इसलिये प्रशासनिक प्रक्रिया को आर्थिक विकास की आवश्यकता होती है।

3.8 शब्दावली

परिवेश- परिधि, घेरा, परिवर्धित- जो अच्छी तरह बढ़ा हुआ हो या बढ़ाया गया हो, सामन्जस्य- तालमेल, अनुकूलता, मेल, प्रतिरोपित- जो (फिर से) रोपा गया हो, जो पुनः लगाया गया हो, संकीर्णताऐं- अनुदारता, व्याधिग्रस्त- बुराईयों से ग्रस्त।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. प्रशासनिक व्यवस्थाओं, प्रशासनिक नियमों व प्रशासनिक संस्कृति से है, **2.** सामाजिक विज्ञान, **3.** परिस्थितिकी उपागम

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 अवस्थी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0, पब्लिशर्स, जयपुर- 2013

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एम0पी0शर्मा, बी0एल0 सदाना, हरप्रीत कौर, लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल, इलाहाबाद- 2015
2. आर0 के0 दुबे, आधुनिक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
3. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2002, 2003
4. टी0एन0 चतुर्वेदी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च प्रकाशन, सामाजिक विज्ञान, दिल्ली- 1978

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन के अन्तर्गत पर्यावरण का क्या महत्व है? लोक प्रशासन और पर्यावरण के सम्बन्धों की विवेचना कीजिये।
2. सामाजिक, आर्थिक पर्यावरण, प्रशासनिक प्रणाली को किस प्रकार प्रभावित करता है? व्याख्या कीजिये।
3. लोक प्रशासन को सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण कैसे प्रभावित करता है? विवेचना कीजिये।

इकाई- 4 विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताऐं

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 विकास की अवधारणा
    4.2.1 विकास का अर्थ एवं परिभाषा
    4.2.2 विकास का लक्ष्य और उद्देश्य
    4.2.3 विकास में शासन(सरकार) की भूमिका
    4.2.4 विकास की समस्याऐं
    4.2.5 विकास हेतु आवश्यक पूर्व शर्तें
4.3 विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताऐं
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

आधुनिक युग में राज्यों को उनके विकास के आधार पर दो श्रेणियों में बांटा जाता है- 'विकसित' तथा 'विकासशील।' जैसा कि आपने पिछले अध्यायों में पढ़ा कि किसी देश के प्रशासन की प्रकृति उसके पर्यावरण से प्रभावित होती है। पर्यावरण का एक तत्व विकास भी है। अतः विकास के स्तर का सम्बन्ध उस देश के प्रशासन की प्रकृति के साथ होता है। इसका अर्थ यह हुआ, कि 'विकसित' और 'विकासशील' देशों की प्रशासनिक उप-व्यवस्थाऐं उनकी अपनी विचित्रता के अनुकूल होगी। प्रस्तुत अध्याय में हम ये जानने का प्रयास करेंगे कि विकसित देशों का प्रशासन कैसा होता है या उनकी विशेषताऐं क्या होती हैं।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- विकास के अर्थ एवं अवधारणा आदि को विस्तृत रूप में जान पायेंगे।
- विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताओं के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

4.2 विकास की अवधारणा

विकास आधुनिकीकरण या आधुनिकता शब्द सापेक्षिक है। जिनका प्रयोग जटिल सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों के लिये किया जाता है। अर्थात् विकास एवं सार्वभौमिक प्रक्रिया एवं एक व्यापक अवधारणा है, जिसको विभिन्न संदर्भों में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। ब्रांट आयोग ने टिप्पणी करते हुए ठीक ही कहा है कि ''विकास की सार्वभौमिक परिभाषा ना तो दी जायेगी और ना ही कोई दे सकता है।'' कुछ विद्वानों के अनुसार, विकास का अर्थ है- राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में संवृद्धि, दूसरे विचारकों के लिये इसका आशय

है, सामाजिक विकास और अन्य के लिये आधुनिकीकरण ही विकास है। जे0जे0 स्पेंगलर के शब्दों में, ''विकास तब माना जाता है जबकि वांछनीय एवं प्राथमिक मानी जाने वाली चीजों का सूचकांक बढ़ जाये।'' किसी प्रकार के आर्थिक-राजनीतिक, संचार एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में परिवर्तन को एवं व्यवस्थित प्रक्रिया को आधुनिकीकरण कहा जाता है। गैवरियल ऑमण्ड (Gabriel Almond) ने परिवर्तन शब्द का प्रयोग विकास के समानार्थक के रूप में किया है। उनका मत है कि जब राजनीतिक व्यवस्थाऐं, सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण के आधार पर नई क्षमताऐं प्राप्त कर लेती हैं तो उनमें परिवर्तन आ जाता है। विकास आधुनिकता और आधुनिक शब्दों का जिस अर्थ में प्रयोग किया जाता है, उस दृष्टि से पश्चिमी यूरोप के देशों जैसे अमेरिका आदि को विकसित राज्य माना जाता है। इन देशों का वर्तमान प्रशासन एक लम्बे विकास का परिणाम है।

वर्तमान समय में, विकास की अवधारणा ने सभी विकासशील देशों में प्रशासन की व्यवस्था को प्रभावित कर लिया है। विकास को सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन लाने वाला अर्भिकर्ता माना जाता है। इसका प्रभाव समाज के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है। सभी विकासशील देशों के द्वारा स्वयं के विकास एवं उन्नति हेतु विकास की अवधारणा को अपनाया गया है। सन् 1960 से यह अवधारणा ज्यादा महत्वपूर्ण बन गई है।

4.2.1 विकास का अर्थ एवं परिभाषाऐं

विकास एक ऐसी अवधारणा है जिसे वास्तविक रूप में परिभाषित करना कठिन है। इसका अर्थ एवं प्रयोग अधिक स्पष्ट नहीं है। यह अनिश्चितता का रूप लिये होता है। जेराल्ड, ई0 काईडन के अनुसार, विकास शब्द का कोई विशिष्ट अर्थ नहीं है, अर्थशास्त्री इसे आर्थिक-उत्पादकता से परिभाषित करते हैं; समाजशास्त्री इस शब्द का प्रयोग सामाजिक परिवर्तन के रूप में करते हैं; राजनीतिक विचारक इसे जनतंत्रकरण, राजनीतिक क्षमता अथवा विस्तारशील सरकार के रूप में करते हैं; प्रशासक इसे अधिकारी तंत्र, प्रशासनिक कुशलता एवं क्षमता के रूप में मानते हैं। विकास की अवधारणा के साथ जुड़ी हुई एक सीमा है इसलिये इसकी परिभाषा करनरा कठिन है। शब्द कोषों ने विकास शब्द को उद्देश्यमूलक माना है, क्योंकि वे इसका उल्लेख प्रायः उच्चतर, पूर्णतः और अधिकतर परिपक्वतापूर्ण स्थिति के रूप में करते हैं।

विकास की संकल्पना की बहुत-सी परिभाषाऐं हैं। भिन्न-भिन्न होते हुए भी ये परिभाषाऐं एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। ईस्मन का मत है ''विकास सोच समझ कर बनाये कार्यक्रमों व परियोजनाओं को संगठित एवं लागू करने की तर्कपूर्ण प्रक्रिया है, ठीक उसी प्रकार से जैसे हमारे सैनिक या इंजीनियरिंग कार्यक्रम संगठित व लागू किये जाते हैं।''

कोलम और गीगर(Colm and Geiger) वृद्धि वाले परिवर्तन को विकास समझते हैं। कोलम और गेजर के अनुसार, विकास का अर्थ परिवर्तन के साथ-साथ प्रगति होना भी है। यह मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों प्रकार का होता है।

वीडनर यह मानते हैं कि जब किसी प्रक्रिया के द्वारा राष्ट्र निर्माण और सामाजिक-आर्थिक उन्नति होती है, तो उस वृद्धि की प्रक्रिया को 'विकास' कहा जाता है। हॉन बीन ली के लिए विकास का अर्थ प्रक्रिया और उद्देश्य दोनों हैं। इसलिए वे व्यवस्था की क्षमता के अनुकूल लगातार वृद्धि को विकास कहते हैं, जो राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए होने वाले लगातार परिवर्तनों को अंगीकार कर सकी हैं। चतुर्वेदी के अनुसार, विकास 'सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया है।' विकास का मुख्य उद्देश्य है- एक प्राचीन एवं पिछड़ी हुई व्यवस्था को आधुनिक व्यवस्था में बदलना। रिग्स विकास की विस्तृत परिभाषा देते हुए कहते हैं, विकास का संबंध उत्पाद को बढ़ाने, प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने या न बढ़ाने के निर्णय की क्षमता से है। अथवा अपनी शक्ति से तय लक्ष्यों को प्राप्त करने या उपलब्ध सामग्री के आर्थिक न्यायपूर्ण वितरण में, सौन्दर्य संबंधी या फिर आध्यात्मिक मूल्यों में या भिन्न-भिन्न उत्पादों की गुणवत्ता को बढ़ाने में अपनी शक्ति को लगाना विकास है। इस

प्रकार विकास एक बहुपक्षीय प्रक्रिया है, जिसमें ढाँचों में, दृष्टिकोणों और संस्थाओं में परिवर्तन, आर्थिक सम्पदा में बढ़ोतरी, असमानताओं में कमी और निर्धनता का उन्मूलन शामिल है। परम्परागत समाज में आधुनिक विकसित समाज में परिवर्तन करने की प्रक्रिया को 'विकास' कहते हैं। विकास के कई पक्ष हैं- राजनीतिक विकास में विवेकशीलता धर्मनिरपेक्षीकरण, व्यापक जन-सहभागिता आदि शामिल किए जा सकते हैं, सामाजिक विकास में सामाजिक बुराइयों का अंत, मानवीय भेदभाव को खत्म करना, स्तर की समानता, सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि आदि शामिल हैं। इसके आर्थिक पक्ष का अर्थ है सामाजिक सुरक्षा के लिए व्यवस्था करना, शोषण का अभाव, निरंतर आर्थिक वृद्धि, प्रचुरता और खुशहाली की प्राप्ति। अतः विकास के अनेक पहलू होते हैं और एक-दूसरे से इतने जुड़े होते हैं कि इनको अलग नहीं किया जा सकता, एक पहलू में परिवर्तन, दूसरे पहलू को प्रभावित करता है और स्वयं प्रभावित होता है।

विकास की अवधारणा से संबंधित उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इसमें निहित कुछ लक्षणों को निम्नलिखित बताया जा सकता है-

1. विकास एक गतिशील अवधारणा है। यह गतिशील और हमेशा परिवर्तनशील और विकसित होने वाली संकल्पना है। 'हम किसी विकसित रूप' को नहीं मान सकते, क्योंकि हर विकसित रूप में सुधार किया जा सकता है। इसलिए विकास एक निरंतर गतिशील अवधारणा है।
2. विकास एकपक्षीय नहीं है, बल्कि बहुपक्षीय प्रक्रिया है। इसका अभिप्राय यह है कि विकास में न केवल आर्थिक बल्कि सामाजिक विकास, राजनीतिक या अन्य प्रकार का विकास भी शामिल होता है। इसके उद्देश्य केवल अर्थव्यवस्था तक सीमित नहीं होते। वे मानवीय और सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू को छूते हैं जैसे आर्थिक वृद्धि, सामजिक प्रगति, राजनैतिक विकास, राष्ट्रीय निर्माण आदि।
3. विकास का अर्थ वृद्धि होता है। हर समाज में वृद्धि, बढ़ोतरी और उन्नति होती है और इसलिए उसमें हमेशा परिवर्तन होते हैं। एक देश का वर्तमान समाज, दूसरे देश के समाज से पृथक होता है। आज का समाज बीते हुए कल के समाज के समान नहीं है। इसी प्रकार, भविष्य के समाज, वर्तमान समाज से बिल्कुल अलग होंगे।
4. विकास का प्रौद्योगिकी से निकट का संबंध होता है। तकनीकी रूप से एक उन्नत समाज विकसित समाज कहलाता है। प्रौद्योगिकी ने हमारे जीवन के हर पहलू को बदल दिया है और वास्तव में यह सारे जीवन में आज भी परिवर्तन कर रही है। इसने संसार को बहुत छोटा बना दिया है।
5. विवेकशीलता विकास का एक अंग है। इसका आशय है कि विकसित समाज परम्पराओं या धर्म पर आधारित नहीं होता अर्थात् अंधविश्वासी नहीं होता, बल्कि यह तर्क और विवेक बुद्धिवाद पर खड़ा हुआ बताया जाता है।
6. विकास के अन्य लक्षण व्यवस्था, स्थिरता, सुरक्षा आदि निरंतर विकास के आवश्यक कारक है। राष्ट्रों ने केवल शांति काल में ही उन्नति की है न कि युद्ध काल में। विकास का अर्थ वृद्धि सहित परिवर्तन है, इसका अभिप्राय यह है कि सड़कों, रेलवे, बैंक, टेलिफोन आदि आधारभूत ढाँचें में भी विकास बिना विकसित बैंकिंग व्यवस्था के हम आयात-निर्यात का व्यापार नहीं कर सकते।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि विकास परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम परम्परागत पूर्ण स्थिति से आधुनिक स्थिति पर आते हैं। यह समाज में रहने वालों से प्रभावित होती है। गतिविधि जो विकास से सम्बन्धित होती है, वह हमेशा राष्ट्रीय निर्माण और सामाजिक आर्थिक प्रगति की ओर निर्देशित होती है।

4.2.2 विकास का लक्ष्य और उद्देश्य

विकासशील देशों में विकास का लक्ष्य और उद्देश्य निम्नलिखित गतिविधियों से सम्बन्धित हैं- राष्ट्रीय निर्माण, राष्ट्रीय आय में वृद्धि, जनता का उच्चतर जीवन स्तर बनाना, आत्मनिर्भरता प्रदान करना, रोजगार उपलब्ध कराना, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, न्याय एवं सुरक्षा प्रदान करना, सामाजिक-आर्थिक प्रगति, सहभागिता, विशिष्टीकरण, नीतियों, योजनाओं आदि का व्यापन और एकीकरण आदि।

4.2.3 विकास में शासन(सरकार) की भूमिका

विकास के लक्ष्य और उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु विकासशील देशों की सरकार की प्रमुख भूमिका होती है। ईस्सेन के अनुसार सरकार के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं- 1. आन्तरिक सुरक्षा को बनाये रखना तथा बाहरी आक्रमणों से रक्षा। 2. राज्यतंत्र की औचित्यपूर्णता की स्थापना। 3. विभिन्न तत्वों को एक राष्ट्रीय व राजनैतिक समुदाय बनाना। 4. मनोवैज्ञानिक एवं भौतिक सुरक्षा का वर्धन। 5. वित्तीय तथा बचत संसाधनों का संघठन। 6. विभिन्न स्तरों पर शासनिक शक्तियों का वितरण व संगठन, तथा सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में एकता लाना और उनका सीमा-निर्धारण करना। 7. परम्परागत सामाजिक तथा आर्थिक निहित स्वार्थों को हटाना। 8. आधुनिक कुशलताओं तथा संस्थाओं का विकास। 9. सेवाओं और सुविधाओं का कुशल प्रबन्ध। 10. अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में एक सुरक्षित स्थान पाना। 11. निर्णयन जैसे क्षेत्रों में सहभाग को प्रोत्साहन, तथा 12. निवेशन का विवेकपूर्ण कार्यक्रमीकरण।
सभी विकासशील देशों की सरकार विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से विकास के लक्ष्यों को पूरा कर रही हैं। जैसे- भारत सरकार द्वारा लागू किये गये 'बीस-सूत्री कार्यक्रम' आदि।

4.2.4 विकास की समस्याएँ

विकासशील देशों हेतु विकास आवश्यक है किन्तु इसकी कुछ विशेषताऐं भी हैं। विकास की प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं- 1. जनसहभागिता का अभाव। 2. राजनीतिक अस्थिरता। 3. प्रशासनिक व्यवस्था की अनिश्चयात्मकता। 4. असन्तुलित विकास। 5. वित्त का अभाव। 6. शिक्षा का अभाव। 7. परम्परागत समाज। 8. तकनीकी का अभाव आदि।
सामान्यतः सभी विकासशील देशों में विकास के सामने आने वाली प्रमुख समस्याऐं एक ही तरह की हैं।

4.2.5 विकास हेतु आवश्यक पूर्व शर्तें

विकास एक अनवरत प्रक्रिया है जिसके लिये कुछ आवश्यक पूर्व शर्तें भी हैं- 1. स्थिर राजनैतिक व्यवस्था। 2. स्थिर प्रशासनिक व्यवस्था। 3. नियोजन व्यवस्था। 4. उपयुक्त सांस्कृतिक व्यवस्था तथा 5. जन सहभागिता आदि।
विकासशील देशों की प्रमुख समस्याऐं चार हैं, जो चार अंग्रेजी शब्दों में अभिव्यक्त होती हैं। वे सभी रोमन वर्णमाला के अक्षर 'पी' से आरम्भ होती हैं, इसलिए आजकल इनका उल्लेख अकसर 'चार पी' के नाम से होता है। ये समस्याऐं हैं- प्रालिफरेशन(Proliferation) अर्थात् शस्त्रास्त्रों की होड़ और विस्तार तथा तज्जनित दबाब और तनाव। पॉवर्टी(Poverty) अर्थात् गरीबी तथा उससे संबद्ध शोषण, व्यापारिक असंतुलन, भुखमरी, बेकारी ओर कर्जदारी की समस्याऐं। पोल्यूशन(Pollution) अर्थात् पर्यावरण अथवा प्रदूषण एवं प्राकृतिक संतुलन के निरंतर ह्रास की समस्या। पाप्यूलेशन(Population) अर्थात् जनसंख्या वृद्धि तथा उससे जुड़ी उद्योगीकरण, मशीनीकरण और शहरीकरण जैसी समस्याऐं आदि।

4.3 विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताऐं

जैसा कि अब तक जाना विकास एक बड़ी जटिल धारणा है। इसका अभिप्राय आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के तत्वों का समूह है जिनमें से प्रत्येक तत्व कम विकसित से अधिक विकसित अविच्छिन्नक(continuum) पर फैला होता है। एक देश में एक ही समय में ऐसे चिह्न भी दृष्टिगोचर होते हैं, जो विकसित हैं, और कुछ ऐसी विशेषताऐं भी दिखायी देती हैं जो कम विकसित है। इसी प्रकार लोक प्रशासन के कुछ चिह्न विकसित प्रतीत होते हैं, जबकि उसी देश में ही कुछ अन्य चिह्न ऐसे होते हैं, जो किसी कम विकसित देश में मिलते जुलते होते हैं। ‘‘विकास अविच्छिन्नक(continuum) के प्रत्येक सिरे पर लोक प्रशासन में भिन्नताऐं होती है, जो विकास अवस्था को उतना प्रतिबिम्बित नहीं करतीं, जितना कि वे, विशेष ऐतिहासिक अनुभवों अथवा सांस्कृतिक लक्षणों को प्रतिबिम्बित करती हैं। उदाहरण के तौर पर ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमरीका विकास की लगभग एक जैसी विकसित अवस्था में है, लेकिन इनमें से प्रत्येक राष्ट्र अपने लोक प्रशासन में ऐसे विशिष्ट लक्षणों का प्रदर्शन करता है, जो उसके अपने विकास(evolution) को प्रतिबिम्बित करते हैं। वहीं दूसरी ओर तृतीय विश्व के अन्तर्गत आने वाले अफ्रीका, एशिया और लेटिन अमेरिका जैसे दैश हैं जिनको विकासशील देशों के नाम से जाना जाता हैं, क्योंकि ये देश अभी भी विकास में लगे हुए हैं, जिनका प्रमुख विकासात्मक कार्य ‘राष्ट्र-निर्माण’ एवं सामाजिक-आर्थिक प्रगति है। विकास प्रशासन एक नया उपागम है जो विकासशील देशों की सरकार के प्रशासन से सम्बन्धित है। यद्यपि इन देशों में विभिन्न परम्परायें, रीति-रिवाज, सभ्यताऐं, राजनीतिक व्यवस्थाऐं, भाषाऐं, सामाजिक मूल्य, धर्म आदि आर्थिक विकास के विभिन्न स्तर हैं, यद्यपि इनमें काफी समानतायें हैं। इनकी तीन प्रमुख समानतायें हैं जिनमें से प्रथम है कि इनको एक ही तरह की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और प्रशासनिक विकास समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, द्वितीय इन सभी देशों को आधुनिकीरकरण की ओर बढ़ना है, अपनी राष्ट्रीय आय प्रति व्यक्ति आय और लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना है और तृतीय इन सभी देशों ने विकास प्रशासन के महत्व को जान लिया है, जिसके माध्यम से इनको सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिवर्तन लाते हुए राष्ट्रीय निर्माण और सामाजिक आर्थिक प्रगति के लक्ष्यों को प्राप्त करना है। अतः विकासशील देश विकास प्रशासन के द्वारा स्वयं का विकास, प्रगति और उन्नति कर रहे हैं। विकसित देश इनको सहयोग और सहायता प्रदान करते हैं।

विकास के युग में विकसित और विकासशील देशों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार से चर्चा की जाती रहती है। पूर्व विवरण से ये बात तो स्पष्ट रूप से आप समझ गये होंगे कि विकास एक बहुमुखी अवधारणा है। इसमें केवल आर्थिक पक्ष पर बल देना ही पर्याप्त नहीं है। बल्कि सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन एवं प्रगति के लक्ष्य को प्राप्त करना भी है।

यदि हम विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताओं को देखना चाहते हैं तो सबसे पहले हम विश्व में देशों की प्रकृति और उनके विकास की स्थिति के आधार पर उनका अध्ययन करेंगे। इस आधार पर सम्पूर्ण विश्व के देशों को तीन समूहों में विभाजित किया गया है। पहला, विकासशील देश- एशिया के देश (जापान के अलावा, अफ्रीका, दक्षिण अफ्रीका को छोड़कर), लेटिन अमरीका, कैरेबियन क्षेत्र, साइप्रस आदि। ये देश तृतीय देश के नाम से जाने जाते हैं। सामान्यतः विकासशील देशों को अर्द्ध-विकसित राष्ट्र या तीसरी दुनिया के देश के नाम से भी जाना जाता है। दूसरा, विकसित आर्थिक बाजार देश- दक्षिण और पश्चिम यूरोप के देश (साइप्रस, माल्टा और यूगोस्लाविया को छोड़कर) उत्तरी अमरीका, दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रलिया, जापान और न्यूजीलैण्ड। तीसरा, पहले वाले साम्यवादी आर्थिक स्थिति वाले देश- पहले के सोवियत यूनियन में सम्मिलित यूरोप के देश और पहले के पूर्वी एवं मध्य यूरोप के साम्यवादी देश चीन और रूस संघ।

इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व के देशों को मोटे तौर पर इन तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। विकासशील देशों में जहाँ प्रशासन को विकासशील समझा जाता है, सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है। वहीं दूसरी ओर, विकसित पश्चिमी समाजों में, जो उथल-पुथल के दौर से गुजर रहे हैं, प्रशासन को निरन्तर सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विकास की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अतः विकासशील और विकसित प्रशासन में भेद उन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में है जिनमें प्रशासन कार्य करता है। विकसित देश सम्पन्न, उन्नत और समृद्ध है। विकास, परिवर्तन और आधुनिकीकरण इनकी विशेषताऐं हैं। विकसित राष्ट्रों में आधुनिकता का आशय भौतिकतावाद से नहीं बल्कि विचारों की उत्कृष्टता से लिया गया है। विकसित देशों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तनों की एक सुनिश्चित दिशा है। इन राष्ट्रों की राजनीतिक संस्थाऐं अत्यन्त परिपक्व, विकसित तथा प्रतिबद्ध प्रकृति की हैं। अतः लोक प्रशासन का स्वरूप भी विकसित हो चुका है। ये देश लोकतंत्र के प्रतीक बन गये हैं, तथा राजनीतिक स्थिरता के उदाहरण भी इस प्रकार विकास की समस्त पृष्ठभूमि तैयार है और परिवर्तन और विकास का क्रम सुव्यवस्थित है। विधि के शासन की अवधारणा ने सम्पूर्ण प्रशासनिक तंत्र को जवाबदेय तथा विकासोन्मुख बना दिया। सामाजिक तथा आर्थिक समृद्धता ने यूरोपीय राष्ट्रों में लोक प्रशासन को अधिक विकसित बनाने में भरपूर योगदान दिया है।

विकसित एवं विकासशील देशों में प्रशासन की विशेषताऐं कुछ भिन्न होती है। अगले अध्याय में हम विकासशील प्रशासन एवं उसकी विशेषताओं के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे। इस अध्याय में हम विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालेंगे। विकसित देशों की विशेषताओं की चर्चा हम अग्रलिखित बिन्दुओं से वर्णित करेंगे-

1. **लोक उत्तरदायित्व स्वरूप-** विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्था की एवं सबसे प्रमुख विशेषता, उसका लोक उत्तरदायित्व स्वरूप माना जाता है। लोक प्रशासन पर जनता का नियंत्रण रहता है, और प्रशासन अपने समस्त कार्यों के लिये, जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। इस उत्तरदायित्व की अभिव्यक्ति मंत्रिमण्डल का संसद के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व है।
2. **प्रशासनिक संगठन-** विकसित देशों की प्रशासनिक संरचना विकासशील देशों की तुलना में अधिक व्यवसायिक होती है। ब्रिटेन में विभागीय संरचना विद्यमान है, जबकि अमरीका में प्रशासनिक संरचना दो भागों में विभाजित है- विभागीय संगठन तथा स्वतंत्र आयोग, मण्डल तथा निगम। फ्रांसीसी प्रशासन के प्रमुख अंग मंत्रालय-प्रोजेक्ट और सरकारी उद्यम माने जाते हैं।
3. **उत्तरदायी एवं कुशल लोक सेवाऐं-** विकसित देशों में प्रशासनिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया जाता है। प्रशासन जनता का कार्य बिना असुविधा के सम्पन्न करता है। ऐसे राष्ट्रों में जनता की हानि या असुविधा की क्षतिपूर्ति करना भी एक सामान्य परम्परा मानी जाती है। इन देशों में प्रशासनिक कार्यकुशलता बढ़ाने, उन्हें ज्यादा संवेदनशील बनाने, लोकप्रियता बढ़ाने तथा उपादेयता के क्रम में निरन्तर शोध किये जाते हैं। विकेन्द्रीकरण को इन देशों में पर्याप्त महत्व दिया जाता है।
4. **राजनीतिक तटस्थता-** तटस्थता लोक सेवा का एक ऐसा गुण है जो सदा से उपस्थित रहा है। मूल रूप से तटस्थता ब्रिटिश प्रशासन का गुण रहा है। इस तटस्थता की अवधारणा में जनता, व्यक्तियों तथा कर्मचारी वर्ग का विश्वास शामिल होता है। जनता को विश्वास इस बात का, कि चाहे कोई भी दल सत्तारूढ़ हो, लोक सेवा सभी प्रकार के राजनीतिक पक्षपात से मुक्त होगी, मंत्रियों का विश्वास इस बात का कि हर सत्तारूढ़ दल को लोक सेवा की निष्ठा प्राप्त होगी। कर्मचारी वर्ग को विश्वास इस बात का, कि पदोन्नति तथा अन्य पुरस्कार राजनीतिक दृष्टिकोण या पक्षपातपूर्ण कार्यों पर निर्भर नहीं करते बल्कि उनके गुणमात्र पर निर्भर करते हैं।

इग्लैण्ड में लोक सेवक राजनीतिक दलों की गतिविधियों में भाग नहीं लेते हैं। सरकार की किसी भी नीति को लागू करने में राजनीतिक विचारधारा आड़े नहीं आती है। इसके विपरीत अमरीका के लोकसेवकों के राजनीतिक कार्यों पर कठोर प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। वे चुनाव अभियान की सभाओं में केवल दर्शकों की भाँति ही भाग ले सकते हैं, उनके राजनीतिक प्रबन्ध या अभियानों में सक्रिय रूप से भाग लेने पर भी पाबन्दी है। फ्रांस में काफी उदारता के साथ कर्मचारियों को राजनीतिक अधिकार दिये गये हैं। यहाँ पर लोक सेवक सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लेकर मंत्री पद भी प्राप्त कर सकते हैं जो पुनः लोक सेवा में लौट सकते हैं।

5. **लोक सेवाओं का लोकतांत्रिक स्वरूप-** विकसित समाजों में प्रजातंत्र की आधुनिक अवधारणा यथार्थ एवं व्यापक रूप से लागू होती है। प्रशासन का स्वरूप न केवल सैद्धान्तिक बल्कि व्यवहारिक रूप से भी प्रजातांत्रिक होता है। लोक सेवकों का व्यवहार 'जनता के सेवक' जैसा होता है ना कि 'जनता के स्वामी' जैसा। क्योंकि लोकतंत्र में पूरी सत्ता जनता में ही निहित होती है। लोक सेवाओं में समानता, न्याय तथा स्वतंत्रता का अधिकार सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध है। कार्मिकों को संघ बनाने तथा हितों के लिए संघर्ष करने की छूट दी गई है।
6. **योग्यता को महत्व-** विकसित देशों में लोक सेवाओं में भर्ती के लिये योग्यता को व्यापक रूप से महत्व दिया जाता हैं। ज्यादातर सामान्य प्रशासकीय एवं विशेषज्ञ पदों पर नियुक्ति या चयन प्रतियोगिता परीक्षाओं के आधार पर होता है। योग्यता निर्धारण की ये प्रतियोगिता परीक्षाऐं बहुत विश्वसनीय प्रकृति की मानी जाती है। अमेरिका सहित विश्व के कुछ और विकसित देशों में अन्य पद राष्ट्रपति की इच्छा से भरे जाते हैं, किन्तु इन पदों पर नियुक्ति विधायिका द्वारा अनुमोदित होती है।
7. **स्थायित्व का गुण-** विकसित देशों की लोक सेवाओं में स्थायित्व का भाव पाया जाता है। शासक परिवर्तित होते रहते हैं लेकिन नौकरशाही सदैव विधमान रहती हैं। भर्ती तथा सेवानिवृत्ति की आयु की व्यवस्था के कारण लोक सेवा का कार्यकाल निश्चित रहता है। ये ही एक ऐसा तत्व होता है जिसके कारण लोक सेवक पूर्णरूप से निर्भीक और निष्पक्ष होकर कार्य सम्पादित करते हैं।
8. **कार्य विशेषीकरण-** कुछ अधिक विकसित देशों, जैसे- पश्चिम यूरोप के देश- उत्तरी अमरीका, न्यूजीलैण्ड, जापान, रूस की प्रशासनिक विशेषताओं में उच्च दर्जे का कार्य-विशेषीकरण होता है। यहाँ बड़ी संख्या में विशिष्ट प्रशासनिक ढाँचे होते हैं, जिनमें से प्रत्येक किसी एक का निश्चित उद्देश्य के लिए विशेषीकरण होता है, जैसे- कृषि, यातायात-संचालन, प्रतिरक्षा, जन-सम्पर्क आदि। इसके अतिरिक्त कुछ अलग प्रकार के राजनीतिक ढाँचे, राजनीतिक दल, चुनाव, संसद, कार्यकारी अध्यक्ष, मंत्रीमण्डल नियमों का निर्माण और लक्ष्यों को निर्धारित करने के लिए स्थापित किये जाते हैं। जिसके पश्चात प्रशासनिक ढाँचे उनको लागू करते हैं। विकास की दृष्टि में यह एक बहुत ही विभेदीकरण पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था है।
9. **औपचारिक राजनीतिक ढाँचे-** विकसित राजनीतिक व्यवस्था में औपचारिक राजनीतिक ढाँचे होते हैं जिनमें पहले से निर्धारित किये गये नियम अथवा नमूने के अनुकूल नियन्त्रण रखा जाता है। राजनीतिक निर्णय करना राजनीतिज्ञों का कर्तव्य बन जाता है, और प्रशासनिक निर्णय करना प्रशासकों का कर्तव्य होता है। सभी राजनीतिक निर्णय और कानून फैसले, चिरकालिक, तर्कसंगत मानकों के आधार पर किये जाते हैं। परम्परागत विशिष्ट वर्ग चाहे वे किसी धर्म अथवा कबीले से सम्बन्ध रखने वाले क्यों न हो, सरकार के निर्णयों को प्रभावित करने की वास्तविक सत्ता खो बैठते हैं।

10. **सार्वजनिक कार्यों में जनता की रूचि-** सार्वजनिक कार्यों में जनता की रूचि तथा उलझाव बहुत अधिक होता है। राजनीतिक चेतना बहुत उच्च मात्रा तक पहुँच चुकी होती है। अतः निर्णय करने और उनको लागू करने की प्रक्रियाओं में सक्रिय भाग लेने के लिये जनता का संघटन किया जाता है।
11. **गतिशीलता की प्रवृत्ति-** विकसित देशों का सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक ढाँचा गतिशील प्रवृत्ति का परिचायक होता है। इन देशों में परिवर्तन को सहजता से स्वीकार किया जाता है। प्रशासनिक व्यवस्था का ये गुण होता है कि वो देश के राजनीतिक परिदृश्य, अर्थव्यवस्था, सामाजिक संरचना तथा तकनीकी विकास के सन्दर्भ में आये सभी परिवर्तनों के अनुरूप शीघ्रता से परिवर्तित हो जाती है। उदहारण के तौर पर पिछले दशकों में ब्रिटेन की लोक सेवाओं का घटता आकार तथा निजीकरण समय की माँग के अनुरूप एक गतिशील परिवर्तन के तौर पर ही देखा जा सकता है। इसी प्रकार 'प्रशासनिक सुधारों' के प्रयास भी पूर्ण मनोयोग एवं इच्छा से ही क्रियान्वित होते हैं।
12. **व्यापक कार्यक्षेत्र-** विकसित देशों का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि यहाँ सरकार की क्रिया अथवा कार्यों का क्षेत्र सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत मामलों के बहुत बड़े दायरों तक फैला होता है। राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप ने प्रशासन के कार्यक्षेत्र को न केवल व्यापक बनाया है, बल्कि अत्यन्त महत्वपूर्ण दायित्वों से युक्त कर दिया है। अनेक जनोपयोगी कार्यों जैसे- कृषि, उद्योग, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण से लेकर न्याय व्यवस्था तक प्रत्येक कार्य लोक प्रशासन के क्षेत्र में सम्मिलित है। राज्य की सुरक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध, आन्तरिक शान्ति एवं व्यवस्था, अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण तथा सामाजिक सेवाओं का संचालन इत्यादि सभी कार्य प्रशासन की सूची में सम्मिलित होते हैं।
13. **विशेषज्ञों का महत्व-** विकासशील राष्ट्रों में सामान्यज्ञ अधिकारियों का वर्चस्व रहता है, जबकि विकसित राष्ट्रों में डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक आदि विशेषज्ञ अधिकारियों को उच्च दर्जा प्रदान किया जाता है। अमेरिका, जापान एवं जर्मनी में विशेषज्ञ अधिक सम्मानित हैं, वहीं ब्रिटेन तथा फ्रांस में भी इन्हें सामान्यज्ञों की अधीनरूपता में नहीं रखा गया है। अतः तकनीकी विकास की जटिलताओं तथा ज्ञान के बढ़ते क्षितिज ने विशेषज्ञों की प्रशासन में भूमिका महत्वपूर्ण बना दी हैं।
14. **प्रशासन पर राजनीतिक दलों का प्रभाव-** विकासशील देशों के विपरीत, विकसित देशों के लोक प्रशासन पर राजनीतिक दलों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। ब्रिटेन के विपरीत अमेरिका में लोक सेवाओं पर दलीय प्रभाव पाया जाता हैं। यहाँ राष्ट्रपति को ये अधिकार होता है, कि वो अपने विश्वस्तों या मित्रों आदि को उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त कर सकता है। फिर ये ही सब लोग नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। फ्रांस की लोक सेवायें भी दलीय प्रभाव से अछूती नहीं हैं। वहाँ के लोक सेवकों को दलीय गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार होता है। परन्तु ब्रिटेन की स्थिति इस सम्बन्ध में थोड़ी भिन्न होती हैं। वहाँ पर लोक सेवकों के लिये राजनीतिक तटस्थता का पालन तो करना होता है, परन्तु, इसके साथ ही उन्हें बदलते राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में अपनी भूमिका में परिवर्तन करते हुए सामन्जस्य भी बिठाना पड़ता है। ऐसी परिवर्तित परिस्थिति में पहले की सरकार से जो लोग घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं उनका स्थानान्तरण कम महत्वपूर्ण विभागों में कर दिया जाता हैं। अनेकों बार पूर्व में उनके द्वारा सम्पादित कार्यकलापों के लिये कुछ विभागीय जाँच समितियाँ भी स्थापित कर दी जाती हैं। भारत इससे अछूता नहीं है, भारत में भी इस प्रकार की स्थिति देखने को मिलती है फिर भी वे अपेक्षाकृत ब्रिटेन की लोक सेवा पर दलीय प्रभाव अपेक्षाकृत कम पाया जाता हैं।
15. **लोक सेवकों की स्थिति-** विकसित देशों में लोक सेवकों की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण होती हैं। इनकी भर्ती योग्यता के आधार पर होती हैं। विकसित देशों में आरक्षण तथा भाई-भतीजावाद देखने को नहीं मिलता है। लोक-सेवकों का स्वरूप लोकतांत्रिक होता है, तथा वे स्थायी वेतनभोगी कर्मचारी होते हैं,

सरकार के परिवर्तन का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता हैं, वे तटस्थ होकर अपने कार्य करते हैं। उनके वेतन तथा सेवा शर्तें सभी आकर्षित होती हैं। लोक सेवक राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समाज में लोक सेवकों को प्रतिष्ठा प्राप्त होती हैं। राज्य के बढ़ते हुए कार्यों के साथ-साथ लोक सवकों की स्थिति व प्रभाव में भी वृद्धि होती जाती हैं।

16. **उच्च स्तरीय समन्वय-** समन्वय समस्त प्रशासनिक संरचनाओं की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया होती है, जो संगठन में संघर्ष तथा अतिराव को रोकती हैं। विकसित देशों में एक कार्य को कई सरकारी, अर्द्धसरकारी तथा निजी संगठनों के द्वारा सम्पादित किया जाता है। परन्तु ऐसे प्रशासन की ये विशेषता होती है, कि इन सभी संगठनों के मध्य एक ही प्रकार के कार्यों के सम्पादन करने के उपरान्त भी इन संगठनों के मध्य टकराव, प्रथम तो कम उत्पन्न होते हैं, एवं यदि उत्पन्न भी होते हैं तो बहुत लम्बे समय तक अनिर्णित नहीं रहते हैं, बल्कि समय रहते राजनीतिज्ञों एवं शीर्ष कार्यपालक अधिकारियों द्वारा सुलझा लिये जाते हैं। विकसित देशों में लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन दोनों क्षेत्रों के संगठन परस्पर विचार-विमर्श करते रहते हैं।
17. **समितियों का महत्वपूर्ण स्थान-** अमेरिका तथा ब्रिटेन जैसे विकसित देशों में लोक प्रशासन में समिति व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। विविध समितियाँ प्रशासनिक कार्यों को समन्वित करने में प्रयत्नशील रहती हैं। इन देशों में मंत्रिमण्डल एवं संसद की विभिन्न समितियाँ होती हैं, जो प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने में सहयोग प्रदान करती हैं साथ ही नियन्त्रण भी रखती हैं।
18. **राष्ट्र एवं संविधान के प्रति प्रतिबद्धता-** विकसित देशों को प्रशासन की तथा अन्य विशषताओं के साथ वहाँ के नागरिकों को भी अपने देश के संविधान, राष्ट्रगान, राष्ट्रध्वज, राष्ट्रीय कानून आदि के प्रति अगाध प्रेम होता हैं। यही कारण है, कि इन देशों के नागरिकों तथा प्रशासन के मध्य सदैव सामन्जस्यता एवं सहयोग का भाव दिखाई देता हैं। नागरिक संविधान एवं देश के कानून के प्रति अगाध आस्था रखते हैं। राजनेता तथा लोक सेवक भी इसी कारण से राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति संवेदनशील होते हैं। हर नागरिक तथा सरकारी कार्मिक सदैव ये प्रयास करता है, कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उनके देश की छवि धूमिल न हो पाये और उनका देश सबसे आगे एवं सबसे अलग दिखाई दे।
19. **अभिजात्य वर्ग का प्रभुत्व-** शासन सत्ता में उच्च परिवारों, धनिकों, प्रभावशाली जातियों तथा परम्परागत रूप से साधन सम्पन्न लोगों का प्रभुत्व, यूँ तो सभी देशों में समान सा ही है परन्तु फिर भी, फ्रांस, अमेरिका तथा ब्रिटेन में यह सर्वाधिक दिखाई देता है।
20. **सशक्त अर्थव्यवस्था-** विकसित राष्ट्रों की आर्थिक एवं वित्तीय व्यवस्था सुदृढ़ है। अतः प्रशासनिक व्यय को सरलता से वहन किया जा सकता है। राज्य के द्वारा प्रवर्तित सभी कल्याणकारी सेवाऐं सरलता एवं कुशलतापूर्वक वहन की जाती हैं, क्योंकि आधुनिक प्रशासन तथा इसके कार्य पूर्णतया वित्त पर आधारित होते हैं। विकसित राष्ट्रों की एक और विशेषता होती है, कि चूँकि यहाँ प्रति व्यक्ति आय अधिक होती है अतः प्रत्येक व्यक्ति के पास जीवन की मूलभूत या न्यूनतम आवश्यकताओं की समस्या नहीं होती हैं। ऐसी परिस्थिति में प्रशासन अपना ध्यान नागरिकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में नहीं लगाता है, बल्कि मानव जीवन को सुखमय बनाने हेतु अन्य पहलुओं पर भी विचार करती हैं।
21. **महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व-** विकासशील देशों के विपरीत विकसित देशों में प्रशासन में महिलाओं को समुचित प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है। ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका जैसे देशों में ये देखने को मिलता है, कि महिलाओं को सभी क्षेत्रों में पुरुषों के बराबर के अधिकार प्रदान किये जाते हैं और वे पुरुषों के समान ही कार्य करती हैं। फ्रांस की समस्त लोक सेवाओं में पुरुषों की तुलना में

महिलाओं की संख्या अधिक देखने को मिलती हैं। लोक सेवाओं में महिलाओं के उचित प्रतिनिधित्व से लोक सेवा में शालीनता तथा संजीदगी की भावना का प्रादुर्भाव होता है।

22. **राजनीति एवं प्रशासन के कार्यों का विस्तृत क्षेत्र-** राजनीति और प्रशासन के कार्यों का क्षेत्र विकसित राष्ट्रों में काफी विस्तृत होता है। इसमें सामाजिक जीवन के भी सभी पहलू समाविष्ट हो जाते हैं। यह क्षेत्र निरन्तर बढ़ता रहता है।
23. राजनीतिक निर्णय लेने की प्रक्रिया बुद्धिपूर्ण, तर्क संगत एवं धर्मनिरपेक्ष होती है। परम्परावादी श्रेष्ठवर्ग की शक्तियाँ घट जाती हैं तथा परम्परागत मूल्यों का प्रभाव भी कम हो जाता है। फलतः धर्मनिरपेक्ष तथा निवैयक्तिक कानून व्यवस्था जन्म लेती है।
24. प्रबन्धकों एवं अधीनस्थ कर्मचारियों के मध्य पर्याप्त सम्पर्क।
25. सत्ता और नियंत्रण का अत्यधिक विकेन्द्रीकरण।
26. आन्तरिक प्रशिक्षण गतिविधियों की पर्याप्तता।

अभ्यास के प्रश्न-

1. विकास प्रशासन का लक्षण क्या नहीं है?
2. विकास प्रशासन का घनिष्ठ सम्बन्ध किससे है?
3. भारत में विकास प्रशासन की प्रमुख समस्या क्या है?
4. विकास प्रशासन की क्या विशेषता नहीं है?
5. विकास प्रशासन में किसकी भागीदारी आवश्यक है?

4.4 सारांश

इस अध्याय में हमने ये जानने का प्रयास किया, कि विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के लक्षण क्या होते हैं? व वहां प्रशासन व नौकरशाही किन-किन विशेषताओं व दृष्टिकोणों के साथ कार्य करती हैं। प्रस्तुत वर्णन से इस बात को समझाने का प्रयास किया गया है कि राज्यों को उनके विकास के आधार पर दो प्रमुख श्रेणियों में बांटा जाता है-विकसित एवं विकासशील। किसी भी देश का विकसित या विकासशील कहे जाने के पीछे उस देश के प्रशासन की प्रकृति और विकास के स्तर के सम्बन्ध को जाँचना होता हैं।

विकास का अभिप्राय आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के तत्वों के समूह से हैं जिनमें से प्रत्येक तत्व कम विकसित से अधिक विकसित अविच्छिन्नक पर फैला होता है। एक देश में एक ही समय में कुछ ऐसी विशेषतायें भी दिखाई देती हैं जो कम विकसित होती हैं। साथ ही विकसित देशों के लोक प्रशासन में भी कुछ ऐसे तत्व देखने को मिलते हैं जो विकसित देशों के लक्षण हाते हैं और कुछ लक्षण ऐसे होते हैं जो विकासशील देशों या कम विकसित देशों से मिलते-जुलते होते हैं। इन राष्ट्रों की राजनीतिक संस्थाऐं, अत्यन्त परिपक्व, विकसित तथा प्रतिबद्ध प्रकृति की होती हैं अतः लोक प्रशासन का स्वरूप भी विकसित हो चुका होता है। फ्रांस, अमेरिका, जापान तथा ब्रिटेन आदि विकसित देशों की न केवल प्रशासनिक व्यवस्था बल्कि सामाजिक स्तर पर भी परिपक्वता दिखाई देती हैं। इसके अतिरिक्त सभी विकसित देशों के लोक प्रशासन में वैधानिकता, तार्किकता, विशेषज्ञता को पर्याप्त महत्व दिया जाता है। यहाँ प्रायः राजनेताओं तथा प्रशासकों के मध्य मधुर सम्बन्ध रहते हैं, तथा प्रशासन संविधान, राष्ट्रीय कानूनों तथा आदर्शों के प्रति प्रतिबद्ध होता है। लोक-प्रशासन में विकेन्द्रीकरण का व्यवहारिक स्वरूप देखने को मिलता है और प्रशासनिक नीतियाँ लोकमत से प्रभावित होती हैं तथा प्रशासन में जनता पर्याप्त रूचि एवं सहभागिता प्रकट करती है।

इसी प्रकार विकसित देशों में विशेष तौर पर देश की कार्यशील जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग लोक सेवकों के रूप में कार्यरत रहता है तथा नौकरशाही की कार्यप्रणाली कठोर होने की अपेक्षा सहयोगी एवं संवेदनशील प्रवृत्ति की होती है। ईरा शारकैन्सकी(Ira Sharkansky) ने भी विकसित देशों में नौकरशाही की तीन प्रमुख विशेषताऐं बतायी-

1. नौकरशाही का आकार बड़ा होता है, तथा इसमें कर्मचारी विशेषज्ञ होते हैं, जो कार्यों के विशेषीकरण एवं सरकार की क्रियाओं के विस्तृत दायरे को प्रदर्शित करते हैं।
2. नौकरशाही सरकार की अन्य विधिसंगत शाखाओं से आदेश प्राप्त करती है।
3. नौकरशाही को पेशेवर समझा जाता है।

अतः अधिक विकसित देशों में नौकरशाही की अधिक विधिसंगत, कार्यकुशलता तथा राजनीतिक दृष्टि से अधिक उत्तरदायी समझा जाता है, वे विभिन्न प्रकार की बड़ी संख्या में कार्य करती है। यही कारण है कि समाज में उनका प्रवेश बहुत अधिक विस्तृत होता है। ग्राहकों अथवा नागरिकों के साथ उनकी परस्पर क्रिया वैयक्तिक होती है। फ्रांस और जर्मनी में समाज के अन्य व्यवसायिक समूहों से नौकरशाही ने, विशेषतया इसके उच्च स्तरों में अपनी एक अलग स्थिति बना ली है, किन्तु ब्रिटेन और अमेरिका में ऐसा नहीं हुआ है। फ्रांस और जर्मनी दोनों देशों में प्रशासनिक न्यायालयों की व्यवस्था है जो अमेरिका तथा ब्रिटेन के सिविल न्यायालयों के देशों की लोकसेवाओं में राजनीतिक चेतनता के स्तर, व राजनीति में भाग लेने की सीमा में भी बहुत भिन्नता है। किन्तु अधिकतर विकसित देशों के सम्मुख बहुत अधिक लोक सेवा तथा नियामक उपक्रमों के पारस्परिक असंगत सम्बन्धों की समस्या अब भी बनी हुई है।

4.5 शब्दावली

अविच्छिन्नक- सातत्य, अबाध-क्रम, प्रतिबिम्बित- जो स्पष्ट रूप से व्यक्त होता हो, उत्कृष्टता- श्रेष्ठता, भौतिकतावाद- यथार्थवाद, क्षतिपूर्ति- क्षति/हानि की पूर्ति होना, संवेदनशील- संवेदना से युक्त, तटस्थता- किसी का पक्ष ना लेना, सत्तारूढ़- जिसे सत्ता प्राप्त हो या सत्तासीन, प्रतिबन्ध- रोक या निषेध, सामान्यज्ञ- जिसको सब विषय के बारे में ज्ञान हो, विशेषज्ञ- किसी विषय का विशेष ज्ञान रखने वाला, अनुमोदित- समर्थित या सम्मति प्राप्त, चिरकालिक- बहुत दिनों तक बना रहने वाला, तर्कसंगत- जो तर्क के आधार पर ठीक हो, मानक- पैमाना या कसौटी या गुणवत्ता का आधार या स्तर, गतिशीलता- चलने-बढ़ने का भाव या गतियुक्तता, परिचायक- सूचक या सूचित कराने वाला, परिदृश्य-चारों ओर दिखने वाला दृश्य, मनोयोग- मन को किसी कार्य या विषय में एकाग्र करके लगाना, परिप्रेक्ष्य- उन परिस्थितियों का समाहार जिसमें घटना घटी हो; किसी विषय, घटना या बात के विभिन्न पक्ष,भाई-भतीजावाद- नौकरी, आर्थिक सहायता आदि दिलाने में या सगे-सम्बन्धियों के हित हेतु किया गया पक्षपात, स्वजन पक्षपात, अतिएव- अविच्छादन करना, परस्पर व्याप्त करना, एक ही समय होना, अनिर्णित- जिस पर निर्णय न हुआ हो; अनिश्चित, अगाध- जिसकी गहनता या गंभीरता का पता न चल सके, सामंजस्यता- तालमेल; मेल; संगति; एकरसता, अभिजात्य- कुलीन, अविच्छिन्नक- सातत्यपूर्ण।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नियमों की कठोरता, **2.** तुलनात्मक लोक प्रशासन, **3.** समन्वय, सम्प्रेषण का अभाव, **4.** नौकरशाही मनोवृत्ति, **5.** राजनीतिक प्रतिनिधि, सामाजिक संगठन और हित समूह।

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 ए0 पी0 अवस्थी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2004

2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 2013
3. डॉ0 एम0 पी0 शर्मा, बी0एल0 सढाना, हरप्रीत कौर, लोक प्रशासन: सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल, इलाहाबाद, 2015

4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. आर0 के0 दुबे, आधुनिक लोक प्रशासन , लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1992
2. अमरेश्वर अवस्थी एवं श्रीराम माहेश्वरी, लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा, 1974
3. रमेश के0 अरोड़ा, तुलनात्मक लोक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1995
4. प्रीता जोशी, विकास प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 2003

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. विकास एवं विकास-प्रशासन की अवधारणा की व्याख्या कीजिये।
2. विकसित देशों में लोक प्रशासन के प्रमुख लक्षणों की विस्तार से विवेचना कीजिये।

इकाई- 5 विकासशील देशों की विशेषताऐं

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 विकाशील देशों का अर्थ
5.3 विकासशील राष्ट्रों में लोक प्रशासन
5.4 विकासशील राष्ट्रों में नौकरशाही
 5.4.1 उपनिवेशिक विकासशील राष्ट्रों में नौकरशाही
 5.4.2 गैर-उपनिवेशिक विकासशील राष्ट्रों में नौकरशाही
5.5 विकासशील देशों की प्रशासनिक विशेषताऐं
5.6 विकासशील देशों के प्रशासन की समस्याऐं
5.7 विकासशील देशों के प्रशासन के समक्ष चुनौतियां
5.8 विकसित व विकासशील देशों के लोक-प्रशासन व नौकरशाही में अन्तर
5.9 सारांश
5.10 शब्दावली
5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.14 निबंधात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

विकासशील देश जैसे शब्द का प्रयोग किसी ऐसे देश के लिये किया जाता है जिसके भौतिक सुखों का स्तर निम्न होता है। विकास के ये स्तर सभी विकासशील देशों में पृथक-पृथक हो सकते हैं। कुछ विकासशील देशों में, औसत रहन-सहन का स्तर का मानक भी उच्च होता है। विकासत तथा विकासशील राष्ट्रों के रूप में यह विभाजन प्रत्येक दृष्टि से परिभाषित नहीं किया जा सकता है। सामान्यतः विकासशील देशों को अर्द्ध-विकसित राष्ट्र या तीसरी दुनिया के देश भी कहा जाता है। विगत अध्याय में आपने विकसित राष्ट्रों की विशेषताओं के बारे में जाना। प्रस्तुत अध्याय में विकासशील राष्ट्रों के बारे में सम्पूर्ण अध्ययन करेंगे व अन्त में विकसित और विकासशील देशों के मध्य अन्तर स्थापित करते हुए उन्हें भली-भाँति जानने का प्रयास करेंगे।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- परिभाषाओं के आधार पर विकासशील देशों के अर्थ को जान पायेंगे।
- विकासशील देशों की विभिन्न प्रकार की विशेषताओं से अवगत हो जायेंगे।
- विकसित एवं विकासशील देशों के मध्य अन्तर को समझ जायेंगे।

5.2 विकासशील देशों का अर्थ

जैसा कि आपने जाना कि विकासशील राष्ट्र नामक शब्द का प्रयोग सामान्य अर्थों में ऐसे राष्ट्रों के लिये किया जाता है, जिसमें भौतिक सुखों का स्तर निम्न होता हैं। चूँकि विकसित देश नामक शब्द की कोई भी एक परिभाषा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त नहीं है, अतः विकास के स्तर इन तथाकथित विकासशील देशों में भिन्न हो सकते हैं। विकासशील देशों को कई नाम दिये गये हैं। जैसे- कम विकसित, उद्-गामी, अन्तर्कालीन और अविकसित आदि। किन्तु 'विकासशील' शब्द अधिक लोकप्रिय हुआ, क्योंकि इसका अभिप्राय यह है कि वर्तमान अधूरे विकास की स्थिति स्थायी नहीं है और वे विकास के एक उच्च स्तर की ओर चल रहे हैं। इस श्रेणी में अधिकतर अफ्रीका, एशिया (जापान एवं दक्षिण कोरिया को छोड़कर) तथा दक्षिण अमरीका के देश व कुछ द्वितीय राष्ट्र आते हैं, यद्यपि यूरोप के कुछ देशों को भी इस श्रेणी में लाया जा सकता हैं। सन् 1961 में अल्जीयर्स लेखक, फ्रेण्ट्ज फेनॉन ने अपनी पुस्तक "Les Dammes Da La Terres" में सर्वप्रथम तीसरी दुनिया नामक शब्द का प्रयोग अर्द्ध-विकसित या विकासशील देशों के लिये प्रयुक्त किया था। अपनी इस पुस्तक में फेनॉन ने अमेरिका तथा अन्य पूँजीवादी देशों को 'पहली दुनिया' रूस तथा अन्य समाजवादी राष्ट्रों को 'दूसरी दुनिया' तथा विकासशील राष्ट्रों को 'तीसरी दुनिया' कहा था। वास्तव में अब दूसरी दुनिया नामक शब्द की प्रासंगकिता नहीं रही है, क्योंकि सन् 1991 में सोवियत समाजवादी गणराज्य का विघटन हो चुका है तथा अमेरिका एवं उसके मित्र राष्ट्र महाशक्ति के रूप में बचे हैं। आजकल 'चौथी दुनिया' शब्द का प्रयोग भी किया जाने लगा है। अति निर्धन देशों (सूड़ान, इथियोपिया तथा बांग्लादेश) को इस नाम से पुकारा जाता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिदृश्य बहुत तेजी के साथ परिवर्तित हुआ है। पहली दुनिया में संयुक्त राज्य अमेरिका, पश्चिम यूरोप, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड की चर्चा होती थी, जबकि दूसरी दुनिया में सोवियत संघ तथा उसके मित्र राष्ट्र (पूर्वी यूरोपीय देश) शामिल थे। तीसरी दुनिया में एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के वे देश शामिल हैं जो उपनिवेश काल से स्वतंत्र होकर विकास की राह पर चल रहे हैं। ये देश आर्थिक रूप से पिछड़े हुए, सामाजिक रूप से विषमताग्रस्त तथा उपनिवेश काल की विरासत को ढोने वाले माने जाते हैं। विकासशील देशों में आधुनिकता का अभाव पाया जाता है।

विश्व बैंक सभी निम्न और मध्यम आय वाले देशों को विकासशील देशों की श्रेणी में रखता है परन्तु साथ ही ये स्वीकार करता है कि, ''इस शब्द का प्रयोग सुविधा के लिये किया जा रहा है, हमारा आशय यह नहीं है कि इस समूह की सभी अर्थव्यवस्थाऐं एक समान विकास की प्रक्रिया से गुजर रही है अथवा अन्य अर्थव्यवस्थाऐं विकास की पसंदीदा अथवा अंतिम अवस्था पर पहुँच गयी हैं। आय द्वारा वर्गीकरण आवश्यक रूप से विकास की स्थिति को नहीं दर्शाता है।'' इस प्रकार तीसरी दुनिया के अधिकांश देश राष्ट्र-निर्माण तथा तीव्र गति से सामाजिक-आर्थिक विकास की प्रक्रिया में लगे हुए हैं।

उपरोक्त सम्पूर्ण वर्णन के पश्चात यदि विकासशील देश के अर्थ को कुछ बिन्दुओं में समझना चाहें तो कह सकते हैं कि-

1. विकासशील राष्ट्र वो होते हैं, जिनका औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों की तुलना में राजनीतिक एवं आर्थिक विकास का स्तर थोड़ा कम होता हैं।
2. वे राष्ट्र जो पूँजीवादी गुट अर्थात् अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोप तथा साम्यवादी गुट अर्थात् सोवियत रूस तथा पूर्वी यूरोप से स्वयं को पृथक रखते आये हैं, विकासशील राष्ट्र हैं।
3. विकासशील देश वे होते हैं, जिनकी अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित होती हैं।
4. वे राष्ट्र जिनका समाज बहु विविधताओं से युक्त तथा पिछड़ा हुआ होता हैं।

5. ऐसे राष्ट्र जो अब भी अशिक्षा, कुपोषण, गरीबी, रूढ़िवादिता आदि समस्याओं से जूझ रहे हैं, विकासशील राष्ट्र की श्रेणी में आते हैं।
6. सामान्यतः विकासशील देश उपनिवेश रह चुके हैं व भौगोलिक दृष्टि से गरम जलवायु के देश हैं।

इन सब विशेषताओं के अलावा यदि संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञों के अनुसार देखें तो जिन देशों की प्रति व्यक्ति आय अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा यूरोप के देशों की तुलना में कम होती हैं वे अल्पविकसित अर्थव्यवस्था वाले देश कहलाते हैं। परन्तु फिर भी अभी तक ऐसी कोई सर्वव्यापी परिभाषा विकसित नहीं हुई है जो सभी विकासशील राष्ट्रों के सम्पूर्ण रेखाचित्र को स्पष्ट कर सके। विकासशील देशों की सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था को समग्र रूप में देखने से पूर्व आइये हम इन देशों में प्रशासन तथा नौकरशाही के स्वरूप को पृथक रूप से जानें ताकि इनकी प्रशासनिक व्यवस्थाओं को समझने में आसानी रहे।

5.3 विकासशील राष्ट्रों में लोक प्रशासन

विकासशील देशों के बारे में उपरोक्त वर्णन से आप अब तक ये तो जान ही गये होंगे कि ये देश जनाधिक्य, सामाजिक शोषण, गरीबी, बेरोगजारी, परम्परागत समाज तथा अन्धविश्वास से ग्रस्त हैं। एशिया और अफ्रीका के देश ब्रिटिश शासकों के शोषण के शिकार रहे तथा लम्बे समय तक राजशाही व्यवस्थाओं से त्रस्त रहे। ये देश उपनिवेशवाद के दौरान मिली प्रशासनिक व्यवस्था को विरासत में लेकर विकास की राह पर आगे बढ़े। उपनिवेशवाद के दौरान प्रशासन तन्त्र का स्वरूप केवल नियामकीय था जो केवल शान्ति व्यवस्था बनाये रखने का ही काम करता था जबकि नवस्वतन्त्र राष्ट्रों की मुख्य आवश्यकता विकास प्रशासन की थी। विकासशील राष्ट्रों के साथ सबसे बड़ी समस्या संसाधनों की कमी की रही व साथ ही तकनीकी ज्ञान का अभाव भी रहा। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जब विकासशील देश उपनिवेशवाद से आजाद हुए तब तक शेष विश्व (विकसित) इनसे कहीं आगे निकल चुके थे। आज, यद्यपि विकासशील राष्ट्रों की राजनीतिक परिस्थितियाँ परिवर्तित हो चुकी हैं, तब भी इनका प्रशासन काफी हद तक कठोर, निष्ठुर और असंवेदनशील बना हुआ है। परिणामस्वरूप न तो विकास के लक्ष्य प्राप्त किये जा सके हैं और ना ही लोक कल्याणकारी राज्य या लोकतंत्र के सपने पूरे हुए हैं।

विकासशील राष्ट्रों में राजनीतिक दुराभिसन्धियाँ तथा संकीर्णताऐं अपने चरम पर होती हैं। रिग्स के अनुसार, 'विकासशील देशों के विभिन्न कार्यात्मक क्षेत्रों में परिवर्तन की गति एक समान नहीं होती हैं।' उदहारणस्वरूप भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास की तुलना में सामाजिक मानसिकता परिवर्तित नहीं हुई है। विकासशील राष्ट्रों में राष्ट्रीय भावना, नैतिकता तथा सच्चरित्रताकी स्थापना एक दुष्कर कार्य बना रहता है, क्योंकि नवतंत्र राष्ट्रों में स्वतंत्रता का आशय स्वच्छंदता से लिया जाता हैं। लोकतंत्र का तात्पर्य केवल अधिकारों की प्राप्ति से ही समझा जाता है, अतः इन देशों के नागरिकों में कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्व की भावना का अभाव पाया जाता हैं। विकासशील राष्ट्रों का समाज परम्परागत, अशिक्षित, अल्प जागरूक, विषमतायुक्त तथा ग्रामीण जनसंस्कृति से युक्त होता है। अतः यहाँ पर सामाजिक न्याय की स्थापना एक महत्वपूर्ण बिन्दु बन जाता है जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में लोक प्रशासन के कार्यकरण को प्रभावित करता हैं। विकसित राष्ट्रों में विकास के एकमात्र रूप में केवल सरकार ही प्रयत्नशील नहीं रहती है बल्कि अन्य संगठनों का भी इसमें योगदान रहता हैं। जबकि दूसरी तरफ विकासशील राष्ट्रों की योजनाऐं एवं विकास कार्यक्रम पूरी तरह से राज्य द्वारा नियंत्रित एवं निर्धारित होते हैं। गरीबी, निरक्षरता, भुखमरी, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, महिला अत्याचार, बाल-अपराध, औद्योगीकरण का अभाव आदि कई ऐसी समस्याऐं हैं, जिनके समाधान में इन देशों का प्रशासन सैदव कार्यरत रहता हैं।

5.4 विकासशील राष्ट्रों में नौकरशाही

रिग्स ने माना कि विकासशील देशों के विभिन्न कार्यात्मक क्षेत्रों में परिवर्तन की गति एकसार नहीं होती हैं। लोक प्रशासन (प्राविशिकता) में विकास जितनी तेजी से हो पाता है, उतनी तेजी से राजनीतिक संस्थानों जैसे- राजनीतिक कार्यकारिणी, विधानमण्डल, चुनाव प्रणालियों (प्रक्रिया) आदि में नहीं हो पाता है। इसका परिणाम यह होता है कि विकासशील समाजों में नौकरशाही अधिक प्रभुत्वशाली बन जाती हैं और यह बेमेल प्रभाव का प्रयोग करती हैं जिसके बहुत गम्भीर परिणाम होते हैं।

एस0एन0 ईसनतेंत(S.N. Eisentadt) उपनिवेशिक और गैर-उपनिवेशिक दो प्रकार के विकासशील राष्ट्रों में नौकरशाही के विकास का वर्णन संरचनात्मक-कार्यात्मक(Structural-functional) दृष्टि से करते हैं।

5.4.1 उपनिवेशिक विकासशील राष्ट्र

ऐसे विकासशील देश जो उपनिवेशी शासन के अधीन रहे उनके सन्दर्भ में ईसनतेंत ने कहा कि इनको अपनी प्रशासनिक संरचना उपनिवेशिक युग से विरासत के रूप में प्राप्त हुई हैं। इनमें सदा से केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में देखने को मिलती हैं। इनका कार्य मूल प्रशासनिक सेवाओं जैसे- राजस्व तथा कानून और व्यवस्था बनाये रखने तक ही सीमित थे। इन्होंने आधुनिक कानूनी और प्रशासनिक व्यवहारों के ढाँचों से स्थापित करने में सहायता की। ये राजनीतिक रूप से निष्पक्ष थे। ये उपनिवेशिक शासकों की सेवा करते थे जिन पर किसी प्रकार का राजनीतिक उत्तरदायित्व नहीं था। जब उपनिवेशी शासक चले गये तो इन देशों को यह उपनिवेशिक प्रशासन या नौकरशाही दोनों विरासत के रूप में मिले। इन देशों में नौकरशाही की दूसरी परत भी है जिसमें वे विभाग तथा ढाँचें सम्मिलित किये जाते हैं, जो स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात स्थापित किये गये। यहाँ एक नयी लोक सेवा का विकास किया गया- जो कार्मिक, लक्ष्यों, विभागों तथा क्रियाओं की दृष्टि से नयी थी। इनमें नये अधिकारियों की भर्ती की गई, ये सब ऐसे व्यक्ति रखे गये जिनको भूतपूर्व उपनिवेशिक लोक सेवा की अपेक्षा राजनीतिक उत्तरदायित्व की भावना तथा राजनीतिक दिशा का कहीं स्पष्ट और उच्च स्तरीय ज्ञान था।

5.4.2 गैर-उपनिवेशिक विकासशील राष्ट्र

ईसनतेत ने विकासशील देशों की दूसरी श्रेणी में उन राष्ट्रों को रखा जो उपनिवेशिक शासन के अधीन नहीं रहे। ऐसे देशों में नौकरशाही कुछ भिन्न नमूने का प्रदर्शन करती है। उनमें एक परम्परागत नौकरशाही विधमान थी, चाहे वह मध्यपूर्व के देशों की भाँति राजशाही हो या अल्पतंत्रीय-गणतंत्रात्मक, जैसी कि दक्षिण अमरीका के देशों में देखी जाती है, बढ़ते हुए आधुनिकीकरण के प्रभाव, आन्तरिक लोकतन्त्रीकरण तथा नये सामाजिक, राजनीतिक लक्ष्यों के विकास के कारण इन नौकरशाहियों को अपनी क्रियाओं के क्षेत्र को विस्तृत करना पड़ा और नये कार्मिकों को भर्ती करना पड़ा। फेरेल हेडी ने विकासशील देशों में प्रशासनिक प्रारूपों की कई श्रेणियों का उल्लेख किया है-

1. **परम्परागत तानाशाही(Traditional Autocratic)-** जैसा कि सऊदी अरब, मोरक्को, पैरागुए आदि में है। इनका शासन का ढंग परम्परागत है। सत्ताधारी राजनीतिक अभिजन ऐसे परिवारों से आते हैं, जिनकी स्थिति राजतांत्रिक अथवा कुलीनतांत्रिक होती है और नीतियों में परिवर्तन करने के लिये वे सैनिक तथा असैनिक नौकरशाही पर आश्रित होते हैं। राजनैतिक अभिजन आर्थिक प्रगति और विकास के प्रति वचनबद्ध नहीं होते (सिवाय तेल का उत्पादन करने वाले देशों के)।
2. **नौकरशाही अभिजन(Bureaucratic Elite)-** जैसे कि थाईलैंड, पाकिस्तान, ब्राजील, सूडान, पेरू, इंडोनेशिया आदि में है। परम्परागत अभिजनों को प्रभावी सत्ता से हटा दिया गया है, यद्यपि उनकी उपस्थिति अभी भी कुछ-कुछ है। जनता का राजनीति में बहुत कम सहयोग होता है। राजनीतिक सत्ता अधिकतर सैनिक व असैनिक नौकरशाही के हाथ में होती है।

3. **बहुतंत्रात्मक प्रतिस्पर्धात्मक(Polyarchal Competitive)-** जैसे कि फिलिपीन्स, मलेशिया, कोस्टारिका, यूनान आदि में है। जहाँ तक जनता की भागीदारी स्वतंत्र चुनाव हितानुकूलित राजनीतिक दल और सरकार के प्रतिनिधि ढाँचे पश्चिमी योरोप और संयुक्त राज्य अमरीका से मिलते-जुलते है। कभी-कभी इनमें सैनिक हस्तक्षेप से रुकावट आती है, यद्यपि यह दावा किया जाता है। यह स्थिति अस्थायी है। कई परम्परागत समाजों की अपेक्षा यहाँ सामाजिक गतिशीलता अधिक होती है। यहाँ कई राजनैतिक अभिजन होते हैं जिनकी सत्ता का आधार नगरों के मध्य वर्ग, भूमिपतियों, सैनिक अधिकारियों, मजदूर नेताओं और पेशेवर लोगों में होता है। सरकार की नीतियाँ प्रायः फलमूलक होती हैं।
4. **प्रभुत्वदारी-दलीय संग्रहण(Dominant-Party Mobilization)-** जैसा कि अल्जीरिया, बोलविया, मिस्त्र, तंजानिया, ट्यूनीशिया, माली आदि देशों में है। यहाँ राजनीति में बहुत कम छूट दी जाती है। प्रभुत्वशाली दल ही एक मात्र वैध दल होता है जो बलपूर्वक तरीकों से अपनी स्थिति बनाये रखता है। सरकार एक निश्चित सिद्धान्त का अनुकरण करती है और सरकार के प्रति वफादारी के लोक-प्रदर्शन किये जाते हैं। सत्ताधारी अभिजन प्रायः युवक नगरों में रहने वाले, अच्छे, शिक्षित और धर्मनिरपेक्ष होते हैं, किन्तु आम तौर पर उनका नेतृत्व कोई चमत्कारिक नेता करता है। राष्ट्रवाद और विकास के कार्यक्रमों पर विशेष बल दिया जाता है।

5.5 विकासशील राष्ट्रों की प्रशासनिक विशेषताऐं

शासन के संचालन तथा विकास एवं प्रगति की दिशा में प्रशासन की भूमिका सुविदित है। ला-पालोम्बरा ने विकासशील देशों में होने वाले सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों में नौकरशाही को एक महत्वपूर्ण स्वतंत्रचर माना है। यह सही है कि समाज सरकार के माध्यम से बोलता है और सरकार की नीति, योजना, परियोजना, कार्यक्रम आदि प्रशासन के माध्यम से क्रियान्वित होते हैं। विकासशील देशों में प्रशासन की स्थिति बड़ी शोचनीय है। तृतीय विश्व के अध्येयता इस बात पर पूरी तरह से एक मत हैं कि, नवीन देशों के सामाजिक, आर्थिक विकास तथा राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में प्रशासन की अधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतएव प्रशासन के विकास पर पूरी तरह ध्यान दिया जाना चाहिये। विकासशील देशों में प्रशासनिक विकास के अभाव में समाज व्यवस्थाओं का भी आगे बढ़ना संभव नहीं है। अतः तीसरी दुनिया के अधिकांश देश जिन्हें हम विकासशील देश भी कहते हैं, राष्ट्र-निर्माण तथा तीव्र गति से सामाजिक-आर्थिक विकास की प्रक्रिया में लगे हुए हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि ये समस्त कार्य प्रशासन के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं, इसलिये विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के मुख्य लक्षणों का विश्लेषण करते हुए उन सब बातों को भी ध्यान रखना आवश्यक है। विकासशील देशों की प्रशासनिक विशेषताओं को बिन्दुओं में कुछ इस प्रकार देखा जा सकता है-

1. **प्रशासन का उपनिवेश और पश्चिमी प्रतिमान-** विकासशील देशों के प्रशासन की एक विशेषता पश्चिमी देशों एवं उपनिवेश के प्रशासन का प्रतिरूप हैं। इन देशों का लोक प्रशासन स्वदेशी नहीं होता वरन् पाश्चात्य देशों की नकल मात्र होती हैं। एशिया, लेटिन अमरीका, अफ्रीका तथा मध्य पूर्व के देश ब्रिटेन, हालैण्ड, फ्रान्स, पुर्तगाल तथा स्पेन इत्यादि देशों के उपनिवेश रह चुके हैं अतः इन विकासशील देशों की अपनी कोई देशी शासन पद्धति नहीं है। ये देश साम्राज्यवादी देशों जैसा प्रशासन अपनाने लगे। किसी प्रशासनिक कार्यालय का संगठन, नागरिक सेवकों की स्थिति और समग्र प्रशासनिक रूप-रचना करते समय प्रायः उपनिवेशवादी शक्ति के व्यवहार को आदर्श माना जाता है। अर्थात् प्रशासन का स्वरूप देशी ना होकर अनुकरणात्मक है। परिवर्तन सिर्फ इतना है कि नौकरशाही अपने आप को समय और परिस्थति के अनुसार बदलने के लिये और विकास की प्रक्रिया के अनुरूप नवीन चिन्तन और कार्यशैली अपनाने की दिशा में अग्रसर हो रही है। फिर भी यह सुधार सन्तोषप्रद नहीं कहा जा सकता है।

2. **कार्यकुशल मानव शक्ति का अभाव-** विकासशील देशों में विकास कार्यक्रमों और परियोजनाओं का प्रबन्ध करने वाले कार्यकुशल एवं निपुण कार्मिकों और प्रशासनिक स्टाफ की कमी होती है। इन देशों में कुशल जन शक्ति की कमी है ना कि कार्मिकों की। अर्थात् निम्न स्तर पर काम करने वाले कार्मिकों की तो कमी नहीं है, बल्कि कमी है प्रशिक्षित और निपुण प्रशासकों की। उदाहरणस्वरूप भारत जैसे विकासशील देश के सम्बन्ध में देखें तो यहाँ शिक्षित नवयुवक बेरोजगार तो बहुत मिल जायेंगे लेकिन प्रशिक्षित प्रबन्धकों की यहाँ कमी है। आजकल प्रबन्धकीय कौशल का विकास किया गया है, और वित्तीय प्रबन्ध, कर्मचारी प्रबन्ध, सामान्य-सूची(Inventory) प्रबन्ध आदि के लिये विशेषज्ञों की आवश्यकता है। परन्तु विकासशील देशों में कुशल जनशक्ति अब भी विद्यमान है, जिसके तीन कारण माने जाते हैं, पहला- मानव संसाधन की कमी, विकास नियोजन और शिक्षण व्यवस्था में कमी। दूसरा- भर्ती और प्रशिक्षण की अनुचित नीतियाँ और तीसरा- बुद्धिजीवी अपवाह(Brain Drain) संक्षेप में, विकासशील कार्यक्रम के लिये इन देशों का प्रशासन आवश्यक मानव शक्ति से रहित है, पर इसमें प्रबन्ध क्षमता, विकासात्मक कौशल और तकनीकी दक्षता रखने वाले प्रशिक्षित प्रशासकों की कमी है।
3. **नौकरीशाही का उत्पादन कार्यों पर कम जोर-** विकासशील देशों की नौकरशाही उत्पादन कार्यों पर कम एवं अन्य विषयों पर अधिक जोर देती है। प्रो0 रिग्स ने इस तथ्य पर प्रकाश डाला है। इन देशों में नौकरशाही पर अतीत के मूल्य तथा व्यवहारों का प्रभाव रहता है। आज भी गैर-परम्परावादी सामाजिक रूप रचना में भी ये मूल्य यथावत् हैं। यहाँ के प्रशासक लक्ष्य के प्रति सफलता की अपेक्षा प्रशासनिक प्रक्रिया के स्तर को अधिक महत्व देते हैं, जबकि समय की माँग विपरीत दिशा में है। स्तर के साथ-साथ कार्य सम्पन्नता को भी महत्व दिया जाना चाहिये।
4. **केन्द्रीकृत अधिकारी-तन्त्र ढाँचा-** नवस्वतन्त्र विकासशील देशों में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण तथा सत्ता के प्रत्यायोजन के क्रम में सैद्धान्तिक रूप से तो स्थिति सन्तोषप्रद दिखायी देती है। परन्तु सदियों तक गुलामी सह चुके इन राष्ट्रों के नागरिक एवं राजनेता सहजता से विकेन्द्रीकरण को स्वीकार नहीं कर पाते। अर्थात् विकासशील देशों में लोक-सेवाऐं सत्ता और नियंत्रण में केन्द्रीकृत होती हैं। यह अतिकेन्द्रीकरण शासकीय विभागों एवं मन्त्रालयों में देखने को मिलता हैं, जहाँ निर्णय लेने में लोक-सेवकों, विशेषकर मध्य और निम्न स्तर के लोगों को कम अवसर मिलता है। भारत सहित अधिकांश विकासशील देशों में सत्ता का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर उस मात्रा एवं गति से नहीं होता है, जो कि प्रशासनिक कुशलता के लिये आवश्यक है। प्रत्येक स्तर पर सत्ताधारी यही सोचता है कि, अधीनस्थ संस्था या व्यक्ति को अधिकार सौंपना आत्मघाती हो सकता है। इस भय के कारण एक ही स्थान या अधिकारी के पास कार्य का बोझ बढ़ता है जो अन्ततः भ्रष्टाचार, लाल-फीताशाही तथा अकर्मण्यता को जन्म देता हैं।
5. **आकार और वास्तविकता में अन्तर-** इन देशों में प्रशासन के आकार और वास्तविकता में अन्तर होता है। इस अन्तर को रिग्स ने 'आकारवाद' की संज्ञा दी है। इसमें वस्तुओं को ऐसे रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जैसा उन्हें होना चाहिए किन्तु वास्तव में वे वैसी नहीं होती हैं। सरकारी प्रस्तावों और उनके कार्यान्वयन में पर्याप्त अन्तर होता है और बहुत से कार्य बिलकुल ही लागू नहीं होते हैं।
6. **प्रशासनिक सामंजस्य-** विकासशील देशों में प्रशासनिक पद्धति में विकसित देशों की तुलना में सामंजस्य का अभाव देखने को मिलता है। भारत जैसे संघीय राज्य में प्रशासनिक सामंजस्य प्रशासन के सुचारु संचालन के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। वास्तव में राज्य की नीतियों तथा कार्यक्रमों को लागू करना तब तक सम्भव नहीं है जब तक उनमें सहयोग और सामंजस्य न हो। सामंजस्य एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका तात्पर्य है कि समस्त इकाइयों, विभागों एवं वित्तीय अभिकरणों, जो देश के एक कोने से दूसरे

कोने तक फैले हुए हैं, उनके कार्यों में एकता और सहयोग होना चाहिए। प्रशासन की कुशलता के लिए सामंजस्य आवश्यक तथा प्रशासनिक क्षेत्र में यह एक महत्वपूर्ण तत्व है, परन्तु विकासशील देशों में इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं हो रहा है।

7. **प्रशासन की नवीन चुनौतियाँ एवं दायित्व-** विकासशील देशों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से नित्य नयी चुनौतियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। इन चुनौतियों का सामना करना प्रशासन का दायित्व माना जाता है। अधिकांश विकासशील देशों में देश की अखण्डता व एकता को बनाये रखना तो एक महत्वपूर्ण चुनौती है ही, परन्तु इसके साथ-साथ आर्थिक, सामाजिक और तकनीकी विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाना भी इनके लिये किसी चुनौती से कम नहीं होता। विकासशील देश के समक्ष प्रस्तुत विभिन्न चुनौतियों को कुछ इस प्रकार देख सकते हैं-

विकासशील देशों के सम्मुख चुनौतियाँ		
सामाजिक	**आर्थिक**	**प्राकृतिक आपदाऐं**
सामाजिक रूढ़िया। आधुनिकीकरण करने वाले कार्यों और परम्परागत विशिष्ट या अभिजन वर्गों के बीच की दूरी। हिंसात्मक झगड़े। विभिन्न कबीलों की भाषाओं और जातीय समूहों में भेदभाव की भावना स्त्रियों तथा निम्न जाति के लोगों को ऊपर उठाना। समाज का पुराना ढाँचा विघटित हो रहा है और नया ढाँचा इसका स्थान लेने का प्रयत्न कर रहा हैयह अन्तर्कालीन स्थिति एक अभूतपूर्व राज्य को जन्म देती है। भाग्यवादिता, कर्मकाण्डता। क्षेत्रवाद। जनाधिक्य। मानवाधिकारों का हनन। अन्धविश्वास। आतंकवाद। साम्प्रदायकिता। भाषावाद	बढ़ता पूँजीवाद। विकास के चरणों को कम से कम समय में पूरा करने का दबाव। आर्थिक अस्थिरता। संसाधनों की कमी। गरीबी। बेरोजगारी। अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि पर आधारित। कमजोर अर्थव्यवस्था। व्यापार घाटे। खाद्यान्न की कमी। मुद्रास्फिति। महंगाई।	बाढ़। सूखा। महामारी। तूफान। भूकम्प। आगजनी। स्वास्थ्य का निम्न स्तर। संक्रामक रोगों का व्यापक प्रसार। कुपोषण।

अर्थात् उपरोक्त वर्णित गम्भीर एवं जटिल सामाजिक, आर्थिक एवं प्राकृतिक समस्याओं का सामना करना प्रशासन का उत्तरदायित्व है और इनका समाधान करके ही विकास के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है परन्तु, विकासशील देशों की प्रशासनिक तन्त्र व्यवस्था इन सबका सामना व समाधान करने के लिये ना तो सक्षम होती हैं और ना ही तैयार, क्योंकि वो विरासत में मिली प्रशासनिक तन्त्र व्यवस्था पर काम करते हैं जो इस सब के लिये पर्याप्त नहीं है। इस दिशा में इन देशों को कुछ साहसिक और सामायिक कदम उठाने की आवश्यकता है।

8. **सेवीवर्ग का सत्तात्मक और गुणात्मक पक्ष-** स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विकासशील देशों में राज्य के कार्यों में वृद्धि होने तथा नवीन विभागों, मन्त्रालयों आदि संगठनों की स्थापना के कारण लोक-सेवकों की

संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। भारत जैसे विकासशील देश में लोक-सेवकों की संख्या में मात्रात्मक दृष्टि से बहुत अधिक वृद्धि हुई है। हमारे यहाँ केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की संख्या 1948 में 14,45,000 थी, से बढ़ कर पंचम वेतन आयोग के अनुसार 38.76 लाख हो गयी थी। मात्रात्मक वृद्धि के साथ गुणात्मक दृष्टि से लोक-सेवकों की सेवा के स्तर में गिरावट आयी है। आज प्रशासन बेईमानी और भ्रष्टाचार का प्रतीक बन गया है। इस प्रकार मात्रात्मक वृद्धि के अनुपात में गुणात्मक वृद्धि नहीं हुई है। यह हमारे प्रशासन का सबसे गम्भीर और शोचनीय विषय है।

9. **सामान्यज्ञों का वर्चस्व-** विकासशील देशों में औपनिवेशिक काल की विरासत आज भी सम्मानपूर्वक प्रवर्तित है। सामान्यज्ञ या प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारी लोक प्रशासन के उच्च पदों पर आसीन रहते हैं तथा राजनीतिज्ञों (मंत्रियों) को परामर्श देने का कार्य करते हैं। राजनीतिज्ञ एवं सामान्यज्ञ अधिकारी मिलकर लोक-नीति, कानून तथा विकास कार्यक्रमों का निर्माण करते हैं जिनका क्रियान्वयन विशेषज्ञ सेवाओं के अधिकारियों को करना होता है। अधिक तकनीकी क्षमता एवं कौशल से युक्त विशेषज्ञ अधिकारी, सामान्यज्ञों के अधीन रहते हुए प्रायः कुंठा एवं निराशा के शिकार हो जाते हैं। यही कारण है कि भारत में सामान्यज्ञ-विशेषज्ञ विवाद वर्षों से जारी है। तकनीकी विकास एवं सामाजिक-परिवर्तन के वर्तमान दौर में जहाँ विकास प्रशासन की अवधारणा तेजी से जड़ें जमा रही है, विशेषज्ञों की उपेक्षा राष्ट्रहित में नहीं है।
10. **प्रशासन का राजनीतिकरण-** यह विकासशील देशों की एक विशिष्ट और रोचक विशेषता है और प्रशासन राजनीतिक शिकंजे से पीड़ित है। भारत के प्रशासन में बढ़ता हुआ राजनीतिक हस्तक्षेप एक चिन्ता का विषय है। हमारे मन्त्री, विधायक और सांसद सेवीवर्ग की भर्ती, पदोन्नति, स्थानान्तरण, अनुशासन आदि पर अनुचित प्रभाव डालते हैं। इसका प्रशासन की कार्य-प्रणाली पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। योग्य, कुशल प्रत्याशियों के स्थान पर कम योग्यता वाले लोग सरकारी पदों पर आ जाते हैं। अयोग्य या कम योग्य कार्यकर्ताओं के कारण प्रशासनिक कार्यकुशलता घट जाती है। पदोन्नति के विषयों में राजनीतिक हस्तक्षेप कर्मचारियों के मनोबल को गिरा देता है। वे अपने कार्य की ओर विशेष ध्यान देने की अपेक्षा राजनीतिक जोड़-तोड़ में लगे रहते हैं, क्योंकि उन्नति और अच्छे एवं महत्वपूर्ण पदों पर स्थानान्तरण का यही सरल रास्ता शेष रह जाता है। राजनीतिक स्वार्थ प्रशासनिक नियमों को बदल देते हैं। वे ऐसे अनेक पदों का आविष्कार करते हैं जिनकी आवश्यकता एवं उपयोगिता नगण्य है, किन्तु केवल अपने समर्थकों एवं स्वजनों के भरण-पोषण की व्यवस्था के लिए करदाताओं पर यह अनावश्यक भार डाला जाता है। फलतः संगठन में अनुशासन की गम्भीर समस्या उठ खड़ी होती है।
11. **नियन्त्रण की व्यवस्था-** विकासशील देशों में प्रशासन पर विविध तरीकों से नियन्त्रण स्थापित करके उत्तरदायी बनाये जाने की व्यवस्था है। यह नियन्त्रण तीन प्रकार का होता है: जनता का नियन्त्रण, विधायिका का नियन्त्रण और न्यायिक नियन्त्रण। इन देशों में लोक प्रशासन कानून पर आधारित होने से उसका कानूनी आधार है। प्रशासन अपने समस्त कार्यों को कानून की परिधि के आधार और उसके अन्तर्गत ही करता है।
12. **परम्परागत एवं रूढ़िवादी समाज का प्रभाव-** विभिन्न जाति, वंशों, नस्लों, वर्गों, धर्मों तथ सम्प्रदायों से युक्त विकासशील देशों का समाज परम्परागत एवं रूढ़िवादी समाज कहलाता है। इन समाजों में आज भी रूढ़ियों, आडम्बरों तथा परम्पराओं को सामाजिक कानूनों से अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। विकास प्रशासन के रूप में कार्यरत यहाँ की प्रशासनिक व्यवस्था 'सामाजिक परिवर्तन' के नियोजित प्रयास सफलतापूर्वक नहीं कर पाती है। लोक प्रशासन द्वारा संचालित विकास एवं कल्याण कार्यक्रम प्रायः जन सहभागिता के अभाव में निष्फल सिद्ध होते हैं।

यद्यपि विकासशील समाजों में 'आधुनिकीकरण' की ओर रूझान पाया जाता है किन्तु यह तार्किकता, ज्ञान के प्रसार तथा मानव कल्याण पर आधारित न होकर केवल पश्चिमी फैशन के अनुसरण तथा भौतिक संस्कृति से लगाव का उदाहरण भर होता है। यद्यपि प्रशासन तंत्र को इन देशों में 'परिवर्तन का वाहक' माना जाता है, किन्तु उसे पूर्ण सफलता नहीं मिलती है।

13. **प्रशासनिक सामंजस्य-** विकासशील देशों में प्रशासनिक पद्धति में विकसित देशों की तुलना में सामंजस्य का अभाव देखने को मिलता है। भारत जैसे संघीय राज्य में प्रशासनिक सामंजस्य प्रशासन के सुचारू संचालन के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। वास्तव में राज्य की नीतियों तथा कार्यक्रमों को लागू करना तब तक सम्भव नहीं है जब तक उनमें सहयोग और सामंजस्य न हो। सामंजस्य एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका तात्पर्य है कि समस्त इकाइयों, विभागों एवं वित्तीय अभिकरणों, जो देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैले हुए हैं, उनके कार्यों में एकता और सहयोग होना चाहिए। प्रशासन की कुशलता के लिए सामंजस्य आवश्यक तथा प्रशासनिक क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण तत्व है, परन्तु विकासशील देशों में इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं हो रहा है।
14. **भ्रष्ट तथा अकुशल प्रशासन-** विदेशी शासकों के चंगुल से मुक्त हुए इन देशों की प्रशासनिक व्यवस्था भ्रष्टाचार तथा अकार्यकुशलता के कीचड़ में आकंठ(गले तक) डूबी हुई नजर आती है। राष्ट्रीय संसाधनों, राष्ट्रीय कानूनों तथा सत्ता का दुरुपयोग यहाँ आम बात है, क्योंकि इन देशों की सामाजिक व्यवस्था में राष्ट्रप्रेम का छद्म स्वरूप होता है। वस्तुतः न्यूनाधिक मात्रा में प्रत्येक नागरिक स्वयं को राष्ट्र से पृथक् समझता है। स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंदता से लगाया जाता है। यही कारण है कि विकासशील देशों के लोक सेवक जिस मात्रा में अपने अधिकारों के लिए सचेत पाए जाते हैं, उसी मात्रा में कर्तव्यों के प्रति लापरवाह भी होते हैं। विकासशील देशों में भ्रष्टाचार समाप्ति के यदा-कदा प्रयास होते रहते हैं। सामाजिक स्तर पर सभी चाहते हैं कि यह व्यवस्था सुधरे।
15. **परिवर्तन से परहेज-** विकासशील देशों में सामाजिक तथा प्रशासनिक, दोनों ही स्तरों पर यथास्थिति को बनाए रखने के प्रयास होते रहते हैं। जब कभी राज्य एवं अन्य संस्थाओं द्वारा सुधार कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं, तब उन कार्यक्रमों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विरोध किया जाता है। यही कारण है कि विकासशील देशों की प्रशासनिक संरचनाऐं आज भी उपनिवेशवाद की विरासत को ढो रही हैं। परिवर्तन की कल्पनामात्र से समाज तथा लोकसेवक नकारात्मक रुख धारण कर लेते हैं। यद्यपि इन देशों में प्रशासनिक सुधार एवं नवाचार के प्रयास होते हैं किन्तु वे केवल कागजी अभ्यास सिद्ध होते हैं।
16. **जनसहयोग का अभाव-** विकासशील देशों का प्रशासन सामान्यतः विकास प्रशासन का पर्याय माना जाता है जो नियोजित सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन हेतु अनेक प्रकार के कल्याणकारी एवं विकासपरक कार्यक्रम संचालित करता है। स्पष्ट है विकास प्रशासन की सफलता जन सहभागिता पर निर्भर करती है किन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि इन देशों में वे व्यक्ति प्रशासनिक कार्यों या विकास कार्यों में सहयोग नहीं करते हैं जिनके लिए विकास कार्य संचालित किए जाते हैं। वस्तुतः निरक्षरता, गरीबी, सामाजिक पिछड़ापन, नौकरशाही का अहं, स्वार्थ भावनाएँ तथा कामचोरी की प्रवृत्ति विकास कार्यक्रमों में जन सहभागिता में कमी लाती है।
17. **नौकरशाही तथा उनके स्वार्थ-** विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्था की एक विशिष्ट विशेषता यह है कि नौकरशाही के कर्मचारी संस्था के उद्देश्यों की अपेक्षा अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति को अधिक महत्व देते हैं। विकसित देशों में भी ऐसी इच्छाएँ होती हैं, परन्तु वे संस्था के लक्ष्यों को सर्वोपरि महत्व देते हैं। विकासशील देशों के अधिकारी-तन्त्र उत्पादनविमुख न होकर कुछ अन्य हैं। यहाँ पद के साथ जो महिमा, प्रतिष्ठा जुड़ी हुई है वह उपलब्धि पर नहीं बल्कि पद पर आरोपित गरिमा के कारण है और इसी से

उनके व्यवहार को समझा जा सकता है। अयोग्य व्यक्तियों को योग्यता का विचार न करके पदोन्नति मिल जाती है। इससे कार्मिक प्रथाएँ, अनुशासन एवं पदोन्नतियाँ प्रभावित होती हैं। वहाँ भ्रष्टाचार व्यापक रूप से फैला है। अधिकारी न केवल अपने स्वार्थों की रक्षा करते हैं बल्कि अपनी बिरादरी के लोगों के स्वार्थों की भी रक्षा करते हैं। संक्षेप में विकासशील देशों में पक्षपात, भाई-भतीजावाद प्रशासनिक पद्धति का एक भाग है और यह बुराई समाज का एक अंग बन गयी है।

18. **लोक-प्रशासन का स्वरूप-** लोक प्रशासन का स्वरूप विकासोन्मुख दिखाई देता है। लेकिन भीतर ही भीतर इसमें काम करने वाली नौकरशाही की कार्यशैली कठोर, अहंकारग्रस्त तथा असंवेदनशील होती है।
19. **सेवीवर्ग, प्रशासन पर विकास कार्यों का भार-** विकासशील देशों में देश के विकास का सम्पूर्ण भार प्रशासन अर्थात् सेवी वर्ग पर ही होता है क्योंकि वे ही विकास की नीतियों को क्रियान्वित करते हैं।
20. **जन आकांक्षाओं के प्रति सजग दृष्टिकोण-** इन देशों में प्रशासन अथवा नौकरशाही जन आकांक्षाओं के प्रति एक सजग दृष्टिकोण रखती है।
21. **उत्प्रेरणा का अभाव-** विकासशील देशों में लोक प्रशासन या सेवीवर्ग में उत्प्रेरणा का अभाव पाया जाता है जिसके परिणामस्वरूप वे पूर्ण सक्रियता के साथ अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन नहीं कर पाते हैं।

5.6 विकासशील देशों के प्रशासन की समस्याऐं

इन सब विशेषताओं के अतिरिक्त भी विकासशील देशों के प्रशासन में कुछ समस्याऐं ऐसी होती हैं जो इन देशों के प्रशासन की विशेषताओं के तौर पर ही देखी जा सकती हैं जो कुछ इस प्रकार हैं-

1. सामान्यतः उपनिवेशवाद के शिकार रहे इन देशों का प्रशासन तंत्र विदेशी शासक राष्ट्र के प्रतिमानों पर आधारित माना जाता है, अतः उसमें स्थानीय मूल्यों, संस्कृति तथा अपनत्व का अभाव रहता है।
2. इन देशों में प्रशासनिक तंत्र में जड़ता व्याप्त रहती है। समयानुकूल सुधारों तथा परिवर्तनों का विरोध होता है, अतः प्रशासनिक पिछड़ापन व्याप्त रहता है।
3. राजनैतिक मंत्री तथा प्रशासनिक सचिव के मध्य अहं तथा अधिकार क्षेत्र का संघर्ष पाया जाता है।
4. प्रशासनिक विभागों, संगठनों तथा कार्मिकों की संख्या का निरन्तर विस्तार होता रहता है, अतः अनुपयोगी प्रशासन तंत्र का बढ़ता आकार राष्ट्रीय व्यय में वृद्धि करती है।
5. लोककल्याणकारी राज्य के लक्ष्यों की सम्पूर्ति हेतु सरकार द्वारा नित्य नए विकास एवं कल्याण कार्यक्रम निरूपित किए जाते हैं, किन्तु इनका निष्पादन बहुत शोचनीय रहता है क्योंकि उत्तरदायित्व एवं प्रतिबद्धता की भावना का अभाव है।
6. विदेशी सहायता(अनुदान या ऋण) कार्यक्रम पर आधारित इन देशों की विकास परियोजनाएँ तथा प्रशासन बहुधा विदेशी अभिकरणों की शर्तों का पालन करने को विवश रहते हैं। अतः न चाहते हुए भी अप्रिय स्थितियों का सामना करना पड़ता है।
7. हड़ताल, अकर्मण्यता, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, जातिवाद, लापरवाही तथा रिश्वतखोरी इन देशों की प्रमुख समस्याऐं बनी हुई हैं।
8. लोक प्रशासन में होने वाला व्यय अनुत्पादक अधिक होता है। सामान्यतः आधा बजट तो कार्मिकों के वेतन-भत्तों पर ही व्यय हो जाता है।
9. नौकरशाही की निरंकुश कार्यप्रणाली इन देशों के समाज की आवश्यकताओं से मेल नहीं खाती है। अतः लॉर्ड हीवर्ट के शब्दों में नौकरशाही 'नवीन निरंकुशता' के रूप में इन देशों का शासन संचालित करती है।

10. समाज वैज्ञानिकों तथा मनोविश्लेषकों का निष्कर्ष है कि विकासशील राष्ट्रों का भाग्यवादी एवं पिछड़ा हुआ समाज अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं होता है। अतः प्रशासनिक शोषण भी जारी रहता है।

11. प्रशासनिक कुशलता तथा राष्ट्रीय विकास के लिये बने कानून बहुत शिथिल तथा अपूर्ण हैं। अतः न्यायपालिका भी मुकदमों के बोझ से पीड़ित रहती है।

12. राजनैतिक अस्थिरता तथा जन असन्तोष के कारण प्रशासनिक कार्यकुशलता निम्न स्तरीय बनी रहती है।

13. प्रशासनिक नियंत्रण की व्यवस्था पूर्ण प्रभावी नहीं होती है। अतः संसाधनों का दुरुपयोग यथावत् जारी रहता है।

14. मानव संसाधन की तकनीकी तथा व्यावहारिक योग्यताएँ निम्न स्तरीय पाई जाती हैं।

15. विशेषज्ञों को नीति-निर्माण एवं निर्णयन में कम महत्व मिलने के कारण सामान्यज्ञ-विशेषज्ञ विवाद बना रहता है।

16. प्रशासनिक संगठनों तथा प्रक्रियाओं में अनावश्यक रूप से औपचारिकताओं की भरमार रहती है।

17. लोक प्रशासन की कार्यशैली में लैंगिक भेद, जातीय वैमनस्य तथा वर्गीय असमानता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

18. लोक प्रशासन नित्य नए कानून, नीति, संगठन तथा समितियाँ बनाता है, किन्तु उनकी प्रभावशीलता शून्य रहती है।

19. लोक सेवाओं में संविधान, कानून तथ जनता के प्रति प्रतिबद्धता का अभाव पाया जाता है।

20. नौकरशाही या लोक सेवाओं का आकार निरन्तर बढ़ता रहता है, किन्तु कुशलता उसी अनुपात में वृद्धि नहीं करती है।

21. भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतन-भत्ते तथा पेन्शन इत्यादि कार्मिक प्रकरण सदैव विवादग्रस्त बने रहते हैं।

22. स्वयं लोक सेवक तथा आम जनता प्रशासनिक निर्णयों के विरूद्ध बड़ी संख्या में वाद दायर करती है।

23. सेमिनार, संगोष्ठी, कार्यशाला तथा प्रशिक्षण इत्यादि की महज औपचारिकताएँ पूरी की जाती हैं। अन्तिम निष्कर्ष अत्यन्त निराशाजनक होता है।

24. राष्ट्रीय संसाधनों का दुरुपयोग आम जनता से कहीं अधिक नौकरशाह करते हैं। प्रशासनिक विभागों का आधे से अधिक बजट केवल वेतन-भत्तों पर व्यय होता है।

25. प्रत्येक कार्यों में नियम, कानूनों तथा प्रक्रियाओं की अनावश्यक औपचारिकताएँ पूर्ण की जाती हैं, चाहे कार्य कितना ही छोटा या आपातकालीन परिस्थिति से सम्बद्ध क्यों न हो।

26. प्रशासनिक संगठनों के आन्तरिक कार्यकरण में जाति, वर्ग, भाषा, धर्म, लिंग तथा नस्ल इत्यादि पर आधारित भेदभाव एवं संघर्ष स्पष्ट दिखाई देता है।

27. अनुसंधान, नवाचार तथा प्रशासनिक सुधारों के नाम पर महज खानापूर्ति की जाती है। किसी भी स्तर पर पहल क्षमता तथा नेतृत्व का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

28. अति महत्वाकांक्षी, कर्मठ, योग्य तथा प्रतिबद्ध कार्मिकों को प्रायः निराशा के दौर से गुजरना पड़ता है। अतः इन देशों की प्रतिभाएँ विकसित राष्ट्रों की ओर पलायन कर जाती हैं।

29. प्रशासनिक गोपनीयता के कारण पारदर्शिता, सूचना का अधिकार तथा लोक जवाबदेयता सुनिश्चित नहीं हो पाती है।

30. शिकायत निवारण व्यवस्था प्रायः निष्क्रिय तथा स्वार्थी तत्वों से युक्त होने के कारण उपहास एवं अविश्वास की शिकार रहती है।

31. प्रत्येक कार्य को उलझाने तथा दूसरों पर टालने के लिए 'समिति व्यवस्था' के दुरुपयोग की यहाँ सामान्य परम्परा होती है।

32. आन्तरिक और बाहरी आक्रमण से सुरक्षा और व्यवस्था की स्थापना।

33. विभिन्नता में राष्ट्रीय एकता बनाये रखना।

5.7 विकासशील देशों के प्रशासन के समक्ष चुनौतियाँ

इन समस्याओं के अतिरिक्त प्रशासन के समक्ष कुछ ऐसी चुनौतियाँ विद्यमान होती हैं, जिसके लिये प्रशासन को निरन्तर प्रयासरत रहना होता है-

1. केन्द्रीय, राज्यीय और स्थानीय सरकारों के विभिन्न इकाइयों के बीच सामंजस्य बनाये रखना;
2. परम्परागत सामाजिक-आर्थिक निहित स्वार्थों को समाप्त करना;
3. मनोवैज्ञानिक तथा भौतिक सुरक्षा को प्रोत्साहन देना;
4. राष्ट्रीय बचत एवं अन्य वित्तीय संसाधनों को गतिशील बनाना;
5. विनियोग का बुद्धिपूर्ण आवंटन तथा सुविधाओं एवं सेवाओं का कुशल प्रबन्ध;
6. विकास प्रक्रिया में जन-सहभागिता को सक्रिय बनाना;
7. अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में सम्मानजनक स्थिति सुनिश्चित करना;
8. आधुनिक तकनीक और ज्ञान को प्राप्त करना तथा विकास करने की प्रक्रिया को सक्रिय बनाना; आदि।

इस प्रकार पिछले अध्याय व इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप विकसित व विकासशील दोनों प्रकार के देशों की विशेषताओं को समझ गये होंगे। इन दोनों अवधारणाओं को और स्पष्ट करने के लिये आइये इनके बीच अन्तर करके इनको और अधिक स्पष्टता से जाना जाये।

5.8 विकसित व विकासशील देशों के लोक प्रशासन और नौकरशाही में अन्तर

विकसित राष्ट्र	विकासशील राष्ट्र
इन राष्ट्रों का लोक प्रशासन स्थायित्व प्राप्त, प्रतिबद्ध एवं सुचारू है।	इन राष्ट्रों का लोक प्रशासन यहाँ के समाज और राजनीति की भाँति संक्रमण काल से गुजर रहा है तथा कम प्रतिबद्ध है।
यह विकसित राष्ट्रों के स्वयं के इतिहास, जनाकांक्षा तथा परिपक्वता का परिचायक है।	उपनिवेशवाद नहीं का शिकार है तथा जनाकांक्षाओं के अनुरूप है।
सांस्कृतिक भिन्नताएँ कम हैं अतः एकता प्रयासों में बांधा नहीं आती है।	विकासशील देशों में सांस्कृतिक भिन्नताऐं अधिक हैं तथा संघर्ष बना रहता है।
तकनीकी दृष्टि से सक्षम तथा औद्योगिक अर्थव्यवस्था है।	कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है तथा तकनीकी क्षमताएँ अपूर्ण हैं।
मानवीय, प्राकृतिक तथा मशीनी संसाधनों के मध्य सामंजस्य होता है।	सभी प्रकार के संसाधन होते हुए भी उनका एकीकृत सदुपयोग नहीं हो पाता है।
नीति एवं क्रियान्वयन में पर्याप्त समन्वय होता है।	नीति, कार्यक्रम तथा योजना के निर्माण में जितने कुशल हैं उतने ही अकुशल इनके क्रियान्वयन में हैं।
प्रशासन स्वयं को समाज का एक भाग मानता है।	प्रशासन स्वयं को समाज से उच्च मानता है।
जनसहभागिता एवं सहयोग मिलता है।	विकास कार्यों में जनसहयोग नहीं मिलता है।
राष्ट्रीय मुद्दों पर विभिन्न राजनीतिक दलों में सहमति होती है।	दलगत राजनीतिक स्वार्थों के आगे राष्ट्र के मुद्दे गौण हो जाते हैं।
लोक प्रशासन की दैनिक गतिविधियों में राजनीतिक	प्रत्येक स्तर पर राजनीतिक दबाव एवं स्वार्थ

हस्तक्षेप नहीं होता है।	अभिभावी रहते हैं।
सत्ता का विकेन्द्रीकरण प्रायः आवश्यकतानुसार होता है।	सत्ता का विकेन्द्रीकरण सैद्धान्तिक रूप से दिखता है, वास्तव में होता नहीं है।
कानूनों का पालन यहाँ का राष्ट्रीय चरित्र है।	यहाँ कानूनों की भरमार होते हुए भी उनका पालन करवाना दुष्कर है।
मंत्रालयों तथा प्रशासनिक संस्थाओं इत्यादि का विस्तार नियंत्रित रहता है।	विकासशील देशों में अनियंत्रित ढंग से प्रशासनिक संस्थाएँ गठित होती रहती हैं।
नियोजन में सरकारी भूमि केवल निदेशात्मक (Indicative) रहती है।	सम्पूर्ण नियोजन एवं विकास कार्यों में सरकार की भूमिका पूर्णरूपेण रहती है।
प्रशासन पर नियन्त्रणकारी संस्थाएँ प्रभावी सिद्ध होती हैं।	नियंत्रणकारी संस्थाएँ अल्पप्रभावी या निष्प्रभावी सिद्ध होती हैं।
लोक प्रशासन में 'कार्य की संस्कृति' पायी जाती है।	'प्रशासनिक कार्य संस्कृति' का सर्वथा अभाव रहता है।
आवश्यकतानुसार सुधार एवं परिवर्तन किए जा सकते हैं।	सुधारों तथा परिवर्तनों के विरोध का माहौल बना रहता है।
यहाँ की लोक सेवाऐं मुख्यतः सम्बन्धित देश की ऐतिहासिक सांस्कृतिक विचारधारा से सम्बद्ध हैं।	यहाँ की लोक सेवाऐं अधिकांशतः 15वीं सदी के पश्चात के उपनिवेशवाद का परिणाम हैं।
परम्परा, जाति, नस्ल, बहुभाषा तथा रूढ़ियों का प्रभाव यहाँ की लोक सेवा पर न के बराबर है।	विकासशील देशों का समाज रूढ़िवादी, शिक्षित तथा कृषकों का है अतः लोक सेवा पर जाति, भाषा, परम्परा का प्रभाव है।
लोक सेवकों में उत्तरदायित्व की भावना है।	लोक सेवक प्रायः कामचोर तथा अहं भावना से पीड़ित होते हैं।
लोक सेवाओं का वर्गीकरण स्पष्ट तथा सरल होता है जिसमें वेतनमानों की संख्या कम होती है।	वर्गीकरण बहुत उलझा हुआ होता है। वेतनमानों की संख्या अधिक तथा कार्मिकों में वर्गभेद रहता है।
लोक सेवाओं में विशेषज्ञ सेवाओं को महत्व दिया जाता है।	सामान्यज्ञ अधिकारियों का प्रभुत्व रहता है।
लोक सेवाओं के कार्य निष्पादन मूल्यांकन व्यवस्था सुदृढ़ होती है।	कार्य निष्पादन मूल्यांकन या तो होता नहीं अथवा केवल औपचारिकता की पूर्ति भी होता है।
लोक सेवकों से अधिक वेतनभत्ते-, निजी क्षेत्र में होते हैं अतः लोक सेवाओं की ओर अधिक झुकाव नहीं होता है।	लोक सेवाओं में अधिक वेतनभत्ते होने से निजी क्षेत्र - को दोयम स्थान दिया जाता है।
पदोन्नति प्रायः योग्यता एवं वरिष्ठता पर आधारित है।	अधिकांशतः वरिष्ठता को ही पदोन्नति का आधार माना जाता है।
देश की कुल कार्यशील जनसंख्या का 07 से 10 प्रतिशत हिस्सा लोक सेवाओं में कार्यरत है।	कार्यशील जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि करता है। लोक सेवाओं में मात्र 02 से 04 प्रतिशत व्यक्ति (कार्यशील नागरिक) रोजगार प्राप्त है।
लोक सेवकों को अनेक प्रकार की अभिप्रेरणाएँ तथा	वेतन की अधिकता तथा पदोन्नति ही मुख्य

वृत्तिका विकास के अवसर उपलब्ध हैं।	अभिप्रेरणाएँ हैं।
अनुसंधान तथा नवाचारों को स्थान दिया जाता है।	कार्मिक प्रशासन में अनुसंधान, परिवर्तन तथा नवाचार को महत्व नहीं दिया जाता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. विकासशील देशों के कई नामों में से एक नाम है?
2. तीसरी दुनिया नाम शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कब किया गया था?
3. चौथी दुनिया शब्द का प्रयोग किन देशों के लिए किया जाता है?

5.9 सारांश

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप ये जान गये होंगे कि राजनीतिक दृष्टि से सम्पूर्ण मानव समाज या दुनिया के राष्ट्र दो ध्रुवों में विभक्त है- विकसित एवं विकासशील। विकासशील राष्ट्रों की राजनीतिक प्रवृत्तियाँ सामान्यतः तटस्थ या गुटनिरपेक्ष प्रकृति की रही हैं। औद्योगिक दृष्टि से विश्व के विकसित देशों की तुलना में इनका आर्थिक एवं राजनीतिक विकास निम्न स्तरीय होता है। इन देशों का समाज भी बहुत सी विविधताओं से युक्त होता है। अधिकांश विकासशील देश उपनिवेश रह चुके हैं एवं विकसित देशों की प्रशासनिक प्रणालियों की विशेषताओं का विकासशील देशों में अभाव है। लेकिन विकसित देशों की सभी विशेषताऐं विकासशील देशों में समाहित करना व्यर्थ एवं असम्भव है। परन्तु विकासशील देशों को ये प्रयास जरूर करना चाहिये कि विकसित देशों की कुछ आवश्यक एवं उपयोगी पद्धतियों को लकर अपनी परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार उन्हें अपना ले। विकासशील देशों को अपनी स्वयं की प्रशासन की पद्धति को विकसति करने की आवश्यकता है जिसमें बेईमानी, लालफीताशाही, पक्षपात आदि बुराइयाँ ना हो एवं प्रशासन अपने निर्णय लेने में निष्पक्ष व सक्षम हो।

5.10 शब्दावली

प्रासंगिकता- उपयुक्तता या अनुकूलता, परिदृश्य- चारों ओर दिखने वाला दृश्य, साम्यवादी- साम्यवाद का पक्षधर या समर्थक, उपनिवेश- अन्य स्थान से आये हुए लोगों की बस्ती, प्राविधिकता- किसी कार्य की विशिष्ट प्रायोगिक तथा व्यवहारिक।

5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. उद्-गामी, **2.** 1961, **3.** अति-निर्धन देशों के लिए

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 अवस्थी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2004
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 2013

5.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रीता जोशी, विकास प्रशासन, आर0बी0एस0ए0, पब्लिशर्स, जयपुर, 2003
2. एम0पी0 शर्मा, बी0एल0 सदाना, हरप्रीत कौर, लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब मण्डल, इलाहाबाद, 2015

5.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. विकासशील देशों में लोक प्रशासन की प्रमुख समस्याऐं क्या हैं? वर्णन कीजिये।
2. विकासशील देशों से आपका क्या अभिप्राय है? विकासशील देशों की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई- 6 तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रतिमान (मॉडल), मैक्स वेबर का नौकरशाही मॉडल

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ
6.3 मैक्स वेबर- एक परिचय
6.4 नौकरशाही का अर्थ
6.5 वेबर की नौकरशाही की अवधारणा
6.6 मैक्स वेबर का नौकरशाही का मॉडल
6.7 वेबेरियन मॉडल के मुख्य तत्व
    6.7.1 निर्वेण्यक्तिक व्यवस्था
    6.7.2 नियमों की सर्वोच्चता
    6.7.3 निपुणता अथवा कौशल
    6.7.4 पदसोपानियता
    6.7.5 लोक हित और निजी हितों में टकराव
    6.7.6 लिखित दस्तावेजों की मौजूदगी
6.8 वेबेरियन नौकरशाही मॉडल की आलोचना
6.9 वेबर की प्रतिमान अवधारणा का मूल्यांकन
6.10 सारांश
6.11 शब्दावली
6.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.14 सहायक/उपयोगी अध्ययन सामग्री
6.15 निबंधात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

मैक्स वेबर प्रशासनिक जगत का एक महानतम् प्रशासनिक चिन्तक है। वह नौकरशाही के प्रतिमान का अद्वितीय सिद्धांतकार है। उसको नौकरशाही (Bureaucracy) का पर्यायवाची कहा जा सकता है, लेकिन यहाँ यह स्वीकार करना होगा कि मैक्स वेबर से पूर्व अनेक चिन्तकों ने नौकरशाही को अपने अपने नजरिये से देखा और परखा है। कुछ विचारकों ने नौकरशाही की प्रशंसा की है तो कुछ ने उसकी निन्दा। इसके पक्ष में तर्क भी दिए गए हैं और इस पर हमला भी किया गया है। यह निश्चित तौर से कहा जा सकता है कि नौकरशाही के विचार अथवा अवधारणा से सम्बन्धित तीन धाराऐं अस्तित्व में हैं। पहली धारा का निर्माता कार्ल मार्क्स (1818-1883) है। यह नौकरशाही को एक अभिशाप मानता है। उसके अनुसार नौकरशाही शोषणपरक समाज व्यवस्था का अभिन्न अंग है। उसने नौकरशाही की बुराईयों पर खुलकर लिखा है। दूसरी धारा का प्रतिनिधित्व राबट मर्टन और पीटर ब्लाउ जैसे अमरीकी चिन्तक करते हैं। इनका दृष्टिकोण सुधारवादी है। यह नौकरशाही की बुराईयों-जैसे मानवीय क्षमता को कम आंकना या कार्यक्षेत्र के माहौल को गन्दा करना-की ओर इशारा करके नौकरशाही में सुधार लाना चाहते हैं।

तीसरा वह समूह है जो नौकरशाही को आधुनिक समाज के विकास की एक अनिवार्य शर्त मानता है। इस समूह का प्रतिनिधित्व मैक्स वेबर करता है। वह नौकरशाही को किस रूप में लेता है और उसका कोन सा प्रतिमान (मॉडल) तैयार करता है, इसकी चर्चा हम अगले पन्नों में खुलकर करेंगे।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ और उसका महत्व समझ पायेंगे।
- मैक्स वैबर के जीवन-वृत के साथ उसके प्रशासनिक चिन्तन के लक्ष्य को समझने में आपको आसानी होगी।
- वेबर द्वारा तैयार किये गये नौकरशाही के प्रतिमान (मॉडल) को स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे।
- वेबर द्वारा प्रस्तुत की गई विधिक और तार्किक(Legal Rational) अवधारणा से परिचित होंगे।
- नौकरशाही के प्रतिमान के वेबरवादी प्रतिमान की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- वेबर के नौकरशाही के प्रतिमान को जानकर नौकरशाही की अनिवार्यता को स्वीकार कर सकेंगे।

6.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ

राजनीतिक विज्ञान में राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन के लिए प्लेटों से लेकर मार्क्स तक अध्ययन के अनेक तरीकों(Methods) को अपनाया गया है। इनमें आगमनात्मक(Inductive), निगमनात्मक(Deductive), पर्यावेक्षगात्मक(Observational) अनुभावात्मक(Empirical), तुलनात्मक, दार्शनिक और ऐतिहासिक तरीकों का समय- समय पर प्रयोग हुआ है। हालांकि लोक प्रशासन एक बहुत पुराना विषय है, लेकिन एक शास्त्रीय या सैद्धांतिक हैसियत से यह विषय बीसवीं सदी की देन है। परम्परागत-दार्शनिक तरीका बीसवीं सदी के शुरू में अपनाया जाता रहा, लेकिन बाद में यह स्वीकार किया गया कि परम्परागत दार्शनिक तरीका न तो वैज्ञानिक है और न तथ्यपरक है। इसलिए लोक प्रशासन में ऐतिहासिक और तुलनात्मक तरीके को ज्यादा तर्कसंगत समझा गया। इस नज़रिये का हामी वुड्रो विल्सन(1856-1924) है।

वुड्रो विल्सन ने प्रशासन के व्यवस्थित और वैज्ञानिक अध्ययन के लिये दार्शनिक तरीके(Method) को खारिज करते हुये ऐतिहासिक और तुलनात्मक तरीके पर जोर दिया। उसका कहना था कि प्रशासनिक क्षेत्र में तुलनात्मक तरीके का सबसे सफ़ल और सुरक्षित ढंग से प्रयोग किया जा सकता है। विल्सन के अनुसार इतिहास एक माध्यम है प्रशासनिक अवस्थाओं को आँकने का, उन व्यवस्थाओं का अध्ययन करके तथा वर्तमान के विभिन्न समाजों या राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अवलोकन और आयात करके उनका तुलनात्मक अध्ययन ही, तुलनात्मक प्रशासन कहलाता है। सरल शब्दों में यदि किसी शिक्षार्थी को किसी सरकार के प्रशासन तन्त्र को समझना है तो उसकी तुलना दूसरी सरकारों के प्रशासन तंत्र से करना होगी चाहे उन सरकारों का स्वरूप जनतन्त्रीय हो, अधिनायकवादी या राजतंत्रीय। उसके अनुसार तथ्यात्मक अध्ययन के लिये तरह-तरह के राज्यों में प्रशासन के आधारों को समझना होगा; विभिन्न व्यवस्थाओं की कमजोरियों, बुराईयों, उनकी विशेषताओं और गुणों को समझना होगा और यह तभी सम्भव है, जब उनकी तुलना विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं से की जाये। ऐसे तुलनात्मक अध्ययन के अनेक फायदे समाने आयेंगे-

- यह पता लेगा कि दूसरी प्रशासनिक व्यवस्थाओं में अराजकता, अस्थिरता, भ्रान्तियाँ क्यों पैदा हुई और लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में इन बुराईयों को कैसे रोका जा सकता है।

- प्रशासन के क्षेत्र में आत्मालोचन के दरवाजे खुलेंगे।
- तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर लोक प्रशासन के सिद्धान्त निर्मित होंगे।
- नई प्रशासनिक तकनीकों का आयात भी होगा और नई तकनीकें विकसित होंगी।
- तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर ही लोक प्रशासन के प्रतिमान विकसित होंगे।

6.3 मैक्स वेबर- एक परिचय

मैक्स वेबर और नौकरशाही (Bureaucracy) पढ़ने में यह दो अलग नाम हैं लेकिन वास्तव में यह एक दूसरे के पूरक हैं। नौकरशाही को समझना है तो मैक्स वेबर को पढ़ना होगा। पहले लिखा जा चुका है कि कार्ल मार्क्स नौकरशाही का कटु आलोचक था, इसलिये अगर नौकरशाही के नकारात्मक पहलू को समझना है तो मार्क्स का अध्ययन जरूरी है, लेकिन यदि नौकरशाही के सकारात्मक स्वरूप को देखना है तो मैक्स वेबर का अध्ययन अनिवार्य है। वेबर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि नौकरशाही के सही अर्थ को समझाने के लिए उन्होंने ऐतिहासिक और तुलनात्मक विधियों का बखूबी प्रयोग किया है। इसलिये उनके द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही सम्बन्धी विवेचना तथ्यपरक भी है और वैज्ञानिक भी।

मैक्स वेबर का जन्म 1864 में जर्मनी में हुआ। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद हायडलर्बग के विधि विश्वविद्यालय में अध्ययन किया। 1889 में उन्होंने मध्ययुगीन व्यापार संगठनों पर विधिक और ऐतिहासिक उपागम (Approach) के माध्यम से अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया जिसपर उनको डॉक्टरेट की उपाधि मिली। उन्होंने अपने समय के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों पर विस्तार से बहस की। लेकिन मौलिक रूप से वेबर एक अर्थशास्त्री थे और इसीलिये वह 1894 में फीडेलर्बग विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर बनाये गये। वेबर के बारे में दो बातें याद रखना जरूरी हैं। पहली यह कि वेबर व्यवस्थित और विश्लेषणात्मक(Systematic and Analytical) अध्ययन में विश्वास रखते थे। दूसरी बात यह कि वह पुस्तकालयों से निकलकर यर्थात के संसार में अनुभव(Empirical) के आधार पर ज्ञान हासिल करना चाहते थे। उनका ग्रन्थ ''The Theory of Social and Economic Organisation'' वेबर विचारों की अभिव्यक्ति है। उनकी आस्था लोकतन्त्र तथा उदारवाद में थी और वह यह मानते थे कि तत्कालीन समाज (जर्मनी का) जिस प्रकार प्रशासन-तंत्र में फंसा हुआ है वह केवल अधिनायकवादी शासन-तंत्र को मजबूत करेगा जो उदारवाद के लिये खतरे की घंटी थी। वेबर को इन अवधारणाओं की रौशनी में अब हम आगे नौकरशाही से सम्बन्धित उनके योगदान का अध्ययन करेंगे।

6.4 नौकरशाही का अर्थ

नौकरशाही के सन्दर्भ में मैक्स बेबर को समझने से पहले हमें नौकरशाही को एक प्रशासन-तंत्र के रूप में और शास्त्रीय (Academic) अध्यन की हैसियत से उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में समझना होगा। जब से सभ्य समाज का उदय हुआ है लोक सेवा और उससे सम्बन्धित सेवी-वर्ग किसी न किसी रूप में व्यवस्थित सरकारों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। प्रत्येक संगठित समाज में रोमन साम्राज्य से लेकर चीनी राजनीतिक व्यवस्था तक यहाँ तक की कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी प्रशासन-तंत्र या नौकरशाही के महत्व को स्वीकार किया गया है। नौकरशाही एक संस्था तो है ही उससे अधिक वह एक मनोवृत्ति है और इतिहास ऐसी मिसालों से भरा पड़ा है, जो यह सिद्ध करता है कि प्रशासकीय पदों पर जो व्यक्ति तैनात रहते हैं वे एक विशिष्ट प्रवृत्ति को अपने काम काज से दर्शाते हैं। कालान्तर में यही विशिष्ट प्रवृत्तियाँ सार्वभौमिक रूप ले लेती हैं जिनसे नौकरशाही पचिहानी जाती है।

नौकरशाही(Bureaucracy) शब्द का सबसे पहले प्रयोग फ्रंच अर्थशास्त्री एम0 डे0 गूरने ने 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में किया। धीरे-धीरे यह शब्द फ्रांस में बहुत प्रचलित हो गया। बाद में इस शब्द का आयात ब्रिटेन में समाजशास्त्रीयों

ने 19वीं सदी में करना आरम्भ कर यिा। अनेक ब्रिटिश चिन्तक जिनमें जे0एस0 मिल बहुत आगे थे नौकरशाही विषय से अछूते नहीं रहे। मिल ने तो नौकरशाही को अपनी विश्लेषण श्रृंखला का एक हिस्सा ही बनालिया। मोसका और मिशेल ने इस विषय पर खुलकर लिखा। राबर्ट के0 मर्टन ने नौकरशाही की प्रवृत्ति को बड़े सुन्दर शब्दों में इस तरह लिखा है। ''एक युवा और ऊर्जस्वी नया स्नातक बड़े जोशों-खरोश के साथ नौकरशाही में दाखिल होता है, लेकिन हम उसे 'नौकरशाह' बनते हुये पाते हैं: अर्थात् निष्क्रिय, उदासीन, लकीर का फ़कीर, विलम्बकारी और या तो गैर जिम्मेदार या फिर अत्यन्त सर्तक। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, उसके यह लक्षण दिखाई देने लगते हैं उसकी प्रशिक्षित अयोग्यता प्रकट होने लगती है। नौकरशाही अपने पद धारकों का इस प्रकार से समाजीकरण करती है कि वे किसी भी प्रकार के परिवर्तन के लिये अयोग्य और लापरवाह हो जाते हैं। यह (नौकरशाही) 'अयोग्यता' के लिये एक प्रशिक्षण स्थल मोहय्या करती है।'' इन पंक्तियों को पढ़ने के बाद नौकरशाही का स्वरूप और नौकरशाहों की मनोवृत्ति बड़ी आसानी से समझ में आ जाती है।

लेकिन नौकरशाही के बारे में मर्टन का विश्लेषण एक तरफा है। अतः नौकरशाही को विस्तार से समझने का एक और केवल एक माध्यम है और वह है मैक्स वेबर जिसने प्रशासन-तंत्र का व्यवस्थित और अनुभवात्मक ढंग से अध्ययन किया है। उसने नौकरशाही का एक प्रतिमान तैयार किया जिससे प्रशासन-तंत्र का कोई भी सिद्धान्तकार अछूता नहीं रहा। उसके द्वारा निर्मित मॉडल प्रशासन-तंत्र की आत्मा माना जाता है, जिसने नौकरशाही को एक नया आयाम दिया है।

6.5 मैक्स वेबर की नौकरशाही की अवधारणा

नौकरशाही की चर्चा पर मैक्स वेबर का नाम न आये यह सम्भव नहीं है। वह एक ऐसा चिन्तक है जिसने नौकरशाही के चरित्र का बड़े विस्तार से और व्यवस्थित ढंग से विश्लेषण किया है। इस विश्लेषण से अन्य चिन्तकों का नौकरशाही के प्रति नज़रिया बदला है और यह स्वीकार किया जाने लगा है कि मौजूदा राजनीतिक व्यवस्थाओं में नौकरशाही एक अपरिहार्य भूमिका अदा करती है। प्रशासन-तंत्र या नौकरशाही क्या है इस सवाल का उत्तर वेबर नहीं देता। वह नौकरशाही को परिभाषा के दायरे में भी सीमित करना नहीं चाहता। वह केवल नौकरशाही के चरित्र को समझाने का प्रयास करता हैं। जहाँ तक विश्लेषण का सवाल है, वह चयनित अधिकारियों के प्रशासनिक ढाँचे'' को प्रशासन-तंत्र की इकाई मानकर उसका विश्लेषणकरता नजर आता हैं ''चयनित अधिकारियों'' से उसका अभिप्राय ''नियुक्त अधिकारियों'' से है। प्रभुत्व और सत्ता वेबर के अनुसार नौकरशाही का आधार भी है और ध्येय भी, इस दृष्टि से वेबर ने नौकरशाही को आनुवंशिक और कानूनी-तार्किक(Legal-Rational) दो प्रकारों में वर्गीकृत किया है। पारम्परिक (Traditional) और करिश्माई(Charismatic) या चमत्कारी नौकरशाही आनुवंशिक वर्ग के अन्तर्गत आती है, जहाँ पैतृक नौकरशाही का चलन हो, जबकि कानूनी-तार्किक वर्ग में कानूनी तरीके से चयनित नौकरशाही आती है। दोनों ही प्रकार की नौकरशाही में अधिकांश प्रवृत्तियाँ सामान्य होती हैं जबकि कुछ में भिन्नता होती है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है वेबर ने नौकरशाही के अध्ययन में अनेक उपागमों का सहारा लिया है। इस कारण वह सटीक निष्कर्षों पर पहुँचे हैं। उदाहरण के लिये-

- ऐतिहासिक उपागम के माध्यम से उसने पश्चिमी समाजों में मौजूद तकनीकी और प्रशासनिक कारणों की खोज करके नौकरशाही के निर्माण की प्रक्रिया को समझने का प्रयास किया और इसी ज्ञान के आधार पर उसने नौकरशाही के मॉडल की रूपरेखा तैयार की।
- वेबर ने कानून के महत्व को इतना अधिक स्वीकार किया कि नौकरशाही संरचना में वह कानून को निर्णायक तत्व मानने लगा।

- नौकरशाही के चरित्र-निर्माण का एक बड़ा कारण उसने उसका अभिजात्य-वर्ग(Elite Class) से सम्बन्धित होना बताया।
- अनुभावात्मक उपागम के माध्यम से वह नौकरशाही के गुणों एवं अवगुणों की खोज कर पाया।

मैक्स वेबर की नौकरशाही की अवधारणा के सन्दर्भ में अध्ययनकर्ता को पाँच बातों पर जरूर ध्यान देना चाहिये- (1) वैधता; (2) सत्ता जिसकी वैधता हो; (3) एक कानूनी संहिता; (4) प्रशासकीय संगठनों की कानूनी हैसियत तथा (5) लोगों द्वारा कानूनों का पालन करने में अभ्यस्त होना।
सार यह है कि मैक्स वेबर नौकरशाही की वैधता और व्यक्ति निरपेक्ष व्यवस्था पर बल देता है और इसी नजरिये से उसने नौकरशाही का मॉडल तैयार किया है जिसकी विस्तृत विवेचना आगे की जायेगी।

6.6 मैक्स वेबर का नौकरशाही का मॉडल

प्रशासन-तंत्र की अवधारणा को समझने के लिये वेबर का नौकरशाही का प्रतिमान अथवा मॉडल, मील का एक पत्थर है। ''सत्ता, 'वैधता' और 'तार्किकता' यह तीन ऐसी अवधारणाऐं हैं जिनके इर्द-गिर्द वेबर का नौकरशाही का सिद्धान्त घूमता है। उसने वैधानिक-तार्किक सत्ता या प्रभुत्व को नौकरशाही का आधार माना है और इसी आधार पर उसने नौकरशाही का मॉडल तैयार किया है। इस प्रतिमान की निम्न विशेषताऐं हैं, जो उसके ग्रंथ 'दि थ्योरी ऑफ सोशल एण्ड एकोनॉमिक आर्गानाइजेशन' के अध्ययन से स्पष्ट होता है-

1. सरकारी प्रशासनिक इकाईयों का संचालन निश्चित नियमों के अनुसार होता है।
2. प्रशासनिक संरचना में चयनित अधिकारी होते हैं जिनकी निम्न विशेषताऐं होती हैं, पहला- प्रत्येक अधिकारी को कुछ शक्तियाँ प्राप्त होती हैं जो कानून के परिप्रेक्ष में परिभाषित भी होती हैं और उनका सीमांकन भी होता है; दूसरा- अधिकारियों को जो अधिकार दिये जाते हैं वे उनकी जिम्मेदारियों के अनुसार होते हैं। यह अधिकार व्यक्ति निरपेक्ष होते हैं; तथा तीसरा- प्रदत्त किये गये कार्यों को पूरा करने के लिए अधिकारियों को सीमित साधनों का इस तरह से प्रयोग करना होता है कि निम्नतम साधनों से अधिकतम कार्यों को निबटारा हो सके।
3. प्रशासनिक संरचना में सत्ता के क्रमिक स्तर या पद सोपान होते हैं। प्रत्येक स्तर का एक पद होता है जिस पर अधिकारी पदासीन होता है। संरचना में सत्ता ऊपर से नीचे आती है अर्थात् प्रधान अधिकारी उच्चतम पद पर होता है और इसके मातहत निचले पदों पर अर्थात् आदेश ऊपर से आता है और क्रमिक रूप से निचले स्तर तक जाता है। निम्न कर्मचारियों के भी कुछ सीमित अधिकार होते हैं। वे प्रधान अधिकारी को सुझाव दे सकते हैं और अपील भी कर सकते हैं।
4. जिम्मेदारियों को निभाने के लिये आवश्यक साधनों की जरूरत होती है जिन पर अधिकारियों का सीमित अधिकार होता है और वे उन साधनों के उपयोग के लिये उत्तरदायी भी होते हैं। यह नियम अधिकारियों पर एक बड़ा अंकुश होते हैं जिनसे कार्यों के निष्पादन में विलम्ब भी होता है। लेकिन साधनों के दुरुपयोग को रोकने के लिये यह जरूरी भी है।
5. प्रशासनिक संरचना में पद अव्यक्तिक(Impersonal) हैं। यह अधिकारियों की निजी धरोहर नहीं है जिन्हें बेचा जा सके या प्रदत्त किया जा सके।
6. पदाधिकारी लिखित दस्तावेजों(विधिक नियमों) के अनुसार काम करते हैं यद्यपि वे अनौपचारिक तरीके भी अपनाते हैं।

वेबर के अनुसार नौकरशाही एक संस्था भी है और व्यक्तियों का एक समूह भी जिन्हें अधिकारी वर्ग कहा जाता है। इन प्रशासनिक अधिकारियों की पहचान कुछ निश्चित लक्षणों से होती है जिनकी ओर वेबर ने अपने मॉडल में इशारा किया है। यह लक्षणात्मक विशेषताऐं निम्न हैं-

1. अनुबन्ध के आधार पर किसी योग्य व्यक्ति की कार्यालय के किसी विशिष्ट पद पर नियुक्ति;
2. नियुक्त अधिकारी का निरपेक्ष नियमों के अनुसार अपने कर्तव्यों को पूरा करना;
3. कार्यों को इमानदारी के साथ निष्पादन करने पर अधिकारी की वफादारी को आंकना तथा इस वफ़ादारी के अनुसार उसे पुरस्कृत (पदोन्नत) करना;
4. प्रशासनिक कार्य एक तकनीक है। यह तकनीकि महारत ही व्यक्ति को अधिकारी की कुर्सी पर पदासीन करती है;
5. अधिकारी एक प्रशासन है और उसका काम उसका व्यवसाय है; तथा
6. निश्चित नियमों या मानकों के अनुसार अधिकारी को वेतन मिलता है और उन्नति के अवसर मिलते हैं।

6.7 वेबेरियन मॉडल के मुख्य तत्व(Main elements of Weberian Model)

नौकरशाही का वेबेरियन मॉडल बहुत ही विस्तृत और स्पष्ट है। वेबर ने इस मॉडल के छः तत्व निश्चित किये हैं जिनसे यह पहिचाना जा सकता है। यह तत्व इस प्रकार हैं:

6.7.1 निर्वैयक्तिक व्यवस्था(Impersonal System)

प्रशासनिक व्यवस्था व्यक्तिक विहीन(Impersonal) होती है अर्थात् ऐसी व्यवस्था जिसमें मित्रवत् मानवीय भावनायें न हों। वेबर की नज़र में नौकरशाही का यह एक अनिवार्य लेकिन नकारात्मक पहलू है। निर्वैयक्तिक व्यवस्था नौकरशाही के चरित्र को दर्शाती है। सार यह है कि नौकरशाह अपने मातहतों को आदेश देता है और मातहत इन आदेशों का अनुपालन करते हैं। यहाँ नौकरशाह और मातहत भावनायुक्त व्यक्तियों की तरह आचरण नहीं करते हैं बल्कि उनका पद उनसे ऐसा करने के लिए बाध्य करता है अर्थात् सत्ता और उसका अनुपालन पद में निहित होता है न कि पदासीन व्यक्ति में। नौकरशाही की यही व्यवस्था निर्वैयक्तिक कहलाती है। यह व्यवस्था नकारात्मक इसीलिए है कि इसमें नौकरशाहों की अक्षमता को बढ़ावा मिलता है।

6.7.2 नियमों की सर्वोच्चता(Superemacy of Rules)

नियमों की सर्वोच्चता को वेबर नौकरशाही व्यवस्था का आधार मानता है। नियम कानूनी-तार्किक सत्ता का सार हैं। कार्यालयों को संगठित करने और कार्यों को निष्पादित करने का माध्यम नियम ही होते हैं। नियम कार्यालय के आचरण को नियंत्रित करते हैं और व्यवस्था को निर्वैयक्तिक बनाते हैं। जो नौकरशाही के लिये जरूरी है। नियम तरह-तरह के हो सकते हैं-तकनीकी नियम, आदेशीय नियम जो अधिनियम का रूप ले लेते हैं। वेबर का मानना यह है कि नियमों का तार्किक इस्तेमाल हो इसलिये अधिकारी को एक कठोर प्रशिक्षण की प्रक्रिया से गुजरना चाहिये और नौकरशाही में ऐसा होता है। नतीजा यह होता है कि नौकरशाह नियमों का गुलाम बन जाता है। नियम उसके लिये साधन ही नहीं साध्य भी बन जाते हैं। लक्ष्य उतना महत्वपूर्ण नहीं रहता जितना नियम अपरिहार्य बन जाता है। नकारात्मक पहलू यह है कि नियमों से चिपके रहने से ‘विलम्ब’ की स्थिति पैदा होती है; प्रशासन में जटिलता आती है; लाल फीताशाही को बढ़ावा मिलता है और प्रशासनिक जड़ता का ख़तरा बढ़ता है।

6.7.3 निपुणता अथवा कौशल(Efficiency)

वेबोरियन मॉडल का तीसरा तत्व निपुणता या कौशल है जो विशेष ज्ञान या दक्षता से प्राप्त होती है। वेबर ने इस निपुणता या दक्षता की परिधियों की ओर इशारा किया है अर्थात वह यह मानता है कि दक्षता या कौशल का एक वृत्त बनता है। इस वृत्त में तीन तत्व आते हैं (अ) कार्यो के संचालन का दायित्व जिसका आधार श्रम विभाजन है; (ब) अधिकारों से लैस एक प्रशिक्षित अधिकारी की नियुक्ति जो अन्ततः एक नौकरशाह का रूप लेता है; और (स) ऐसे दबाव के साधन जो परिभाषित हों और जिनके माध्यम से कार्यों का निष्पादन तार्किक रूप से किया जा सके।

6.7.4 पदसोपानियता(Hierarchy)

पदसोपानियता प्रशासनिक संरचना की चौथी विशेषता है। इसका अर्थ यह है कि किसी विभाग या विभागीय संगठन की बनावट श्रेणियों या पद सोपानों के रूप में होती है। संगठन में ऊपर से नीचे तक श्रेणीबद्धता होती है। आदेश उच्चतम पद से निचले पद तक आता है और निचला पद उच्च पद के आदेश या निर्देश का पालन करता है। उच्च पद का कार्य नियमानुसार आदेश देना, नियन्त्रण रखना तथा देख-रेख करना होता है। वेबर के अनुसार श्रेणीबद्धता संगठन को जोड़े रहती है और अनुशासित रखती है। यह सिद्धान्त सम्बधात्मकता को दर्शाता है जो प्रशासनिक संरचना के ध्येय को प्राप्त करने के लिये जरूरी है।

6.7.5 लोक हित और निजी हितों में टकराव(Conflict of Public interest and Self-interest)

यह एक स्वाभाविक स्थिति है जिसकी ओर वेबर इशारा करता है। प्रशासन का उद्देश्य लोकहित है, लेकिन अक्सर यह देखा गया है कि प्रशासन में कार्यरत लोग (विशेष रूप से अधिकारी) सत्ता का दुरुपयोग करके अपने निजी हितों की पूर्ति करते हैं। वे साधनों का निजी हितों की पूर्ति के लिये दुरुपयोग करते हैं। वेबर इस स्थिति को प्रशासनिक व्यवस्था के लिये एक खतरा मानता है। वह कर्मचारियों अथवा अधिकारियों को निष्पादन के साधनों के स्वामित्व से अलग करने की सिफ़ारिश करता है। उसका तर्क है कि नौकरशाही की संरचना में उपयोग्यता(Utility) और प्रासंगिकता का होना प्रशासन की सफलता के लिये अनिवार्य है।

6.7.6 लिखित दस्तावेज़ों की मौजूदगी(Written Documents)

नौकरशाही की छटी पहिचान है लिखित दस्तावेज। यह नौकरशाही के क्रियाकलाप का आधार हैं। इसका अर्थ यह कि प्रशासनिक कार्यवाहियों, नियमों और फैसलों को एक सूत्र में बाँधकर लिखित रूप में सुरक्षित रखा जाता है। यही लेखन संग्रह एक दस्तावेज़ का रूप ले लेता है। इस व्यवस्था के अनेक लाभ हैं-भावी निर्णयों के लिये इसकी उपयोगिता; भावी नियम या अधिनियम बनाने में इसकी सार्थकता; लोगों के प्रति उत्तरदायित्व दर्शाने में इसका योगदान; तथा प्रशासन को अधिक गतिशील, सतर्क, नियोजित तथा नियंत्रित करने में सहायक यह होता है।
इस तरह हमने देखा कि वेबेरियन मॉडल की छः विशेषताऐं हैं, छः लक्षणात्मक विशेषताऐं और छः मुख्य तत्व हैं। इनको समझकर वेबेरियन नौकरशाही के प्रतिमान की संरचना कार्यविधि और ध्येय को पूरी तरह समझा जा सकता है। वेबर का यह निहायत आकर्षक मॉडल है: प्रशासकों का चयन तकनीकी योग्यता और उनके कौशल के आधार पर होता है; अधिकारियों को एक निश्चित आकर्षक वेतन मिलता है; उनको पदोन्नति के अवसर पुरस्कार के रूप में मिलते हैं; आफिस में काम और काम के अतिरिक्त कुछ नहीं एक अनुशासित व्यवस्था स्थापित करता है; यहाँ योग्यता होती है, कार्यक्षमता होती है, कर्मठता होती है, वफ़ादारी या कर्तव्यनिष्ठा होती है। इस स्थिति का नाम नौकरशाही है और योग्यता, तकनीकी ज्ञान, अधिकार, सत्ता और साधन एक ऐसी मानसिकता पैदा करते हैं जो नौकरशाही की विशेषता भी है, सद्-गुण भी और दुरगुर्ण भी।

6.8 वेबेरियन नौकरशाही मॉडल की आलोचना

यद्यपि वैबेरियन मॉडल की प्रशंसा लगभग सभी प्रशासनिक चिन्तकों ने की है लेकिन मॉडल से सम्बन्धित कुछ बातों पर उनको संदेह भी है। उदाहरण के लिये (1) मॉडल कितना तर्कशील है; (2) विभिन्न परिस्थितियों से यह कितना सामन्जस्य स्थापित करता है, तथा (3) क्या यह मॉडल अधिकतम कार्यक्षमता के लक्ष्य को पा सकता है। ऐसे संदेह करने वालों या आलोचकों में राबर्ट मर्टन, फ़िलिप सेल्ज़निक, टॉलकॉट पारसंस, पीटर ब्लोंउ, राबर्ट प्रेंस्थस, एच0सी0 क्रील इत्यादि प्रमुख हैं। राबर्ट मर्टन ने वेबर की कानूनी-तार्किक मॉडल की सार्थकता पर संदेह व्यक्त किया है।

उसके अनुसार वेबर का यह दावा कि प्रशासनिक संरचना में पदसोपानीयता और नियम तर्कसंगत हैं, सही नहीं है। ऐसी संरचना से भ्रान्तियाँ पैदा हो सकती हैं, टकराव हो सकता है और अप्रत्याशित परिणाम निकल सकते हैं, जिससे संगठन के लक्ष्यों को नुकसान पहुँच सकता है। दूसरी ओर फिलिप सेल्जनिक भी वैबेरियन मॉडल की संरचना की तार्किकता पर संदेह करता है। वेबर के अनुसार संगठन की संरचना में श्रेणीबद्धता होती है अर्थात् अनेक उपइकाईयाँ होती हैं। सेल्ज़निक का दावा है कि उपइकाईयों के निजी लक्ष्य हो सकते हैं जो संगठन के सामान्य लक्ष्य के वितरित जा सकते हैं। मर्टन और सेल्जनिक दोनों का तर्क है कि वेबर की संगठनात्मक संरचना में मानवीय स्वभाव की अनदेखी की गई है। इनके अनुसार वास्तविकता यह है कि प्रशासनिक संगठन मानवों (अधिकारियों) का समूह है, जिनके आचरण को ध्यान में रखना अनिवार्य है अर्थात् वेबर ने व्यवहारवादी दृष्टिकोण अपनाने में कंजूसी की है, जबकि प्रशासन के लक्ष्य, संचालन तथा दक्षता को हासिल करने के लिये मानव व्यवहार का अध्ययन जरूरी है।

टॉलकॉट पारसंस वेबर के मॉडल का तीसरा बड़ा आलोचक है। वेबर ने आदर्शवादी नौकरशाही का विचार रखा है। उसमें उसने आन्तरिक निरन्तरता का दावा किया है। वह यह मानता है कि एक नौकरशाह तकनीकी रूप से जितना दक्ष होगा उतना ही अधिक उसे आदेश देने का अधिकार होगा। पारसंस ने इस दावे को खोखला बताया है, क्योंकि इसमें विरोधाभास की संभावना है। अधिकारियों में कौशल सम्बन्धी पारस्परिक अन्तर होता है। अधिकारी एक जड़ मशीन नहीं है; वे मनुष्य हैं विभिन्न विशिष्ट स्वाभावों वाले मनुष्य। पीटर ब्लोंउ वेबेरियन, मॉडल का चौथा आलोचक है। उसके अनुसार यह मॉडल सार्वभौमिक नहीं हो सकता। परिस्थितियों की मांग अलग-अलग हो सकती है। वेबर का प्रतिमान परिवर्तन के महत्व को स्वीकार नहीं करता है। कट्टर निमय प्रशासकों को अपंग बना देते हैं जिससे प्रशासन-तंत्र निष्ठुर हो जाता है। दक्षता का अर्थ लकीर का फकीर नहीं है। परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार दक्षता के लाभ हो सकते हैं। ब्लोउ के अनुसार अधिकारी को औचित्य का अधिकार मिलना चाहिये। वह बदले हुये हालात के अनुसार निर्णय ले। वेबर के प्रतिमान में इस तथ्य का अभाव है।

संक्षेप में वेबैरियन मॉडल के आलोचकों की आलोचना का सार यह है कि-

- वेबर के नौकरशाही प्रतिमान की तार्किकता संदेहास्पद है;
- इसमें आन्तरिक सुसंगता नहीं है;
- वेबर के अनुसार नौकरशाही परिस्थितियों पर निर्भर है, यह धारणा गलत है; तथा
- वेबर ने ‘आदर्श प्रकार’ को नौकरशाही का आधार बनाया, लेकिन यह आधार अवैध हैं जो ‘आदर्श’ है, वह ‘प्रकार’ नहीं हो सकता।

6.9 वेबर की प्रतिमान अवधारणा का मूल्यांकन

वेबर की आलोचनाओं में यद्यपि कुछ दम है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उसका मॉडल अर्थहीन और अप्रासंगिक है। आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था में विकसित प्रशासन के सन्दर्भ में उसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। उसने जो कुछ तैयार किया, वह तत्कालीन जर्मनी के हालात के सन्दर्भ में था। आलोचकों को वेबेरियन मॉडल को आधुनिक परिस्थितियों के प्रसंग में देखना चाहिये। वेबर यह दावा कि कानूनी-तार्किक मॉडल सर्वोत्तम और टिकाऊ है तो इसका कारण उनके द्वारा किया गया तुलनात्मक अध्ययन है। तत्कालीन दूसरे प्रशासनिक संगठनों से तुलना करके ही वे इस नतीजे पर पहुँचे होंगे कि उनका मॉडल सर्वश्रेष्ठ है।

दूसरे, 'कुशलता' और 'तार्किकता' बहुत भ्रमित या उल्लंघन में डालने वाले शब्द हैं। इन शब्दों से वेबर का अर्थ क्या था और उसके आलोचकों ने इनको किस अर्थ में लिया यह एक विवादित विषय है। वेबर कानून के विद्यार्थी रहे थे इसीलिये वह 'कुशलता' को भी शायद कानूनी अर्थ में ढालकर तार्किक बनाना चाहते थे। 'कानूनी-तार्किक' उनके इसी दिमाग़ की उपज है। जब उन्होंने कहा कि उनका मॉडल स्थायी है तो शायद उनका सोचना यह था कि तार्किकता प्रत्येक समाज की तथा प्रत्येक समय की माँग होती है।

तीसरे, आलोचकों को वेबर के 'औपचारिकतावाद''(Formalism) पर बहुत आपत्ति है। वेबर नौकरशाही के व्यवहार में औपचारिकता पर बहुत बल देता है। यहाँ उसका दृष्टिकोण तथ्यात्मक है। एलब्रो का मानना है कि 'आज' के प्रशासन में प्रबन्ध तकनीकों का विकास हुआ है जिसके कारण औपचारिक तार्किकता भी बढ़ी है। जैसे-जैसे प्रबन्धकीय तकनीकें विकसित होंगी वेबर के मॉडल की प्रासंगिकता भी बढ़ेगी।

चौथे, वेबर नौकरशाही की सार्थकता की अनिवार्यता पर जोर देता है। वह नौकरशाही को समाज का अविभाज्य अंग मानता है। उसका यह दावा आज के सन्दर्भ में बिल्कुल सटीक बैठता है। स्वयं भारत आजाद हो गया लेकिन ब्रिटेन नौकरशाही की जो व्यवस्था छोड़ गया भारत उससे आजाद नहीं हो सकता। यह नौकरशाही की खूबी है कि जहाँ उसने पैर जमा लिये वहाँ उससे पीछा छुड़ाना असंभव हो गया।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वेबोरियन मॉडल के सकारात्मक पहलू भी है और नकारात्मक थी। अधिकारियों का श्रेष्ठता के आधार पर चयन, योग्यता के आधार पर नियुक्ति और दक्षता, कर्मठता तथा निष्ठा के आधार पर प्रोन्नति यह मॉडल के सकारात्मक पहलू हैं। जबकि दूसरी ओर अव्यक्तिक प्रशासनिक ढाँचा, संवेदन विहीनता, कड़े नियम, दक्षता के मापदण्ड, तकनीकी रुजहान तथा हद से बढ़कर औपचारिकता जैसे नकारात्मक पहलू हैं। सच यह है कि वेबर के आलोचकों ने वर्तमान नौकरशाही के स्वरूप, प्रवृत्ति और व्यवहार का अध्ययन करके वेबर के मॉडल की आलोचना की है, जो उचित नहीं है। हमें वेबर के मॉडल को बेबर के समय से आँकना चाहिये न कि अपने समय से। सच यह भी है कि आजका प्रशासनिक चिन्तक नौकरशाही का विश्लेषण करते समय वेबेरियन मॉडल से अपना पीछा नहीं छुड़ा सकता और न ही आज का समाज उस नौकरशाही की अवहेलना कर सकता है जिसकी रूप-रेखा वेबर ने तैयार की है। वेबर के मॉडल में भले ही कुछ नकारात्मक बाते हों लेकिन नौकरशाही पर आज के शोधकर्ता या सिद्धान्तकार के लिये वेबर का मॉडल अर्थपूर्ण, प्रासंगिक और तार्किक बना रहेगा।

अभ्यास प्रश्न-

1. मैक्स वेबर की शिक्षा किस विश्वविद्यालय में हुई?
2. नौकरशाही शब्द का प्रयोग सबसे पहले किस विचारक ने किया?
3. वेबर ने नौकरशाही को किन अर्थों में लिया?
4. नौकरशाही के वेबेरियन मॉडल के कितने तत्व हैं?
5. वेबर के मॉडल का सबसे प्रमुख आलोचक कौन है?

6.10 सारांश

वेबर और वेबेरियन मॉडल के अध्ययन से आप इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि-

1. नौकरशाही और मैक्स वेबर एक दूसरे के पर्यायवाची हैं, क्योंकि वह पहला चिन्तक है जिसने नौकरशाही पर सार्थक ढंग से ऐतिहासिक और तुलनात्मक उपागमों के आधार पर अपना शोध प्रस्तुत प्रबन्ध किया।
2. वेबर वह पहला चिन्तक है जिसने 'सत्ता' को प्रशासन तन्त्र को आधार बनाया; सत्ता का तार्किक ढंग से विश्लेषण किया तथा सत्ता और प्रभुत्व को एक दूसरे का पूरक बताया।
3. वेबर ने मॉडल के रूप में प्रसिद्ध कानूनी-तार्किक नौकरशाही का बड़े तर्कपूर्ण ढंग से विचार रखा। सत्ता की वैधता को महत्व दिया और उसका छः अंगों के रूप में विश्लेषण किया।
4. नौकरशाही के कानूनी-तार्किक मॉडल की उसने छः विशेष्ताऐं बतायी हैं- कार्यालयों के संचालन का नियमित आधार; नियमों के आधार पर काम; सत्ता की पदसोपानीय संरचना; दायित्वों को निभाने के साधनों पर अधिकारियों का स्वामित्व न होना; पदों का अधिकारियों की निजी सम्पत्ति न होना; तथा प्रशासन का लिखित दस्तावेजों के आधार पर परिचालित होना।
5. वेबर ने अपने मॉडल के छः मुख्य तत्व निर्धारित किये, जिनमें- निर्वैयक्तिक प्रशासनिक व्यवस्था; नियमों की सर्वोच्चता; दक्षता के वृत्त; पदसोपानियता; निजी और लोकहित का प्रथक्कीकरण ताकि प्रशासन की उपयोगिता और प्रासंगिकता बनी रहे; और लिखित दस्तावेज।
6. वेबर अपने मॉडल में ऐसे लोगों के चयन की वकालत करता है जो तकनीकी योग्यता में दक्ष हों।
7. वह ऐसे अधिकारियों को निश्चित और नियमित वेतन देने तथा प्रोन्नति के अवसर प्रदान करने की सिफारिश करता है।
8. वेबर की नजर में एकतंत्रीय शासन व्यवस्था में उच्च स्तरीय नौकरशाही (तकनीकी दृष्टिकोण से) को विकसित होने का मौका मिलता है। ऐसी नौकरशाही कर्मठ, अनुशासित और निष्ठावान होती है।
9. वेबर के मॉडल की आलोचनाऐं भी हुई हैं, विशेष रूप से उसके मॉडल की तर्कशीलता, प्रासंगिकता और कार्यदक्षता पर आलोचकों ने सवाल उठाये हैं और उसकी सफलता और सार्वभौमिकता पर संदेह व्यक्त किया है।
10. लेकिन अधिकाँश लेखकों ने आधुनिक प्रसंग में भी वेबर के नौकरशाही मण्डल की प्रशंसा की है। उनके अनुसार नौकरशाही का जो विचार वेबर ने रखा वह आधुनिक समाज में भी अपरिहार्य है।

6.11 शब्दावली

तार्किक (Rational)- बुद्धिसंगत अर्थात् वह बात जिसको बुद्धि स्वीकार करे; जिसका आधार वैज्ञानिक हो और जो आस्थाओं, अन्धविश्वासों और परिकल्पनाओं पर आधारित न हो।

पदसोपानियता(Hierarchical)- पदानुक्रमिक अर्थात् संगठन की ऐसी व्यवस्था जिसमें निचले तल से ऊपर तक अनेक स्तर (पद) हों और उनमें श्रेणीबद्धता हो। ऊपरी स्तर से आदेश आये और निम्न स्तर उसका पालन करे।

निर्वैक्तिक(Imprersonal)- जिसमें मित्रवत मानवीय भावनाऐं न हों अथवा जो व्यक्ति के रूप में अवस्थित न हो।

वैधता (Legitimate)- वह बात, घटना या संस्था जो विधि के अनुसार हो अर्थात् विधि सम्मत हो। जिस बात को वैधता प्राप्त होगी वह तर्कसंगत होगी तथा उसका अनुपालन करना होगा।

सत्ता(Authority)- प्राधिकार अर्थात् वह शक्ति जिसके माध्यम से आदेश दिया जा सके और नियंत्रण किया जा सके। यहाँ यह याद रखना है कि सत्ता को वैद्य होना चाहिये।

6.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. हाइडलबर्ग विश्वविद्यालय, **2.** एम0डे0 गूरने ने, **3.** कानूनी-तार्किक अर्थ और अनुवंशिक अर्थ में, **4.** छः, **5.** राबर्ट मर्टन

6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 रवीन्द्र प्रसाद, वी0एस0 प्रसाद, पी0 सत्यनारायण (सम्पादक) प्रशासनिक चिन्तक।
2. सी0 लक्षमन्ता, सत्यनारायण राओ: लेख, मैक्स वेबर: ऐडमिनिस्ट्रेटिव थिन्कर्स, सम्पादन, डॉ0 रवीन्द्र प्रसाद, वी0ए0 प्रसाद।
3. मैक्स वेबर: दि थ्योरी ऑफ सोशल एण्ड एकोनामिक आर्गेनाइजेशन।
4. पीटर एम0 ब्लो: ब्योरियोकरेसी इन मार्डन सोसायटी।
5. एस0पी0 वर्मा: मार्डन पॉलिटिकल थ्योरी।

6.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी एण्ड अवस्थी: लोक प्रशासन के सिद्धान्त।
2. डॉ0 अशोक कुमार: प्रशासनिक चिन्तक।

6.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. नौकरशाही के वेबेरियन मॉडल की क्या विशेषताऐं हैं?
2. वेबर के नौकरशाही के मॉडल के कौन-कौन से तत्व हैं?
3. वेबर के नौकरशाही के मॉडल की किस आधार पर आलोचना की गई है?
4. वेबर की कानूनी-तार्किक अवधारणा को समझाइये।

इकाई- 7 नौकरशाही का आदर्श प्रारुप, मैक्स वेबर की आदर्शवादी नौकरशाही

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
8.2 नौकरशाही का अर्थ
7.3 मैक्स वेबर: एक परिचय
7.4 मैक्स वेबर: नौकरशाही का एक सिद्धान्तकार
7.5 वेबर का आदर्श प्रारूप नौकरशाही का प्रतिमान
 7.5.1 नौकरशाही संगठन के रूप में
 7.5.2 नौकरशाही विविध-तार्किक प्राधिकार के रूप में
7.6 सत्ता की वैधता के विश्वास
7.7 आदर्श प्रारूप नौकशाही मॉडल की विशेषताऐं
7.8 वेबरवादी मॉडल के मुख्य तत्व
7.9 फ्रेड रिग्स पर वेबर का प्रभाव
7.10 वेबरवादी मॉडल की आलोचना
7.11 मूल्यांकन
7.12 सारांश
7.13 शब्दावली
7.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.16 सहायक/उपयोगी अध्ययन सामग्री
7.17 निबंधात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

मैक्स वेबर का नाम प्रशासनिक चिन्तकों में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। वह नौकरशाही का महानतम सिद्धान्तकार है। जहाँ मार्क्स ने नौकरशाही का नकारात्मक रूप प्रस्तुत किया, वहाँ मैक्स वेबर ने नौकरशाही को सकारात्मक रूप में दर्शाकर उसे आधुनिक प्रशासन-तंत्र का एक अभिन्न अंग बना दिया। उसने नौकरशाही का एक ऐसा मॉडल तैयार किया, जो न केवल वर्तमान नौकरशाही का आधार है, बल्कि भावी प्रशासनिक चिन्तकों तथा नौकरशाही पर शोधकर्ताओं के लिए एक प्रेणा-स्त्रोत भी है। उसने आदर्श नौकरशाही प्रतिमान (मॉडल) प्रस्तुत करके नौकरशाही तथा प्रशासन की तर्कपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की है। उसके अनुसार संस्थागत मानव व्यवहार में तार्किकता लाने का सर्वोत्तम साधन नौकरशाही है। उसने स्पष्ट किया कि यथार्थ में किसी भी संगठन में आदर्श नौकरशाही पूर्णतः नहीं पायी जाती, लेकिन यहाँ दोष संगठन का या व्यक्तियों का है न कि मॉडल का। वेबर के आदर्श नौकरशाही मॉडल को आज विश्व के प्रायः अधिकांश देश अपनाये हुये हैं, चाहे वह विकसित देश हों अथवा अविकसित या विकासशील देश।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नौकरशाही का अर्थ एवं महत्व समझ सकेंगे।
- मैक्स वेबर को नौकरशाही के एक सिद्धान्तकार के रूप में जान पायेंगे।
- मैक्स वेबर का आदर्श नौकरशाही मॉडल को जान सकेंगे।
- मैक्स वेबर नौकरशाही के मॉडल की विशेषताओं से परिचित होंगे।
- मैक्स वेबर तथा रिग्स के प्रशासनिक मॉडलों का अन्तर समझ पायेंगे।
- मैक्स वेबर के आदर्श प्रारूप प्रतिमान के बारे में आलोचकों का नजरिया जान पायेंगे, तथा
- वेबरवाद के महत्व को नौकरशाही पर शोधकर्ताओं ने जिस तरह स्वीकार किया है, यह समझ सकेंगे।

7.2 नौकरशाही का अर्थ

शब्द 'नौकरशाही'(Bureaucracy) का यह दुर्भाग्य है कि यह जितना महत्वपूर्ण है उससे अधिक बदनाम है। कुछ सीमा तक नौकरशाही इस बदनामी के लिए स्वंय जिम्मेदार भी है, विशेष रूप से अपनी नकारात्मक भूमिका के कारण, लाल फीताशाही और अनावश्यक कागजी कार्यवाही के कारण, फिर स्वयं खेती-वर्ग का मिजाज जो उसे नौकरशाह बना देता है-अक्खड़, अपरिवर्तनीय, कठोर, संवेदनहीन, नियमों का कीड़ा और ऐसा बहुत कुछ। लेकिन एक सच यह भी है कि नौकरशाही की संस्था अनिवार्य भी है, आज ही नहीं अपने अतीत में भी यह जरूरी थी। ढाई हजार वर्ष पूर्व चीन के महान विचारक कन्फ्यूशियस ने सुझाव दिया था कि चीनी साम्राज्य का काम-काज सलाहकारों और लोक सेवकों के एक ऐसे वर्ग के माध्यम से सम्पन्न होना चाहिए जो सम्राट को सलाह भी दे सकें तथा शासन के काम का निपटारा भी कर सकें। लगभग कुछ ऐसे ही विचार कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में व्यक्त किये थे, जब उसने सुझाव दिया था कि प्रशासक को लोक प्रशासन के विज्ञान का ज्ञान होना चाहिए। उसका सप्तांग का सिद्धान्त उसके इसी दृष्टिकोण को दर्शाता है। उसने लिखा ''मात्र एक पहिया गाड़ी को चलाये नहीं रख सकता।'' आधुनिक सरकारें प्रशासनिक संरचनाओं का (विभागों) समूह हैं। कार्यपालिका नीतियां तैय करती है, प्रशासनिक संरचनाऐं इन कार्यों को पूरा करती हैं। लोक सेवक इन संरचनाओं का मानवीय रूप है, जिन्हें हम नौकरशाह और इनकी संस्था को नौकरशाही कहते हैं।

7.3 मैक्स वेबर: एक परिचय

वेबर एक ऐसे चिंतक या सिद्धान्तकार थे जिन्होंने अनुमानों के संसार से निकलकर यथार्थ के मैदान में पदार्पण किया। वह न केवल प्रशासन बल्कि राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, विधिशास्त्र और इतिहास जैसे क्षेत्रों में भी एक बहुआयामी व्यक्तित्व बन गया।

मैक्स वेबर(1864-1920) एक सिद्धान्तकार था, जो दूसरे शब्दों में नौकरशाही(Bureaucracy) का पर्यायवाची बन गया। वेबर सही अर्थ में एक समाजशास्त्री था। उसने पहली बार नौकरशाही की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया। उसके लेखों से पहले नौकरशाही मात्र एक क्रिया समझी जाती थी। लेकिन वेबर ने नौकरशाही को अवधारणात्मकता प्रदान करके अध्ययन का एक विषय बना दिया। इसी के साथ वेबर ने वैधता और आधिपत्य (Legitmacy and Demination) के बारे में भी सिद्धान्त प्रतिपादित किये।

वेबर ने कानून, इतिहास और अर्थशास्त्र का गहन अध्ययन किया था। राजनीतिक-अर्थशास्त्र वेबर का प्रिय विषय था। इसी विषय में उसने अध्यापन से अपना जीवन आरम्भ किया, लेकिन हताशा और निराशा ने उसका रूख समाजशास्त्र की ओर मोड़ दिया। आज वह समाजशास्त्र का महान लेखक माना जाता है।

लेकिन यहाँ प्रश्न यह है कि मैक्स वेबर का प्रबन्धन या प्रशासन से क्या सम्बन्ध था? यहाँ हम यह बता दें कि वेबर का रूझान अट्ठारह वर्ष की आयु से विश्लेषण और क्रमबद्ध अध्ययन की ओर अधिक था। वह पुस्तकालय में बैठकर पुस्तकों के पन्नों से निष्कर्ष नहीं निकालता था, वह वास्तविकताओं का अध्ययन करके अनुभव के आधार पर अपने सिद्धान्तों का समर्थक था। इस तरह वह अनुभववादी भी था और यथार्थवादी भी था। वह जर्मनी की सामाजिक परिस्थितियों से अधिक प्रभावित था। उसको सबसे बड़ा डर यह था कि समाज का नौकरशाहीकरण व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व के लिये एक चुनौती बन सकता है। इसलिये उसने जिन विषयों पर लिखना आरम्भ किया उनमें सत्ता, संगठन, वैधता और नौकरशाही महत्वपूर्ण है। यहाँ यह बात स्पष्ट कर दें कि वेबर ने जो कुछ भी लिखा उसका लक्ष्य एक सर्वोत्तम प्रशासन की नींव डालना था। उसके सिद्धान्त शासन के इर्द-गिर्द ही घूमते नजर आते हैं।

7.4 मैक्स वेबर: नौकरशाही का एक सिद्धान्तकार

नौकरशाही की नकारात्मकता अथवा सकारात्मकता की बहस से आगे निकलकर वेबर ने उचित यह समझा कि वह नौकरशाही का एक वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रतिपादित करे। इस विषय का वह पहला सिद्धान्तकार नहीं था। शायद पहला विचारक डॉ0 गोरने था, जो फ्रैंच अर्थशास्त्री था। जिसने सबसे पहले शब्द 'ब्योरियोक्रेसी' का प्रयोग 18वीं सदी के पूर्वाद्ध में किया था। गोरने के बाद यह शब्द बहुत लोकप्रिय हो गया, विशेष रूप से फ्रांस और ब्रिटेन में, जहाँ 19वीं सदी में समाशास्त्रियों ने इस शब्द का खुलकर प्रयोग करना शुरू कर दिया। विख्यात राजनीतिक अर्थशास्त्री जे0एस0 मिल ने शब्द 'ब्योकरियोकरेसी' का अपने विश्लेषणात्मक अध्ययन में प्रयोग किया। मोसका तथा मिशेल्ज ऐसे दो प्रसिद्ध समाजशास्त्री हैं, जिन्होंने नौकरशाही पर विस्तार से लिखा। फिर कार्ल मार्क्स को कौन भुला सकता है, जिसने नौकरशाही को पूँजीपतियों, सत्ताधारियों तथा बुर्जुआइयों के हाथ में एक ऐसा दमनकारी हथकण्डा बताया जो गरीबों, मजदूरों और कमजोरों को कुचलने के लिए आवश्यक था। लेकिन मार्क्स का यह दृष्टिकोण एकतरफा और पूर्वाग्रह से ग्रस्त था। इसलिए यहाँ नौकरशाही की प्रासंगिकता को सिद्ध करने के लिए मैक्स वेबर अपने मजबूत तर्कों के साथ पदार्पण करता है। वेबर वह पहला चिन्तक था, जिसने सबसे पहले नौकरशाही का क्रमबद्ध अध्ययन किया और उसकी विशेषताओं को दर्शाया। अपने इस अध्ययन के आधार पर उसने नौकरशाही का एक मॉडल तैयार किया, जो अन्ततः नौकरशाही के दूसरे प्रतिमानों का आधार बना।

नौकरशाही से वेबर का अभिप्राय क्या था, यह उसने कभी स्पष्ट नहीं किया। हाँ, इतना जरूर कहा कि ''नौकरशाही नियुक्त अधिकारियों का एक प्रशासनिक ढांचा है।'' अर्थात नियुक्त अधिकारीगण नौकरशाही का निर्माण करते हैं। वेबर ने अपनी रचनाओं में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था में नौकरशाही को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। उसके अनुसार औपचारिक संगठनों की दृष्टि से नौकरशाही की व्यवस्था अत्यंत महत्वपूर्ण है। अधिकतर विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि वेबर द्वारा नौकरशाही पर अध्ययन अत्यंत प्रमाणिक तथा आधिकारिक है।

वेबर वह पहला चिन्तक है, जिसने नौकरशाही के आदर्श रूप की एक रूप रेखा प्रस्तुत की। वह नौकरशाही में खुले तौर पर कार्यों का वर्गीकरण देखता है, जिसके अनुसार प्रत्येक अधिकारी नियमानुसार अपनी अपनी परिस्थितियों के सन्दर्भ में उन्हें पूरा करता है। नियुक्त अधिकारी को उसकी तकनीकी योग्यता तथा कौशल के अनुसार पद और विशिष्ट कार्य के निष्पादन की जिम्मेदारी सौंपी जाती है। वेबर अधिकारी के उस विशिष्ट कार्य को 'भूमिका' कहता है। उसके अनुसार नौकरशाही एक संगठन भी है, एक संरचना भी और एक व्यवस्था भी है, जहाँ विभिन्न भूमिकाऐं हैं, जिन्हें विशिष्ट अधिकारी अदा करते हैं। अधिकारी की योग्यता और कौशल की जांच का भी एक नियम है; एक निश्चित प्रविधि एक मापदण्ड है। पदरचना में संस्तरण या पदसोपानियता(Hierarchy) पायी

जाती है। सभी अधिकारी और अधीनस्थ कर्मचारी इस व्यवस्था के अनुसार अपनी भूमिका अदा करते हैं। इस सम्बन्ध में कोई तर्क-विर्तक नहीं होता है।

7.5 वेबर का आदर्श-प्रारूप नौकरशाही का प्रतिमान

मैक्स वेबर के नौकरशाही के आदर्श-प्रारूप मॉडल(Ideal Type of Bureaucratic Model) को समझने से पहले नौकरशाही का चरित्र उसकी संरचना तथा उसका स्वरूप समझना होगा। उसने नौकरशाही के दृष्टिकोण को दो भागों में वर्गीकृत किया है, पहला- नौकरशाही संगठन के रूप में तथा दूसरा- नौकरशाही तार्किक नियम (विधिक) प्राधिकार के रूप में। विस्तार में यह इस प्रकार से है-

7.5.1 नौकरशाही संगठन के रूप में(Bureaucracy as an Organisation)

वेबर पहला एक ऐसा चिन्तक है, जिसने नौकरशाही की स्पष्ट व्याख्या संगठनातमक आधार पर की है। इस आधार का अपना एक इतिहास है। इसलिए वह नौकरशाही को पैतृक या पुश्तैनी भी कहता है, जो पारम्परिक तथा करिश्माई प्रारूप की सत्ताओं में पाई जाती है। वेबर का कहना है कि कर्मचारी-तन्त्र के जितने लक्षण होते हैं, उन्हें संयुक्त रूप से समझने की आवश्यकता है। इन्हीं लक्षणों के आधार पर नौकरशाही का कोई मॉडल तैयार किया जा सकता है। लेकिन आदर्श-प्रारूप के मॉडल का निर्माण करने से पहले सभी कर्मचारियों (सेवी-वर्ग) के लक्षणों को समझना होगा। फिर इन लक्षणों को एक स्थान (सैद्धांतिक रूप से) पर एकत्रित करना होगा। अन्ततः उस संग्रह पर शोध करना होगा तथा शोध के परिणामों के आधार पर मॉडल तैयार करना होगा। यह एक कठिन प्रक्रिया है।

7.5.2 नौकरशाही विधिक-तार्किक प्राधिकार के रूप में(Bureaucracy as a Rational-Legal Authority)

वेबर के आदर्श-प्रारूप के मॉडल का आधार यही विधिक-तार्किक प्राधिकार का विचार है, जो उसके अनुसार कानूनी प्रारूप की सत्ता में पाया जाता है। वेबर के इसी दृष्टिकोण को वेबरवादी प्रतिमान कहा जाता है। उसका विश्वास था कि लगभग सभी प्रकार की सत्ता सम्बन्धी व्यवस्थाओं का आधार वैधता है। उसके अनुसार नौकरशाही कोई ऐतिहासिक व्यवस्था, नियम या परम्परा नहीं है, बल्कि इसके पीछे तार्किक नियम होते हैं। विवेक नौकरशाही का विधिक प्रारूप है। इस बात को समझाते हुए नौकरशाही पुश्तैनी या पैतृक होती है और उसका स्त्रोत परम्परा या करिश्मा होता है। वेबर नौकरशाही को सामन्तवादी समाज से जोड़ता है, क्योंकि राजा या शासक परम्परा के आधार पर सत्ता प्राप्त करते थे और यही परम्परा उनकी सत्ता को वैधता प्रदान करती थी। लेकिन जनतंत्रीय व्यवस्था में ऐसा नहीं होता है। यहाँ सत्ता का आधार संविधान और कानून होते हैं। वे ही सत्ता की वैधता सिद्ध करते हैं।

7.6 सत्ता की वैधता के विश्वास

वेबर के अनुसार नौकरशाही का भी आधार सत्ता है और इस सत्ता की भी वैधता है। सत्ता की यह वैधता पांच विश्वासों या आस्थाओं पर टिकी हुई है-

1. एक ऐसा विधिक नियम बनाया जा सकता है, जो संगठन के सदस्यों से आज्ञापालन करा सके।
2. कानून एक अदृश्य नियमों का नाम है, जिनको विशिष्ट मामलों पर लागू किया जा सकता है और प्रशासन इन नियमों या कानूनों की हदों में रहकर संगठन के हितों को संरक्षण देता है।
3. वह व्यक्ति जो सत्ता का प्रयोग करता है, वह भी निर्वयक्तिक (impersonal) आदेश का पालन करता है।
4. केवल एक सदस्य की हैसियत से सदस्य का कानून का पालन करना।

5. आज्ञा पालन उस व्यक्ति के लिए नहीं है जो सत्ताधारी है, बल्कि उस निर्वेयक्तिक आदेश के प्रति हैं, जो सत्ताधारी को पद या स्थिति प्रदान करता है।

इन पांच विश्वासों से यह सिद्ध होता है कि वेबर ने वैधता और निर्वेयक्तिक आदेश के मध्य सम्बन्धों पर बहुत जोर दिया। आगे जाकर हम यह देखते हैं कि वेबर चार ऐसे तत्वों में विश्वास करता था, जो नौकरशाही के दृष्टिकोण का सार हैं। यह चार तत्व हैं- पहला, ऐतिहासिक, तकनीकी और प्रशासनिक कारक जो नौकरशाहीकरण की प्रक्रिया को तेज करते हैं; दूसरा, अधिकारीतन्त्रीय संगठन पर कानून के शासन का प्रभाव; तीसरा- अधिकारीगण की एक अभिजात वर्ग के रूप में अपनी पेशावराना हैसियत के अनुसार आचरण करना, तथा चौथा, आधुनिक विश्व में नौकरशाही को अत्याधिक श्रेय देना, विशेष रूप से सरकारी नौकरशाही को।

7.7 आदर्श रूप नौकरशाही मॉडल की विशेषताऐं

मैक्स वेबर ने अपने आदर्श रूप नौकरशाही के मॉडल की विशेषताऐं बताई हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. **स्पष्ट श्रम-विभाजन(Clearcut Division of Lobour)-** इसका सीधा सादा अर्थ है, कर्मचारियों/अधिकारियों के कार्यों का स्पष्ट विभाजन तथा निश्चित कार्य के अनुसार कर्मी का अपने उत्तरदायित्व को निभाना तथा उस कृत के लिए जिम्मेदार रहना।
2. **आदेश तथा दायित्वों के सीमित क्षेत्रों के साथ पदसोपनीय सत्ता संरचना(Hierarchical Authority Structure with Limited Areas of Command and Responsibility)-** नौकरशाही संरचना, पद सोपनियता के सिद्धान्त पर टिकी होती है। अधीनस्थ कार्यालयों तथा पदों में तथा उसके अनुसार उच्चतर कार्यालय या पदों में सत्ता का विभाजन होता है। प्रत्येक कर्मचारी या अधिकारी इस संरचना के अनुसार अपने सीमित क्षेत्राधिकार में रहकर अपना कार्य करता है। सत्ता या आदेश ऊपर से नीचे तथा अनुपालन नीचे से ऊपर की ओर चलता है। प्रत्येक अधीनस्थ पद पर निरीक्षकों की पैनी नजर रहती है।
3. **उर्मूत नियमों की अपरिवर्तनशील व्यवस्था(Consistent System of Abstract Rules)-** तकनीकी अथवा कानूनी नियम कार्यालयों की कार्यवाही का आधार होते हैं। सेवी-वर्ग इन नियमों में मंझा हुआ होता है और वह इन्हीं के अनुसार अपनी जिम्मेदारी निभाता है। वह इन नियमों में, सेवा में प्रवेश करने से पूर्व कठोर प्रशिक्षण की प्रक्रिया से गुजरता है। संगठन के अमूर्त नियम तथा अपरिवर्तनशील व्यवस्था कार्यों में एकरूपता तथा समन्वय का कारण बन जाती है।
4. **स्पष्टतः परिभाषित कार्य(Clearly defied Functions)-** कानूनी तौर पर कार्यालयों के कार्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित तथा मर्यादित कर दिया जाता है। प्रत्येक पद का एक क्षेत्राधिकार होता है, जिसका उल्लंघन गैर-नियमकीय होता है। इसलिए टकराव नहीं होता है।
5. **अधिकारियों की नियुक्ति, उनकी योग्यता तथा तकनीकी दक्षता के आधार पर(Officials appointed on the basis of their ability and Technical Expertise)-** नौकरशाही से यहाँ अर्थ, सरकारी नौकरशाही से है। जहाँ अधिकारियों की नियुक्ति का आधार उनकी व्यक्तिक योग्यता, कौशल तथा तकनीकी जानकारी होती है और जिसका उनको चयनित होने के बाद विशिष्ट प्रशिक्षण मिला होता है।
6. **अधिकारियों की नियुक्ति या तो संविदा के या निश्चित सरकारी नियमों के आधार पर होना (Officials appointed either on the basis of Free Contract or according to established Government Rules)-** यहाँ यह समझना है कि प्रशासनिक संगठन दो प्रकार के होते हैं, निजी निकाय तथा सरकारी विभाग। निजी निकायों में अधिकारियों की नियुक्ति स्वतंत्र संविदा के

आधार पर होती है, अर्थात प्रबन्धन का प्रत्येक अधिकारी से एक स्वतंत्र सशर्त समझौता होता है। यहाँ दबाव नहीं होता। दूसरी ओर, सरकारी विभागों में नियुक्ति सरकारी नियमों के अनुसार होती है। यहाँ नियुक्त अधिकारी स्वतंत्र नहीं होता और उस पर वे तमाम वेतनाम शर्तें लागू होती हैं, जो कार्यपालिका निर्धारित करती है। यहाँ सेवा अवधि में स्थायित्व होता है। वास्वतव में सरकारी अधिकारीतंत्र ही वेबर की नौकरशाही की परिभाषा में आता है।

7. **मासिक वेतन और पेन्शन का अधिकार(Rights to Monthly Salary and Pension)-** नौकरशाही संरचना में समझौते के आधार पर वेतन तैय तो होता है। लेकिन संगठन चाहे निजी हो या सरकारी, वेतन निर्धारण का आधार कुछ मानक होते हैं जो कर्मी के पदसोपनीय स्तर, पद के दायित्व तथा सामाजिक स्थिति और आर्थिक परिस्थिति के अनुसार तैय किये जाते हैं। ऐसे ही निश्चित मानक पेन्शन निर्धारण के लिए होते हैं।
8. **पूर्णकालीन पदाधिकारी(Full Time Occupation)-** किसी प्रशासनिक संगठन में दो प्रकार के कर्मचारी या अधिकारी होते हैं- स्थायी और आंशिक। स्थायी कर्मचारी अपने कार्यालय को पूरा समय देते हैं और अपने कार्यों के लिए जिम्मेदारी निभाते हैं, जबकि अंशकालिक कर्मचारी एक सीमित समय तक कार्य करते हैं और अपने कार्यों के लिए जबावदेह भी नहीं होते हैं। यह दूसरे वर्ग के कर्मचारी माने जाते हैं।
9. **पेशा ही अन्तिम लक्ष्य(Career Ultimate Goal)-** जब कोई अधिकारी नौकरशाही से सम्बद्ध पेशा चुनता है तो वह उसे पेशे को अपने जीवन-यापन का अन्तिम लक्ष्य बना लेता है। उसी पेशे में उसकी प्रोन्नति होती रहती है और उसी हैसियत से वह सेवानिवृत्त हो जाता है।
10. **साधनों पर स्वामित्व न होना(Lack of ownership of Resources)-** कार्यों को पूरा करने के लिए अधिकारियों को संसाधन प्राप्त होते हैं, लेकिन यह संसाधन उनकी निजी मलकियत नहीं होते हैं। वे इन संसाधनों के उपयोग के लिए उत्तरदायी होते हैं। इसके अतिरिक्त सरकारी काम-काज तथा निजी मामले और सरकारी आमदनी तथा निजी आय पूरी तरह एक-दूसरे से पृथक होते हैं।
11. **कार्यालयों के पदों को निजी सम्पत्ति न समझना(Incumbents of Offices are non-private property)-** सरकारी विभागों में अधिकारियों की भर्ती एक निजी सम्पत्ति के रूप में नहीं होती है, जिसको बेचा जा सके या विरासत के रूप में उस पर दावा किया जा सके।
12. **लिखित दस्तावेज प्रशासन का आधार(Administration based on writer documents)-** प्रशासन अनौपचारिक नहीं होता है। यहाँ औपचारिकता प्रशासन पर छाई रहती है, जिसका आधार लिखित दस्तावेज होते हैं। नौकरशाही संगठन का एक आदर्श अधिकारी अपने कार्यालय का संचालन औपचारिक निवैयक्तिकता के आधार पर करता है। यही उसकी सर्वोपरि भावना होती है। वह निष्पक्ष तरीके से काम करता है। वह काम के प्रति वफ़ादार होता है, व्यक्तियों के लिए नहीं।
13. **कठोर एवं व्यवस्थित अनुशासन तथा नियंत्रण(Strict and Systematic Discipline and Control)-** नौकरशाही संगठन के किसी कर्मी को अनुशासनहीन नहीं होने दिया जाता है। नियंत्रण की व्यवस्था होती है। शक्ति वितरण के माध्यम से उत्तरदायित्व निर्धारित होता है। नियंत्रण की एक क्रमिक व्यवस्था होती है। कार्यपालिका से लेकर व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका तक नौकरशाही पर नियन्त्रण रख्ने का एक उपकरणीय व्यवस्था होती है।
14. **अधिकतम कार्यकुशलता(Highest Degree of Efficiency)-** नौकरशाही की एक विशेषता यह है कि वह तकनीकी दृष्टि से अधिकतम कुशलता प्राप्त करने में सक्षम होती है। कारण यह है कि प्रत्येक अधिकारी अपने कार्य का विशेषज्ञ होता है। उसके कार्यों में उचित समन्वय तथा नियंत्रण रहता है।

मैक्स वैबर ने अपनी पुस्तक ''The Theory of Social and Economic Organisation'' में यह स्पष्ट किया है कि सभी समकालीन राष्ट्रों की प्रशासनिक प्रणालियों से कहीं न कहीं नौकरशाही का बोध होता है, भले ही उनके सामाजिक या राजनीतिक वातावरण में अन्तर हो। 'संरचनात्मकता' तथा 'प्रकार्यात्मकता' नौकरशाही की पहचान है। वेबर इस बात को स्वीकार करता है कि लोकतंत्र के लिए कार्यकुशल नौकरशाही होना अनिवार्य है, लेकिन ऐसा न हो कि नौकरशाही लोकतंत्र के लिए खतरा बन जाये। वेबर का विश्वास है कि सरकार में जन-भागीदारी सुनिश्चित करके नौकरशाही को अधिक उत्तरदायी बनाया जा सकता है, क्योंकि नौकरशाही स्थायी होती है। इसलिए उसका प्रभाव देश की राजनीति पर गहरा पड़ता है। अक्सर राजनीतिज्ञों तथा नौकरशाहों में विचारात्मक टकराव भी देखा जा गया है जो विकास में बाधा डालता है।

वेबर के अनुसार यह कानूनी-तार्किक नौकरशाही तकनीकी तौर पर अन्य सभी प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्थाओं से उच्चतर होती है। जो लोग एक बार नौकरशाही से शासित होते हैं, उनके सामने दूसरी कोई व्यवस्था अर्थहीन हो जाती है। इसलिए, नौकरशाही एक स्थायी और अपरिहार्य संस्था बन जाती है।

7.8 वेबरवादी मॉडल के मुख्य तत्व

नौकरशाही के वेबरवादी मॉडल के मुख्य तत्व हैं- निर्वैव्यत्तित्व व्यवस्था(Impersonal order), निमय(Rules), दक्षता या योग्यता का क्षेत्र(Sphere of competence), पदसोपनीयता(Hierarchy), निजी और लोक ध्येय (Personal and Public ends), लिखित दस्तावेज(Writeen documents), तथा एकल अथवा एकतंत्रीय व्यवस्था(Monocratic Entity), लगभग इन सभी तत्वों का आदर्श प्रकार की नौकरशाही की विशेषताओं में समावेश है। संक्षेप में इनको इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है-

1. **निर्वैव्याक्तिक व्यवस्था(Impersonal order)-** यह तत्व वेबर की सोच और उसके द्वारा प्रस्तुत मॉडल का सर्वाधिक प्रभावशाली भाग है। यह नौकरशाही की क्रियाशीलता को प्रोत्साहित करने वाला है। यही वह तत्व है जो आदेश और अनुपालन का आधार है, 'निर्वैव्यक्तिकता' सत्ता के प्रयोग को प्रभाकारी बनाती है, सत्ता का निवास स्थान पद में होता है न कि व्यक्ति में। उसकी भूमिका का आधार, उसकी पहचान, उसकी शक्ति और उसके अधिकार यही सत्ता है जो पद में निहित है।
2. **नियम(Rules)-** वेबरवादी विधिक-तार्किक सत्ता की विशेषता यह है कि उसके द्वारा संचालित संगठन और सरकारी प्रकार्य नियमों से बंधे हुये हैं। एक कार्यालय के व्यवहार का संचालन तकनीकी नियमों अथवा अधिनियमों के द्वारा होता है। इन नियमों के तार्किक क्रियान्वयन के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। अन्ततः नियमों का पालन एक साधन के अतिरिक्त स्वंय में साध्य बन जाता है। मर्टन के अनुसार ''प्रशासकीय व्यवस्था में एक ऐसा समय आता है, जब खेल से अधिक महत्वपूर्ण नियम बन जाते है। नतीजा यह निकलता है कि नियम देरी का कारण बन जाते हैं। प्रशासनिक दुशवारिया पैदा होती है और इसी स्थिति को लालफीताशाही कहा जाने लगता है।''
3. **दक्षता का क्षेत्र(Sphere of competence)-** इसका अर्थ है, कौशल और दक्षता। जिसके अनुसार उन जिम्मेदारियों को पूरी निष्ठा के साथ निभाना जो अधिकारी को श्रम-विभिाजन के आधार पर सौंपी गयी हैं। दूसरे, योग्यता के अनुसार कर्मी को सत्ता के प्रयोग का अधिकार देना। तीसरे, परिभाषित दबाव के ऐसे साधन जो निश्चित परिस्थितियों में प्रयोग में लाये जायें।
4. **पदसोपनीयता(Hierarchy)-** पहले भी बताया जा चुका है कि पदों की संरचना पदसोपनीयता के सिद्धान्तों के अनुसार होती है। अर्थात संगठन की संरचना ऐसी होती है कि निम्न पद किसी उच्च पद के नियन्त्रण में होता है। यह सिलसिला ऊपर से नीचे की ओर तल तक चलता है।

5. **निजी और लोकहित(Personal and Public ends)-** इसका अर्थ है, प्रशासनिक अधिकारियों का साधनों के स्वामित्व से पृथकीकरण। वेबर सरकारी हैसियत का अनुचित प्रयोग करने वाले अधिकारियों पर नजर रखने की बात करता है।
6. **लिखित दस्तावेज(Writeen documents)-** इस सम्बन्ध में पहले बताया जा चुका है। यहाँ यह बताना है कि प्रशासकीय व्यवस्था में लिखित दस्तावेज लिए गये निर्णयों, बनाई गयी नीतियों, मीटिंगों में होने वली बहसों तथा क्रियान्वित प्रकार्यों की सनद(दस्तावेज) होते हैं, इनका कानूनी महत्व होता है। यह प्रशासनिक उत्तरदायित्व को दर्शाते हैं और भावी राजनीति के लिए दिशा निर्देश मोहय्या कराते हैं।
7. **एकल व्यवस्था(Monocratic Entity)-** यद्यपि नौकरशाही किसी भी प्रकार के शासनतंत्र के लिए अपरिहार्य है, लेकिन इसका स्वरूप और चरित्र जनतंत्रीय नहीं है। वह एकलवादी है अथवा एकतंत्रीय जो लोकतंत्र के लिए एक खतरा बन सकती है।

वेबेरियन मॉडल का सबसे अधिक प्रशंसनीय भाग है, तकनीकी तौर पर अर्हता प्राप्त व्यक्तियों का चयन। ऐसे चयनित अधिकारियों को एक निश्चित वेतन प्रदान किया जाता है तथा उनको नियमानुसार निश्चित आयु तक सेवा का मौका दिया जाता है। प्रोन्नति का अवसर मिलता है तथा उनको अनुशासित तथा नियंत्रित करने की व्यवस्था की जाती है।

7.9 फ्रेड रिग्स पर वेबर का प्रभाव

फ्रेड रिग्स ने नौकरशाही पर बहुत कुछ लिखा है, लेकिन खास बात यह है कि वह नौकरशाही की अपनी व्याख्या में मैक्स वेबर से बहुत अधिक प्रभावित नजर आता है। उसने वेबर के अनेक विचारों को अपने सिद्धान्तों में जगह दी है। उदाहरण के लिए रिग्स ने वैधता, सन्तुलन तथा क्षमता की अवधारणा वेबर से ली है। वह इन को नौकरशाही के उद्देश्य मानता है। संक्षेप में-

1. **वैधता(Legitimacy)-** जिसका अर्थ है- सरकार को अपने शासन करने, प्रशासन करने, निर्णय लेने तथा कार्यों को निष्पादित करने के लिए जनता से स्वीकृति या मान्यता मिले। यह मान्यता ही सरकार को वैध बनाती है तथा उसके काम काज को तार्किक बनाती है।
2. **स्थिरता या सन्तुलन(Stability or balance)-** इसका अर्थ है, सत्यनिष्ठा या आत्मनियंत्रण को बनाये रखने के लिए सरकार पर समताकारक शक्तियों का अंकुश होना ताकि स्थिरता बनी रहे।
3. **क्षमता(Capacity)-** सरकार का काम लक्ष्यों की पूर्ति के लिये निर्णय लेने और उनको लागू करना है। यह तभी संभव है, जब सरकार में क्षमता होगी। इन निर्णयों से वांछित परिवर्तन लाया जा सकता है।

संक्षेप में इन तीनों उद्देश्यों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में नौकरशाही से ही होता है। रिग्स ने लोक प्रशासन के परिस्थितिकीय अध्ययन की आवश्यकता पर बल दिया है। उसका कहना है कि अनुभव आधारित, विधि सम्मत तथा परिस्थितिकीय अध्ययन ही वास्तव में लोक प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन है। उसकी नजर में प्रशासनिक प्रक्रिया एक ऐसी प्रणाली है जो अपने वातावरण से घिरी होती है, जिसकी इस वातावरण से क्रिया-प्रतिक्रिया चलती है और जिसका अध्ययन करना जरूरी है।

यहाँ यह समझना चाहिए कि विधि-सम्मत सत्ता और इस पर आधारित नौकरशाही वेबर के विश्लेषण का केन्द्र बिन्दु है, जबकि रिग्स समपार्श्वीय(Prismatic) समाज तथा इसकी प्रशासनिक उप-प्रणाली पर विचार-विमर्श करता है। इन दोनों सिद्धान्तों में गहरा अन्तर है जो इस प्रकार है-

- वेबर पदों की संरचना को पदसोपनीय मानता है, लेकिन रिग्स अपनी प्रशासनिक उप-प्रणाली में विषम जातीयता देखता है।

- वेबर प्रत्येक पद की क्षमता को दर्शाता है, जबकि रिग्स प्रशासनिक उप-प्रणाली को अतिव्यापन मानता है।
- वेबर योग्यता के आधार पर अधिकारियों का चुनाव करता है, लेकिन रिग्स के अनुसार भर्ती का आधार पहुँच, प्रभाव और भाई-भतीजावाद होता है।
- वेबर की नजर में नौकरशाही में नियमानुसार प्रशासन होता है, लेकिन रिग्स मानता है, नियम मात्र एक ढकोसला होते हैं। वास्तव में प्रशासन अधिकारी की मानसिकता और सोच पर चलता है।
- वेबर के अनुसार सार्वभौमिकता तथा निर्वैयक्तिकता प्रशासन का आधार है। अधिकारी सत्ता पद से पहचाना जाता है। लेकिन रिग्स मानता है कि व्यवहार में व्यक्तिगत मानक ही कार्य संचालन करते हैं।

7.10 वेबरवादी नौकरशाही मॉडल की आलोचना

यह तो बिल्कुल सच है कि नौकरशाही के सिद्धान्तकार के रूप में मैक्स वेबर अद्वितीय है। उसे एक एकाधिकारिक विद्वान माना जाता है। उसकी सोच या नजरिया लोक प्रशासन के विद्यार्थियों के लिए एक दिशा प्रदान करता है। उसने अपना आदर्श नौकरशाही प्रतिमान प्रस्तुत करके नौकरशाही के सन्दर्भ में प्रशासन की तर्कपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की है। लेकिन उसके मॉडल में अनेक मूलभूत कमियां भी हैं, जिनकी वजह से समाजशास्त्रियों तथा लोक प्रशासन के अनेक विद्वानों ने उसके विश्लेषण की आलोचना की है। आलोचकों के मतानुसार वेबर ने नौकरशाही पर अपनी सैद्धानितक अवधारणा के माध्यम से अनेक सामान्य निष्कर्ष निकाले हैं, लेकिन अनुभावात्मक तथ्यों के आधार पर वह इनका औचित्य सिद्ध करने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाता है। सिद्धान्त या मॉडल की प्रासंगिकता के बारे में वह उदासीन है। वेबर के मॉडल की तीन आधारों पर अधिक आलोचना हुई है, पहला- उसके मॉडल की तार्किकता, दूसरा- विभिन्न स्थानों और परिवर्तित परिस्थितियों में प्रशासनिक जरूरतों के अनुसार मॉउल की उपयुक्ता, तथा तीसरा- क्या यह मॉडल उस क्षमता को पा सकता है, जिसकी कल्पना वेबर ने की है। वेबर के मॉडल का एक बड़ा आलोचक 'मर्टन' है। उसके अनुसार वेबर का रचनात्मक नजरिया प्रशासनिक संगठन में पदसोपनीयता पर जोर देता है। लेकिन यह अनिवार्य नहीं है कि ऐसी संरचना से किसी संगठन के लक्ष्यों की पूर्ति हो। हो सकता है नतीजे विपरीत निकलें। यह भी संभव है कि पदसोपनीयता अक्षमता को जन्म दे, जो मर्टन की नजर में नौकरशाही की विशेषता है। वेबर के मॉडल तथा नौकरशाही पर उसके विचारों की आलोचना सेल्जनिक, टेलकॉट पारसंस, ऐलविन गाउल्डनर, बेन्डिक्स, पीटर ब्लाउ तथा राबर्ट प्रेसथस ने की है। उदाहरण के लिए -

1. फिलिप सेल्जनिक ने वेबर के पदसोपानीय सोपान की आलोचना करते हुए लिखा कि संगठन में प्रकार्यों को उप-विभागों में विभाजित करने से उप-विभाग वृहत उद्देश्य की अपेक्षा अपना निजी उद्देश्य साधने का प्रयास करेंगे। मर्टन और सेल्जनिक इस तर्क पर सहमत हैं कि संगठनात्मक संरचना का विशिष्टीकरण अधिकारियों के निजी स्वाभाविक व्यवहार (एक मानव के रूप में) तथा अपेक्षित प्रशासनिक व्यवहार (एक प्रशासकीय संहिता के अनुसार) में टकराव पैदा करेगा अर्थात इन आलोचकों के अनुसार वेबर ने पदसोपनियता सिद्धान्त की रचना में व्यवहारवादी दृष्टिकेण नहीं अपनाया है।
2. टेलकाट पारसंस, वेबर के नौकरशाही प्रतिमान में एकरूपता तथा तारतम्य का अभाव देखता है। संगठन में कुछ लोग तकनीकी तौर पर श्रेष्ठ होते हैं तथा उन्हें आदेश देने का अधिकार होता है। और कुछ लोग अपने पद तथा प्रशासनिक योग्यता में श्रेष्ठ होते हैं। वह भी आदेश देने का अधिकार रखते है। ऐसी स्थिति में अधीनस्थ किसके आदेश का पालन करे, यह सवाल टकराव पैदा करता है।
3. ऐलविन गाउल्डनर ने नियमों के अनुपालन की दृष्टि से वेबर की नौकरशाही पर सवाल उठाये हैं। उसके अनुसार यथार्थ यह है कि कुछ अधिकारी नियमों को अपने ऊपर थोपा हुआ महसूस करते हैं और कुछ

नियमों को जरूरी तथा अपने हित में देखते हैं। इस तरह प्रशासनिक व्यवस्था नियमों के पालन और अनुपालन अथवा औपचारिकता तथा अनौपचारिक के विवाद में उलझ जाती है, जिसका समाधान वेबर के पास नहीं है।

4. रूडोल्फ का तर्क है कि संगठन पर पर्यावरण का गहरा प्रभाव पड़ता है, जिसकी अनदेखी वेबर ने की है। उसके अनुसार वेबर प्रशासन को एक तार्किक मशीन और अधिकारियों को तकनीकी कार्यकर्ता मानता है, जो अनुचित है।
5. बैन्डिक्स के अनुसार अधिकारियों का आचरण, उनकी सोच और उनका अपना काम करने का तरीका उनके प्रशासनिक आचरण पर प्रभाव डालता है और वे उसी के अनुसार निर्णय लेते हैं। लेकिन वेबर के मॉडल में इन तथ्यों की अनदेखी की गयी है।
6. पीटर ब्लाउ के अनुसार वेबेरियन मॉडल से विभिन्न स्थानों और समयों में प्रशासन को एक सा लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि समय और स्थान की अपनी-अपनी मांगे होती हैं।
7. वेबर के विचार मात्र एक अनुमान या उपकल्पना हैं। उनका कोई वैज्ञानिक अनुभववादी आधार नहीं है। वह मानवीय मनःस्थिति और व्यवहार को प्रभावित करने वाले अनौपचारिक प्रभावों तथा स्वभावों की भूमिका पर ध्यान नहीं देता है।
8. उसके सिद्धान्त विश्लेषणात्मक खोज पर आधारित नहीं हैं। वह संगठन में होने वाली क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं से बेखबर लगता है।
9. बेबर 'आदर्श' प्रारूप की नौकरशाही की बात करता है, लेकिन सच यह है कि स्वंय 'नौकरशाही' या 'ब्योरियोक्रेसी' जैसी शब्दावली किसी आदर्श की अभिव्यक्ति नहीं करती हैं। नौकरशाही में कुछ भी आदर्श नहीं है।
10. कुल मिलाकर वेबर का नौकरशाही का मॉडल भ्रमांक तथा उलझा हुआ है और उसको क्रियान्वित करने के बाद भी प्रशासन का यथार्थ समझ में नहीं आ सकता। प्रशासन कोई यांत्रिकी नहीं है। यह मानव व्यवहार का समुच्चय है जो परिस्थितियों के अनुसार चलता है, बदलता है और निश्चित होता है।

7.11 मूल्यांकन

वेबर के नौकरशाही के आदर्श प्रारूप के मॉडल के सम्बन्ध में आलोचनाओं का अध्ययन करके कोई भी यह निष्कर्ष निकाल सकता है, कि उसका मॉडल या उसेक सिद्धान्त न तो वैज्ञानिक हैं, न तार्किक और न ही प्रासंगिक। लेकिन ऐसा निष्कर्ष एकतरफा होगा। सच तो यह है कि वेबर ही एक ऐसा चिन्तक है, जिसके प्रशासनिक सिद्धान्तों तथा उसके मॉडल से कोई भी भावी प्रशासनिक चिन्तक अप्रभावित नहीं रह सका। स्वयं टेलकाट पारसंस ने वेबर के प्रसिद्ध ग्रंथ ''Wirtschaft and Gesellschaft'' का अनुवाद किया। बेन्डिक्स ने मैक्स वेबर पर एक पुस्तक ''Max Weber : An Intellectual Portait'' लिखी। हेन्डरसन तथा पारसंस ने वेबर के जर्मन ग्रन्थ का ''The Theory of Social and Economic Organisation'' के नाम से अनुवाद किया एडवर्ड शिल्ज़ और हेनरी फिंच ने वेबर के ग्रन्थ का अंग्रेजी में अनुवाद ''The Methodology of the Social Sciences''किया। इस तरह ऐसा कोई प्रशासनिक चिन्तक नहीं है जिसने वेबर पर कुछ न कुछ काम न किया हो। संक्षेप में वेबर के विचारों का मूल्यांकन आचोलनाओं के निम्नलिखित परिप्रेक्ष में किया जा सकता है-

1. आलोचकों का कहना है कि आधुनिक प्रशासन के सन्दर्भ में वेबेरियन नौकरशाही अनुभवात्मक रूप से सत्यापित नहीं होती है। लेकिन सच यह है कि वेबर ने जो कुछ लिखा वह जर्मनी की परिस्थितियों के अनुसार लिखा। समाज का स्वरूप भावी दशकों में बदल गया जिसका अनुमान लगाना मुश्किल था। यदि

वह यह कहता है कि उसका आदर्श प्रतिमान श्रेष्ठ और स्थायी है तो वह इसीलिए कि उसने अपने मॉडल की तुलना संगठनों के पारम्परिक तथा करिश्माई स्वरूप से की जो उसके समय का यथार्थ था।

2. एक और सम्भावना है, उसने जो कुछ लिखा वह जर्मनी भाषा में है। हो सकता है कि तार्किकता(Rationality) तथा दक्षता(Efficiency) से उसका जो अभिप्राय हो वह अंग्रेजी भाषा में न हो। उसे कानूनी तार्किकता से बहुत लगाव था वह सोचता था कि जैसे जैसे सभ्यता का विकास होगा वह तार्किक होती जायेगी और इस तरह आने वाले समय में उसका नजरिया (आदर्श मॉडल) अधिक स्थायी और दक्षता से परिपूर्ण होता जायेगा। इसमें क्या संदेह है कि तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित अधिकारी अप्रशिक्षित कर्मियों से अधिक दक्ष होंगे। पहली शर्त वेबर द्वारा प्रस्तुत मॉडल की है, जबकि दूसरी पारम्परिक और करिशमाई नौकरशाही की है।
3. अब जहाँ तक इस आरोप का प्रश्न है कि वेबर ने औपचारिकतावाद पर बहुत बल दिया है तो यह औपचारिकता आज के प्रशासन का एक यथार्थ बन गयी है। कारण है प्रबन्धन तकनीकों का विकसित होना। ऐलब्रो के अनुसार निर्णय-निर्माण तथा क्रियाशील शोधों(Operational Research) और प्रबन्धन तकनीकों ने प्रशासन को अत्याधिक वैज्ञानिक बना दिया है, जिसकी वजह से प्रशासन का स्वरूप औपचारिक हो गया है। अब नौकरशाही से पीछा छुड़ाना मुश्किल है।
4. इसमें संदेह नहीं है कि वेबर का नौकरशाही मॉडल कोई दैवी उपहार नहीं है। उसमें कमियां होना स्वाभाविक है। उसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलू हैं। योग्यता के आधार पर चयन, तकनीकी अर्हताऐं, अधिकारियों के सत्ता दुरूपयोग पर अंकुश जैसी विशेषतायें सकारात्मक पहलू हैं, जबकि निर्वैव्यक्तिक व्यवस्था, नियमन, पदसोपानीयता, तकनीकी नियम तथा लिखित दस्तावेज नकारात्मक पहलू हैं। लेकिन नकारात्मक पहलू भी आधुनिक प्रशासन की एक अनिवार्यता हैं।
5. यह सही है कि मौजूदा नौकरशाहियों ने वेबर के मॉडल को बदनाम किया है, लेकिन कमी वेबेरियन के मॉडल में नहीं है, बल्कि उसके क्रियान्वयन में है। दूसरे नौकरशाहों के आचरण ने भी इस मॉडल को बदनाम किया है। नौकरशाही जितनी प्रशासन पर हावी होगी उतनी उसकी कुरूपता सामने आयेगी लेकिन यह सेचना कि नौकरशाही विहीन प्रशासन आदर्श होगा अनुचित है। ऐसा संभव नहीं है। प्रयास यह होना चाहिए कि विकास तथा कल्याणकारी कार्यों में नौकरशाही के प्रभावों को कम से कम किया जाये। यहाँ यह भी स्वीकार करना चाहिए कि नौकरशाही के भले ही नये मॉडल तैयार किये जायें लेकिन वे किसी भी रूप में वेबर के प्रभाव से बच नहीं सकते। वेबर नौकरशाही के शोधकर्ताओं तथा भावी प्रशासनिक विद्वानों के लिए प्रोत्साहन का स्रोत है।

अभ्यास प्रश्न-

1. मैक्स वेबर ने किस पुस्तक की रचना की?
2. वेबर का नौकरशाही का मॉडल किस बात पर जोर देता है?
3. वेबर नौकरशाही के आदर्श प्रारूप की कौन सी विशेषता है?
4. निर्वैव्यक्तिकता का क्या अर्थ है?
5. कौन सा बिन्दु वेबर के मॉडल की आलोचना में शामिल नहीं है?

7.12 सारांश

1. मैक्स वेबर का नौकरशाही के अध्ययन में महान योदान है। वह सामाजिक विज्ञानों का ज्ञाता था, इसलिए उसका नजरिया बहुत विस्तृत था। प्रत्येक समाजशास्त्रीय नजरिये से तथा ऐतिहासिक और तुलनात्मक

अध्ययन के आधार पर उसने तत्कालीन लोक प्रशासन का विश्लेषण किया तथा इस विश्लेषण के आधार पर उसने नौकरशाही के स्वभाव और स्वरूप को समझने का प्रयास किया। प्रशासन के अध्ययन पर वेबर का प्रभाव अद्वितीय है तथा नौकरशाही की चर्चा बिना वेबर के नहीं की जा सकती।

2. वेबर ने प्रशासन को सर्वप्रथम सत्ता से जोड़ा फिर सत्ता के सन्दर्भ में प्रशासन की व्याख्या की। लेकिन इस व्याख्या से पूर्व उसने सत्ता का भी अध्ययन किया तथा उसे पारम्परिक, करिश्माई तथा वैधानिक वर्गों में बांटा। उसकी नजर में सत्ता वही है, जिसमें वैधता(Legitimacy) हो। उसने एक आदर्श प्रकार की सत्ता की कल्पना की और उसी का विश्लेषण प्रस्तुत किया।
3. वेबर ने कानूनी सत्ता का विचार रखा और उसे तार्किक कहा अर्थात उसने कानूनी-तार्किक सत्ता का विचार रखा। उसके अनुसार नौकरशाही विधिक-तार्किक सत्ता का संस्थात्मक स्परूप है और आधुनिक सरकारों का यही आधार है।
4. वेबर ने विधिक-तार्किक नौकरशाही की विस्तार से अनेक प्रमुख विशेषतायें बताई। इन्हीं विशेषताओं के आधार पर उसने नौकरशाही का मॉडल तैयार किया। इस मॉडल को वेबेरियन मॉडल कहा जाता है।
5. वेबर के अनुसार विधिक-तार्किक सत्ता का सार उसकी वैधता में है और इस वैधता का आधार निर्वैव्यक्तिक व्यवस्था, नियम, दक्षता का वृत्त, पदसोपनीयता, लिखित दस्तावेज, तकनीकी तौर पर अर्ह प्राप्त अधिकारी तथा निजी और लोक ध्येय होते हैं।
6. वेबर नौकरशाही को आधुनिक प्रशासन का एक अभिन्न अंग मानता है जिस से पीछा छुड़ाना असंभव है।
7. मैक्स वेबर का रिग्स के प्रशासनिक विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ा है। वैधता, स्थिरता, सन्तुलन और क्षमता जैसे वेबेरियन लक्षणों से रिग्स प्रभावित नजर आता है। लेकिन वेबर तथा रिग्स के विचारों में अन्तर यह है कि जहाँ विधि-सम्मत सत्ता वेबर की नौकरशाही का सार है, वहाँ रिग्स ने नौकरशाही की व्याख्या में परिस्थितिकीय दृष्टिकोण अपनाया है। रिग्स नौकरशाही के स्थान पर समपार्श्वीय समाज तथा उसकी उप-प्रणाली पर जोर देता है।
8. वेबेरियन मॉडल की आलोचना भी हुई है। आलोचकों को संदेह है कि क्या वेबर का मॉडल वास्तव में तार्किक है या नहीं या मात्र एक भ्रम है, क्या यह मॉडल परिवर्तित परिस्थितियों तथा परिवर्तित स्थानों के लिए उपयुक्त है तथा क्या यह मॉडल अधिकतम निपुणता प्राप्त कर सकता है।
9. एक आरोप यह भी है कि वेबर ने अपने मॉडल में मानवीय व्यवहार को अनदेखा किया है। वह केवल मॉडल में संरचनात्मक पहलू पर जोर देता है।
10. वेबेरियन मॉडल का नकारात्मक पहलू भी है और सकारात्मक भी, लेकिन इसका कारण उसकी तत्कालीन जर्मनी की परिस्थितियां हैं।

7.13 शब्दावली

करिश्मा(Charishma), अरबी का शब्द है। हिन्दी में दैवी या चमत्कारी अर्थात वह शक्ति जिसके माध्यम से दूसरों को प्रभावित किया जा सकता है।

ब्योरियोक्रेसी(Bureaucracy), फ्रैंच शब्द है, जिसका हिन्दी में अनुवाद अधिकारीतंत्र है तथा इसकी प्रकृति के अनुसार नौकरशाही किया गया है। शाब्दिक अर्थ में डेस्क जहाँ फाइलें हों या फिर कार्यालय जहाँ प्रशासन होता है। ब्योरियोक्रेसी कहलाता है। क्योंकि प्रशासनिक अधिकारियों का स्वाभाव शाहों जैसा हो जाता है, हालाकि वे नौकर ही होते हैं, इसलिए अधिकारीतंत्र को नौकरशाही कहा जाता है।

हायरारकी(Hierarchy), हिन्दी में पदानुक्रम या श्रेणीबद्ध कहा जाता है। क्योंकि इसका रूप सीढ़ीनुमा होता है इसलिए पदसोपनीयता का प्रयोग किया गया। यह एक त्रिकोणीय व्यवस्था है जिसमें (संगठन में) अनेक स्तर निम्न से उच्चतर तक जाते हैं। निम्न स्तर उच्च स्तर के आदेशों का अनुपालन करते हैं।
रेशनल(Rational), का हिन्दी में तार्किक या बुद्धिसंगत है। वह बात जो बुद्धि ग्रहण कर सके, जो आस्था या कल्पना पर न टिकी हो अथवा वह बात जो वैज्ञानिक आधार पर सिद्ध हो सके।

7.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. The Theory of Social and Economic Organisation, **2.** विधिक-तार्किक नौकरशाही, **3.** पद सोपानीयता, **4.** सत्ता व्यक्ति में नहीं पद में होती है, **5.** लिखित दस्तावेज

7.15 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Marcus Weeks : Politics in Minutes, London.
2. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन, जयपुर।
3. Administrative Thinkers (Ed) D. Ravindra Prasad.
4. S.P. Verma : Modern Political Theory V.S. Prasad etc.
5. प्रशासनिक चिन्तक: प्रसाद, प्रसाद, सत्यनारायण।

7.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी एण्ड अवस्थी: लोक प्रशासन के सिद्धान्त, आगरा।
2. Max Weber : The Theory of Social and Economic Organization, New York.
3. Max Webr : The Methodology of the Social Sciences, New York.

7.17 निबंधात्मक प्रश्न

1. मैक्स वेबर के आदर्श प्रारूप नौकरशाही के मॉडल की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. वेबर के आदर्श मॉडल के मुख्य तत्व क्या हैं?
3. वेबर तथा रिग्स के प्रशासनिक सिद्धान्तों के सन्दर्भ में क्या अन्तर है? तथा वेबेरियन मॉडल की किस आधार पर आलोचना हुई है?

इकाई- 8 मैक्स वेबर का सत्ता प्रतिमान और तृतीय विश्व की प्रशासनिक व्यवस्था

इकाई की संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 मैक्स वैबर: एक सिद्धान्तकार
8.3 सत्ता का अर्थ
8.4 वेबर की सत्ता की अवधारणा
    8.4.1 प्रभुत्व, संगठन और शासित
8.5 मैक्स वेबर तथा सत्ता के प्रकार
    8.5.1 परम्परागत सत्ता
    8.5.2 करिश्माई सत्ता
    8.5.3 कानूनी सत्ता
8.6 तृतीय विश्व की प्रशासनिक व्यवस्था और वेबर का सत्ता प्रतिमान
8.7 तृतीय विश्व में वेबेरियन मॉडल की उपयोगिता
8.8 भारतीय शासन व्यवस्था पर वेबर के मॉडल का प्रभाव
8.9 तृतीय विश्व में वेबेरियन मॉडल की सीमाऐं
8.10 समालोचना
8.11 सारांश
8.12 शब्दावली
8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.14 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
8.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.16 निबंधात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

इस इकाई में मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत सत्ता की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। मैक्स वेबर एक जर्मन समाजशास्त्री था, जिसने लोक प्रशासन को तुलनात्मक प्रशासन का दर्जा दिया। वास्वत में वेबर का उद्देश्य नौकरशाही का एक मॉडल तैयार करना था। इसके लिए वह कोई अवधारणात्मक संरचना की पहचान करना चाहता था, जो इसे सत्ता के रूप में मिल गई। उसने तत्कालीन जर्मनी की परिस्थितियों तथा उसके अतीत से प्रभावित होकर सत्ता का वर्गीकरण और उसकी विशिष्ट विवेचना की और वह इस नतीजे पर पहुँचा कि तर्कसंगत-विधिक सत्ता ही वास्तविक सत्ता है, जिसमें स्थायित्व है। इस तर्कसंगत-विधिक सत्ता के आधार पर उसने नौकरशाही के आदर्श प्रारूप का एक मॉडल तैयार किया जिसको उसने श्रेष्ठ तथा स्थायी बताया क्योंकि वह विवेक पर आधारित है। वेबर का यह प्रतिमान विश्व की नौकरशाहियों के लिए आदर्श बन चुका है और आज न केवल विकसित देश बल्कि तृतीय विश्व के विकासशील देश भी इसको अपना चुके है।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- सत्ता के बारे में मैक्स के दृष्टिकोण को समझ सकेंगे।
- सत्ता के कितने वर्ग हैं, और उनकी प्रकृति क्या है यह जान सकेंगे।
- पारम्परिक सत्ता, करिश्माई सत्ता तथा तार्किक-विधिक सत्ता में अन्तर क्या है, समझ पायेंगे।
- सत्ता की अवधारणा प्रस्तुत करने में वेबर का लक्ष्य क्या था, यह जान पायेंगे।
- वेबर द्वारा रचित नौकरशाही के आदर्श प्रारूप मॉडल को जान सकेंगे।
- वेबर के आदर्श प्रतिमान को तृतीय विश्व के देशों ने किस उद्देश्य से अपनाया, यह समझ सकेंगे।
- वेबर सत्ता प्रतिमान में क्या कमियां हैं, इन से परिचित होंगे।

8.2 मैक्स वेबर: एक सिद्धान्तकार

मैक्स वेबर जर्मन समाजवादी थे। समाजवादी के अतिरिक्त वह एक राजनीतिशास्त्री तथा अर्थशासत्री भी थे। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में उनकी अहम भूमिका रही है। यदि यह कहा जाये कि संसार तुलनात्मक प्रशासन को केवल वेबर के कारण से जानता है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। संयुक्त राज्य अमेरिका में तुलनात्मक लोक प्रशासन को जो लोकप्रियता मिली है, उसका सब से बड़ा कारण वेबर की कृतियों का अंग्रेजी में अनुवाद है। रोमन श्वनुर, मैक्स वेबर को ही संयुक्त राज्य में तुलनात्मक लोक प्रशासन की ओर बढ़ते रूझहान का कारण मानता है। अब तक अधिकारीतंत्र या नौकरशाही के जितने सिद्धान्तकार हुए हैं, उन पर वेबर की कृतियों का ही प्रभाव पड़ा है। वेबर वास्तव में एक ऐसा मौलिक सिद्धान्तकार है, जिसके प्रभाव से अन्य जर्मन समाजशास्त्री जैसे- हेन्स गर्थ और राइनहार्ड बैंडिक्स भी अछूते नहीं रह सके। निमरोद राफली ने वेबर के नौकरशाही के आदर्श-रूप प्रतिमान को लोकप्रशासन के साहित्य में एक प्रभावक प्रतिमान माना है। वेबेरियन मॉडल को लोक प्रशासन में एक क्रान्ति माना जाता है। यहाँ एक बात यह याद रखना चाहिए कि वेबर के आदर्श-रूप मॉडल को प्राधिकार या सत्ता के सिद्धान्त से प्रथक करके देखा नहीं जा सकता। इसलिए यदि किसी को वेबर के आदर्श-रूप मॉडल का विश्वलेषण करना है तो वास्तविकता तक पहुँचने के लिए उसे वेबर द्वारा प्रस्तुत सत्ता की अवधारणा को भी समझना चाहिए।

वेबर का स्वाभाव यह था कि उसने अपने आरम्भिक जीवन से ही व्यवस्थित तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन में दिलचस्पी दिखाना शुरू की थी। यही कारण है कि उसने जो कुछ लिखा, वह उसकी पैनी नजर तथा यथार्थ सम्बधी अनुभावात्मक अध्ययन का परिणाम था। वह अपने विश्लेषण में उन निर्धारक तत्वों को खोजता है जो उसके सिद्धान्त का आधार बन सकते हैं। ऐसा ही एक निर्धारक तत्व है 'सत्ता' जिसकी विवेचना अगले पन्नों में की जायेगी। सत्ता के अपने नजरिये को वेबर ने अपनी पुस्तक ''The Theory of Social and Economic Organisation'' में प्रस्तुत किया है।

8.3 सत्ता का अर्थ

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त की मौलिक परिकल्पना यह है कि 'राजनीति' को शक्ति के सन्दर्भ में परिभाषित किया जा सकता है, अनेक विचारकों ने ऐसा किया भी है। कैटलिन तथा लासवैल दो ऐसे व्यवहार परकतावादी विचारक हैं, जिन्होंने शक्ति सन्दर्भ में राजनीति विज्ञान की सीमाओं का वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त एच0जो0 मारगेन्थाऊ ने अपनी पुस्तक ''Politics Among Nations'' में तथा पी0एच0 ओदेगार्व के ग्रंथ ''American Politics'' तथा वी0 ओ0 की(V.O. Key) की पुस्तक ''Politics, Parties and Pressure Groups'' में शक्ति माध्यम को अपनाकर राजनीति विज्ञान की प्रकृति तथा क्षेत्र में आश्चर्यजनक विकास तथा विस्तार किया

गया है। कैटलिन तो ''शक्ति के लिए संघर्ष''(Struggle for Power) को ही राजनीति कहता है। जहाँ तक शक्ति की परिभाषा का सवाल है, साधारण परिकल्पना यह है ''एक व्यक्ति या समूह की दूसरों के व्यवहार को अपनी इच्छा के अनुसार प्रभावित करने की योग्यता शक्ति है।'' दूसरे शब्दों में ''ऐच्छिक परिणामों को उत्पन्न करने की क्षमता का नाम शक्ति है।''

यहाँ शक्ति की अवधारणा को इसलिए स्पष्ट किया गया है, ताकि 'सत्ता' का अर्थ और उसका उद्देश्य अच्छी तरह समझ में आ जाये। राजनीति विज्ञान के अध्ययन में आजकल तीन शब्द प्रचलित है 'शक्ति', 'प्रभाव' तथा 'सत्ता'। यह तीनों शब्द कहीं न कहीं भ्रम पैदा करते हैं। कारण यह है कि यह तीनों शब्द एक साथ जुड़े हुए हैं। अनेक विचारक, शक्ति को प्रभाव(influence) कहते हैं, अथार्त जिसमें प्रभावित करने की क्षमता हो वह शक्तिशाली है, या जो शक्तिशाली है वह प्रभावित कर सकता है। इसी तरह जिसके पास शक्ति है, वह सत्ताधारी हो सकता है और जो सत्ताधारी है वह प्रभावित कर सकता है। फिर भी शक्ति, प्रभाव और सत्ता में अन्तर है। इस अन्तर को समझना जरूरी है। ''सत्ता'' तथा शक्ति में अन्तर इस तरह है कि ''सत्ता''(influence) वैध (कानूनी) तथा औपचारिक रूप से स्वीकृत शक्ति है। लेकिन शक्ति एक प्रकार का प्रभाव है, जिसमें उत्पीड़न हो सकता है या धमकी हो सकती है, या मनाना (समझाना-बुझाना) (Persuasion) हो सकता है, लेकिन यहाँ सत्ता नहीं होती। ई0वी0 वाल्टर के शब्दों में ''सत्ता में शक्ति भी होती है और प्रभाव भी।'' मैरियम ने अपनी पुस्तक ''Political Power'' में शक्ति और सत्ता के अन्तर को स्वीकार नहीं किया है। लेकिन डैविड ईस्टन, मैरियम से सहमत नहीं है। उसका मत है कि शक्ति उत्पीड़न का साधन है और उसका भौतिक प्रभाव पड़ता है, लेकिन सत्ता सम्मति पर आधारित होती है और शक्ति से अधिक प्रभावशाली होती है। यहाँ लासवैल तथा मैरियम का अपना दृष्टिकोण है। उनके अनुसार यह कहना गलत है कि शक्ति का प्रयोग सदा या साधारणतया हिंसा पर निर्भर होता है। यहाँ निष्कर्ष यह है कि सत्ता वैद्य तथा औपचारिक रूप से स्वीकृत शक्ति है, सत्ता में शक्ति, प्रभाव तथा सम्मति तीनों होती हैं, शक्ति से सत्ता प्राप्त होती है, तथा सत्ता, शक्ति की प्रकृति को निर्धारित करती है।

8.4 वेबर की सत्ता की अवधारणाऐं

वेबर बहुत यथार्थवादी विचारक है। उसके सिद्धान्तों का आधार उसका अनुभावात्मक दृष्टिकोण है। वह ऐसे देश में (जर्मनी) पला-बढ़ा, जहाँ शक्ति व्यवहारिक तथा दार्शनिक रूप में एक विषय रही थी। उसने देखा की प्रत्येक संगठित समूह एवं प्रशासनिक संस्था में सत्ता के तत्व विद्यमान रहते हैं। जिनके पास उत्तरदायित्व होता है, उनके पास सत्ता भी होती है। सत्ता अथवा प्राधिकार की दृष्टि से समूह की रचना होती है। वेबर ने सत्ता को जिस रूप में स्वीकार किया उस का सार उसी के शब्दों में इस प्रकार है, ''सत्ता की परिभाषा में यह सम्भावना छिपी हुई है कि एक विशिष्ट विषय-युक्त आदेश का व्यक्तियों के एक विशिष्ट समूह द्वारा पालन किया जायेगा।'' वेबर भी सत्ता और शक्ति में अन्तर को स्वीकार करता है। उसने शक्ति की परिभाषा देते हुए लिखा, ''वह सम्भावना, जिसमें एक पात्र सामाजिक सम्बन्धों के अन्तर्गत ऐसी स्थिति में हो कि विरोध तथा प्रतिरोध के बावजूद वह अपनी इच्छा को क्रियान्वित कर सके।'' अतः 'शक्ति' अधिक व्यापक अर्थ लिए हुए है और परिस्थितियों के उन सभी संयोजनों पर लागू होती है जिन में व्यक्ति अपनी इच्छा को एक सामाजिक स्थिति में लागू या क्रियान्वित कर सकता है, जबकि सत्ता के प्रयोग में यह आवश्यक नहीं है। सत्ता के प्रयोग की जो शर्त है वह यह है कि व्यक्ति (सत्ताधारी) किसी अधीनस्थ समूह को आदेश दे और उस समूह के सदस्य उस आदेश को तार्किक और औचित्यपूर्ण समझ कर उसका पालन करें। सत्ता संस्थानविकृत होती है। यह संगठित समूह से सम्बद्ध होती है। यहाँ आदेश का पालन कानून के डर से भी होता है और स्वाभाविक रूप से भी लोक प्रशासन के क्षेत्र में वेबर ने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, उनका सम्बन्ध प्रभुत्व, नेतृत्व और वैधता के सिद्धान्तों से है। उसने सत्ता, प्रभुत्व और नियंत्रण में भी भेद किया है। उसके अनुसार किसी व्यक्ति के सशक्त होने का दावा यह हो सकता है कि वह तमाम विरोधों के बावजूद

समाज पर अपनी मर्जी थोपने में सफल हो सके। यही शक्ति उसको सत्ता दिलवाती है। संभवतया इतिहास में इसी 'शक्ति' ने राज्य को जन्म दिया है तथा सत्ताधारी पैदा किये हैं, जिन्होंने राज्य पर नियंत्रण करके अपनी इच्छाओं को न केवल साकार किया बल्कि उनको वैधता भी दिलवायी। समूह की संरचना का आधार यही शक्ति है। यह वास्तविकता तब उभर कर सामने आती है जब ''एक निश्चित सशक्त समूह विशेष अधिकारियों के माध्यम से अपने आदेशों का पालन करवाने में सफल होता है।'' बैनडिक्स के अनुसार, ''वेबर ने 'सत्ता' को अलग तकनीकी शब्द के रूप में प्रयोग नहीं किया, बल्कि ऐसा लगता है कि उसने इसे नियंत्रण का एक पर्यायवाची समझा।'' वेबर आधिपत्य को वास्तव में अधिनायकवादी सत्ता का आदेश मानता है। इस तरह वेबर आधिपत्य या नियंत्रण को ही सत्ता मानता है। इस आधिपत्य के वह पांच तत्व स्वीकार करता है-

1. एक व्यक्ति या व्यक्तियों का वह समूह, जो शासन करता है;
2. ऐसा व्यक्तियों का समूह, जो शासित होता है;
3. शासितों के आचरण को इच्छा अनुसार परिवर्तित करने वाला शासकों का आदेश या उस आदेश की अभिव्यक्ति;
4. शासकों के प्रभाव का सबूत उनके द्वारा जारी किये गये आदेश की दृष्टिगत इकाई के संदर्भ में; तथा
5. शासित आदेशकर्ता के आदेशों का पालन करते हैं तथा किस हद तक करते हैं, इस प्रभाव का प्रत्यक्ष या परोक्ष साक्ष्य। यहाँ यह ध्यान रखना है कि नियंत्रण या प्रभुत्व के बने रहने का नाम वैधता है। इस तरह वैधता सत्ता के अस्तित्व के लिए एक अनिवार्य शर्त है। वैधता का स्रोत शासित होते हैं। सत्ता के प्रयोग का अर्थ है शासन करना और शासन तभी अर्थपूर्ण है जब उसको शासितों की ओर से स्वीकृति मिली हो। यह स्वीकृति ही वैधता (Legitimaey) है।

8.4.1 प्रभुत्व, संगठन और शासित (Authority, Organization and Ruled)

अपने सिद्धान्तों के प्रस्तुतिकरण में वेबर ने दो उपागमों(Methods) का प्रयोग किया है। पहला, अनुभवात्मक (Empirica) का तथा दूसरा तुलनात्मक(Comparative) का। नियंत्रण के विभिन्न संगठनों में इन उपागमों के माध्यम से उसने विवेचना की है। उसके बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि प्रत्येक प्रकार के प्रशासन में प्रभुत्व के तत्व विद्यमान होते हैं। प्रशासन तथा सत्ता लगभग पर्यायवाची शब्द बन गये हैं। वेबर के अनुसार सत्तायुक्त संगठन में शासितों की अर्थपूर्ण भागीदारी होती है। इस भागीदारी के आधार पर उसने भागीदारों को चार वर्गों में विभाजित किया है-

1. वे लोग जो आदेशों का पालन करने के आदि होते हैं। ऐसे लोगों के लिए आदेशों का पालन करने के लिए उत्पीड़न या मनाने के उपकरणों का प्रयोग नहीं होता। वे अपने स्वभाव से आदेशों का पालन करने के आदी होते हैं। ऐसी स्थिति में दण्डात्मक कार्यवाही या वंचित करने की धमकी का सवाल ही नहीं पैदा होता है।
2. वे लोग जो व्यक्तिगत रूप से तत्कालीन प्रभुत्व के बने रहने में दिलचस्पी रखते हैं, क्योंकि इससे उनको फायदा पहुँचता है। यहाँ वह केवल अपने हित को देखते है और हित की सुरक्षा के लिए वे वर्तमान व्यवस्था को बनाए रखना चाहते हैं।
3. ऐसे लोग जो प्रभुत्व में भागीदार होते हैं, इस अर्थ में कि प्रकार्यों का निष्पादन उनके माध्यम से होता है, तथा
4. वे लोग जो स्वयं को संगठन के प्रकार्यों को निष्पादित करने के लिए तैयार रहते हैं।

शासितों के इस वर्गीकरण से प्रभुत्व को समझने में आसानी होती है। शासकों और शासितों के मध्य रिश्तों का पता चलता है और यह समझ में आता है कि सत्ता क्यों बनी रहती है और कब बिखर जाती है? इस वर्गीकरण से यह

भी पता लगता है कि वेबर ने प्रशासन को प्रभुत्व या सत्ता-प्रयोग के रूप में परिभाषित किया है, जबकि दूसरे चिन्तकों ने प्रशासन को सेवा या दायित्व अदा करने के सन्दर्भ में लिया है। लेकिन वेबर का दृष्टिकोण यथार्थवादी है, जबकि दूसरे चिन्तकों का आदर्शवादी या काल्पनिक है।

8.5 मैक्स वेबर तथा सत्ता के प्रकार

मैक्स वेबर ने सत्ता अथवा प्राधिकार के तीन प्रकार बताये हैं, जो इस प्रकार हैं, पहला- परम्परागत सत्ता, दूसरा- करिश्माई सत्ता और तीसरा- तार्किक-विधिक सत्ता। इन तीनों प्रकार की सत्ताओं की संक्षेप में चर्चा इस प्रकार की जा सकती है-

8.5.1 परम्परागत सत्ता (Traditional Authority)

परम्परागत सत्ता का सम्बन्ध उसके गहरे अतीत से है। संभवतयः तब से जब से संगठित समाज ने राज्य का रूप ग्रहण किया होगा। अतीत ही ऐसी सत्ता की वैधता को निश्चित करता है। यहाँ वैधता केवल एक विश्वास है। एक ऐसा विश्वास जो सदा बना रहता है। यहाँ सत्ताधारी 'मालिक'(Master) कहलाया जाता है। यह मालिक प्रभु भी कहलाए जाते हैं, क्योंकि यह पदवी उनको वंश से मिली होती है। अर्थात अपनी आनुवांशिक हैसियत के कारण वे व्यक्तिगत सत्ता का प्रयोग करते हैं तथा आनुवंशिक हैसियत और परम्परा स्वतंत्र व्यक्तिगत निर्णय लेने, उनका अनुपालन करवाने तथा करने वालों को दण्डित करने का उनको विशेषाधिकार होता है। उनको यह प्रभुत्व वंश विरासत की सामाजिक परम्परा के कारण हासिल होता है। इसमें उनका कोई व्यक्तिगत प्रयास नहीं होता है और न ही इसमें उनकी कोई व्यक्तिगत काबलियत होती है। समाज में उपस्थिति रिवाज उनकी सत्ता को वैधता प्रदान करते हैं और वे निश्चित होकर इस सत्ता के मजे लूटते हैं। वे व्यक्तिगत तौर पर निरकुंश हो जाते हैं, क्योंकि अंधविश्वास व्यक्तियों को प्रभु का भक्त होने का निर्देश देता है। व्यक्ति स्वाभाविक रूप से प्रभु की आज्ञा का पालन करते हैं। यहाँ पालनकर्ता ''अनुचर'' (Followers) कहलाये जाते हैं। परम्परा, अंधविश्वास, पवित्र श्रद्धा तथा भय की भावना परम्परागत सत्ता का आधार बन जाते हैं। विवेक अथवा तर्क यहाँ अर्थहीन हैं। यह सब कुछ एक सामन्ती समाज की विशेषता है जहाँ भक्ति, सेवा, अनुपालन और निष्ठा ही परम्परगत सत्ता के विधिक स्रोत हैं। परम्परागत सत्ता की सार्थकता को बनाये रखने के लिए दो उपकरण प्रयुक्त होते हैं-

पहला पैतृक शासन है, जिसमें निजी उपकरण होते हैं- गृह अधिकारी, सम्बन्धी या निजी कृपापात्र या स्वामी भक्त व्यक्ति एक सामन्ती समाज में इस उपकरण के अन्तर्गत व्यक्तिगत भक्त भिन्न होते हैं। इनमें जागीरदार या करदाता सरदार आते हैं। यह शासक व्यक्ति के अधीन होते हैं। इनको अनुचर अधिकारी कहा जाता है जो प्रभु व्यक्ति या सत्ताधारी के निरकुंश आदेशों अथवा परम्परागत आदेशों के अधीन होते हैं। वास्तव में इन अधीन व्यक्तियों की क्रियाऐं प्रभु शक्ति का दपर्ण होती है।

दूसरा सामन्ती समाज है (था)। यहाँ पदाधिकारी व्यक्तिगत रूप से निर्भर नहीं होते हैं। वे स्वामी भक्ति की शपथ लेते हैं, लेकिन अनुदान या संविदा के आधार पर उनका स्वतंत्र क्षेत्राधिकार होता है।

सारांश यह है कि पैतृक सत्ता हो या सामन्ती व्यवस्था, परम्पराऐं तथा निरंकुशता दोनों की विशेषता है। मालिक इच्छा, सनक और उसका मिजाज अनुचर के आचरण को प्रभावित करता है। अर्थात प्रत्येक स्थिति में वह अपने मालिक को खुश करने का प्रयास करता है, भले ही उसका अपना विवेक कुंठित हो जाये।

पारम्परिक सत्ता की अपनी एक विशेष प्रकृति है, जिसको जानना जरूरी है। इस प्रकृति से सम्बन्धित जो लक्षण सामने आते हैं, वे हैं- 1. व्यवस्था की पवित्रता(sanctity of system), जिसके आधार पर विवेकशीलता की माँग की जाती है; 2. सत्ता का स्वामित्व एक आनुवंशिक सरदार के हाथ में जिसके द्वारा की गई नियुक्तियाँ, लिए गए स्वतन्त्र निर्णय तथा दिए गये आदेश, तर्क संगत माने जाते हैं; 3. सत्ता का आधार कानून न होकर व्यक्तित्व होता है, जो नियमों या कानूनों के आधार पर नहीं परिस्थितियों के अनुसार निर्णय लेता है। यह निर्णय तर्कसंगत

माने जाते हैं; 4. प्रशासनिक कर्मियों का चयन, भर्ती, उनका क्षेत्राधिकार, योग्यता, सक्षमता और उनका प्रशिक्षण यह सब सरदार की सनक या खब्त(whims) के इर्द-गिर्द घूमते हैं। यह खब्तीपन ही तर्कसंगत माना जाता है; तथा 5. प्रशासनिक संरचना में पद्रानुक्रमता को कोई स्थान नहीं मिलता, सत्ता का कोई बटवारा नहीं होता है और न शक्ति या अधिकार हस्तान्त्रित होते हैं। साराँश यह है कि पारम्परिक सत्ता में सरदार ही तर्कसंगता का स्रोत है, उसके आदेश तर्कसंगत हैं और उसके मातहत उसकी सनक पर बने रहते हैं या पद मुक्त होते हैं।

8.5.2 करिश्माई सत्ता (Charismatic Authority)

'करिश्मा' वैसे तो एक धार्मिक शब्द है, जिसका प्रयोग यहूदी, ईसाई और इस्लाम के धार्मिक ग्रन्थों में बार-बार हुआ है, इसलिए इसको दैवी शक्ति भी कह सकते हैं। करिश्माई ऐसा व्यक्तित्व होता है जिसमें चमत्कार करने की शक्ति होती है। जिसको देखकर सुनकर या महसूस करके दूसरे व्यक्ति उस चमत्कारी व्यक्ति के प्रति आकृषित होते हैं तथा उसके आदेशों, संदेशों या सुझावों के अनुसार अपने व्यवहार को ढालते हैं। करिश्माई व्यक्ति को प्रभावित करने के अनेक उपकरण होते हैं-दैवी शक्ति, नेतृत्व की शक्ति, वाक् शक्ति (भाषण देने का कौशल) या प्रकृति प्रदत्त वरदान ये सब वे शक्तियां या प्रभाव हैं जिन का उपयोग करिश्माई व्यक्ति स्वतः करता है। लोग इस व्यक्ति से प्रभावित होते हैं और उसके अनुचर या भक्त बन जाते हैं। चमत्कारी व्यक्तियों में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो अपने करिश्में का सत्ता की प्राप्ति के लिए प्रयोग नहीं करते हैं। लेकिन अक्सर ऐसे लोग जिनमें करिश्माई शक्ति होती है और पूर्णतया सांसारिक होते हैं वे सत्ता की ओर बढ़ते हैं। उनमें नेतृत्व के गुण होते हैं, वे अच्छे वक्ता होते हैं, अनुचरों की दुखती रग को पकड़ने में माहिर होते हैं, भावानात्मक मुद्दे खड़े करते हैं और फिर उन्हें भुनाने की योग्यता रखते हैं। वे लोमड़ी की तरह चालाक और शेर की तरह निर्भीक होते हैं। ऐसे व्यक्ति करिश्माई कहलाये जाते हैं, जिनके पास सत्ता होती और वे आदेश देते हैं तो अनुचर अन्धे भक्तों की तरह उनके आदेश का पालन करते हैं।

भक्त पदाधिकारियों को एक संगठन के रूप में माना जा सकता है। उनकी क्रियाओं का क्षेत्र तथा आदेश की शक्ति, दैवी संदेश, अनुकरणीय आचरण उनके द्वारा लिये गये निर्णयों पर निर्भर करते है। पदाधिकारियों का चुनाव इनमें से किसी एक आधार पर हो सकता है। इनमें से कोई भी पदाधिकारी नियमों या परम्पराओं से बंधा हुआ नहीं होता है। लेकिन सत्ताधारी के निर्णय अधिकारी को बांधकर रखते हैं।

करिश्माई सत्ता को भी उसकी प्रकृति से ही पहचाना जा सकता है। इस सत्ता के पीछे भी तर्कसंगता तथा वैधता छिपी होती है, जो इसके अस्तित्व को बनाए रखती है। करिश्माई सत्ता की प्रकृति को जिन लक्षणों से पहचाना जा सकता है, वे हैं- 1. करिश्मा, नेतृत्व और सत्ता का आपस में गहरा सम्बन्ध होता है। जब नेतृत्व करिश्माई होता है तो सत्ता पर सरलता से कब्जा कर लेता है; 2. करिश्माई सत्ताधारी 'अतिमानव' और 'अतिभौतिक' होता है; 3. प्रशासनिक प्रशिक्षित कर्मचारी, कानून, नियम, चयन, भर्ती, प्रोन्नति, प्रशासनिक वैज्ञानिक संरचना, यह सब करिश्माई सत्ता के सामने तर्कहीन बातें हैं; 4. मानवीय सम्बन्ध का सार है, करिश्माई व्यक्ति और उसके अनुयायी या भक्त। प्रशासनिक स्टाफ है, लेकिन उसका चरित्र, उसके अधिकार या शक्तियाँ करिश्माई नेता तैय करता है। उसका अस्तित्व बना रहे इसलिए लाभ, पद या जागीर का प्रबन्ध किया जाता है; तथा 5. करिश्माई सत्ता के निरन्तर असफल होने का कारण उसकी करिश्मा विहीनता मानी जाती है। वह सत्ता से स्वतः बाहर हो जाता और उसका स्थान नया करिश्माधारी ले लेता है। साराँश में यह नया करिश्माधारी नेतृत्व प्रदान करता है, जो उसकी और उसके अनुयायी की नजर में वैध भी होता है और तर्कसंगत भी।

8.5.3 कानूनी सत्ता (Legal Authority)

मैक्स वेबर ने कानूनी सत्ता को तार्किक-विधिक(Rational Legal) सत्ता कहा है। यह वह सत्ता है जिसकी प्रकृति कानूनी है और जिसको विवेक के आधार पर समझा जा सकता है। कानूनी सत्ता निर्वैव्यक्तिक(impersonal) है जबकि पारम्परिक तथा करिश्माई सत्ताऐं व्यक्तिपरक(Person-oriented) हैं। साधारण शब्दों में जहाँ कहीं नियमों एवं निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार न्यायिक और प्रशासकीय कार्यवाही होती है तथा नियमों को न्यायसंगत ढंग से, संगठन के सभी सदस्यों पर समान रूप से लागू किया जाता है, वहाँ कानूनी सत्ता की अवधारणा मूर्त हो जाती है। यह सत्ता वैद्य भी होती है तथा तर्कसंगत भी। वैध इसलिए कि इसे कानूनी स्वीकृति मिली होती है तथा तर्कसंगत इसलिए क्योकि यह विवेक की कसौटी पर खरी उतरती हैं। यहाँ संगठन की संरचना में कानूनी पहलू को सदा ध्यान में रखा जाता है अर्थात, यहाँ आर्दश(Ideal) की अवधारणा विद्यमान होती है। 'आदर्श' सत्ताधारी है। जो इस 'आदर्श' की शक्ति (नीति-निर्णय) को कार्यान्वित करते हैं, वे श्रेष्ठ होते हैं। यह श्रेष्ठ अधिकारी कहलाये जाते हैं। इनका चयन विवेक, पसंद या सनक के आधार पर नहीं होता है। वे कानूनी परिधि के अन्तर्गत प्रविधि के अनुसार चयनित तथा नियुक्त किये जाते हैं। उनका पहला कर्त्तव्य यह है कि उस वैधानिक व्यवस्था को सुरक्षित रखें जिसकी वे उपज है। सारे अधिकारी कानूनी आदेशों के अधीन होते हैं तथा सब वैधानिक रूप से समान होते हैं। वे व्यक्ति विशेष का नहीं, विधि का पालन करते हैं। यहाँ प्रभुत्व वैधानिक है तथा उसकी सत्ता को कार्यान्वित करने वाले उपकरण भी वैधानिक है। अधिकारियों का एक कानूनी क्षेत्राधिकार होता है वह केवल उसी क्षेत्राधिकार में रहकर काम करते हैं। इस तरह संगठन बाध्य होता है, अर्थात नियमों से बंधा हुआ। कानूनी सत्ता के इस विवरण से जो तथ्य सामने आते हैं, वे इस तरह हैं-

1. सत्ता का स्वरूप कानूनी होता है। उसकी वैधता के लिए परम्पराओं की या विरासत की या फिर किसी करिश्माई शक्ति की आवश्यकता नहीं होती।
2. कानूनी सत्ता विवेक के अनुसार होती है। कानून तर्क-विर्तक के बाद बनते हैं। उनका स्त्रोत बुद्धि होती है। वे प्रासंगिक भी होते हैं तथा सामाजिक भी।
3. पदाधिकारियों के रूख को उसके अधिकारिक कार्यों से अलग रखा जाता है और यह उम्मीद की जाती है समस्त कार्यवाही वैध तथा लिखित होनी चाहिए।
4. यहाँ हस्तान्तरण का भी नियम लागू होता है। जो व्यक्ति पदों पर आसीन होते हैं, सत्ताधारी व्यक्ति की सत्ता इन पदासीन अधिकारियों को हस्तान्तरित(delegation) हो जाती है।
5. व्यक्ति की वैधानिक सत्ता के क्षेत्र और उसके निजी बाहरी क्षेत्र में बुनियादी अन्तर होता है। सत्ता की ऊँच या नीच वैधानिक आधार पर आंकी जाती है।

उपर्युक्त अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि मैक्स वेबर ने यद्यपि आदर्श प्रकार की नौकरशाही का प्रतिमान तो तैयार किया है, लेकिन उसने सत्ता का कोई प्रतिमान नहीं रचा है। हाँ, इतना जरूर है कि उसने सत्ता की एक मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक व्याख्या अवश्य की है। उसने सत्ता की प्रकृति उसके स्वरूप तथा उसकी भूमिका पर खुलकर लिखा है। आगे हम वेबर के सत्तावादी दृष्टिकोण को और अधिक स्पष्ट करने के प्रयास करेंगे। यहाँ हमने पारम्परिक सत्ता, करिश्माई सत्ता, वैध और तर्कसंगत सत्ता को और उससे सम्बन्धित अधिकारियों या कर्मचारियों को 'प्रकृति' के आधार पर समझाने का प्रयास किया है।

मैक्स वेबर तर्कसंगत विधिक सत्ता की प्रकृति की ओर भी ध्यान आकृषित किया है। तर्कसंगत सत्ता की विशिष्ट प्रकृति यह है कि यहाँ निर्वेयक्तिक(impersonal) के द्वारा गठित व्यवस्था या सत्ता के आदेश का पालन किया जाता है। सत्ता विधिपरक होती है। स्पष्ट अर्थ यह है कि आदेश का पालन कानून का पालन है, न कि व्यक्ति विशेष का। इसके अतिरिक्त तर्कसंगत सत्ता में जो अन्य बातें सत्ता की प्रकृति को स्पष्ट करती हैं, वे हैं- 1. कानूनी सत्ता

नौकरशाही की प्रशासनिक व्यवस्था को अपनाती है; 2. प्रशासनिक संरचना पदसोपानीय होती है और समस्याओं का निवारण नियमानुसार प्रशासकीय यांत्रिकरण(Administrative Machanism) के माध्यम से होता है; 3. सत्ता निश्चित सुस्पष्ट मानकों के अनुसार प्रशासनिक कार्य निष्पादित करती है। यह तभी सम्भव है जब अधिकारी प्रशिक्षित, तकनीकी दृष्टि से दक्ष, नियमों तथा कानूनों का अनुपालन करने वाले, निष्ठावान और कर्मठ हों। ऐसा होने पर तर्कसंगत सत्ता में नौकरशाही की सर्वोच्चता स्थापित होती है। यहाँ प्रत्येक स्तर पर परिभाषित पद परिभाषित अधिकार एवं क्षेत्राधिकार तथा वैज्ञानिक प्रशासनिक संरचना, नियमन, अनुपालन और अनुशासन केन्द्रीय बिन्दु बन जाते हैं; 4. उत्पादन साधनों का स्वामित्व निजी न होकर सार्वजनिक होता है। निजी सम्पत्ति, सार्वजनिक सम्पत्ति से अलग होती है; 5. प्रशासन लिखित दस्तावेजों पर आधारित होता है। यही वैधानिकता का तकाजा है; तथा 6. नौकरशाही अपनी शुद्ध प्रवृति के साथ उभर कर आती है। विशिष्ट ज्ञान, कठोर प्रशिक्षण, अपार अनुभव, तकनीकी महारत और सबसे बढ़कर नौकरशाही का एकतंत्रीय दम्भी स्वरूप।

8.6 तृतीय विश्व की प्रशासनिक व्यवस्था और वेबर का सत्ता प्रतिमान

मैक्स वेबर के द्वारा निर्मित जिस मॉडल या प्रतिमान की बात की जाती है, वह वास्तव में नौकरशाही के आदर्श प्रारूप का प्रतिमान है। सत्ता की उसकी अवधारणा ने इस प्रतिमान का आधार तैयार किया है। अन्तर केवल यह है कि जहाँ वेबर की सत्ता की अवधारणा में शासक और शासित तथा शासक और अधिकारी तीनों हैं, वहाँ उसके आदर्श प्रारूप में केवल अधिकारीतंत्र या नौकरशाही है। दूसरी एक बात यह है कि उसके द्वारा रचित नौकरशाही का आदर्श प्रारूप केवल तर्कसंगत-विधिक सत्ता से है न कि पारम्परिक या करिश्माई सत्ता से। तीसरे, बेवर ने सत्ता या नौकरशाही के बारे में जो विश्लेषण प्रस्तुत किया है, वह जर्मनी की परिस्थितियों के अनुसार है। लेकिन इसके बावजूद सत्ता सम्बन्धी या नौकरशाही सम्बन्धी उसका नजरिया अकाट्य है तथा विकसित तथा विकासशील सभी देशों के लिए एक नमूना है।

जहाँ तक तृतीय विश्व का सवाल है, पहले तृतीय विश्व को समझना होगा। तृतीय विश्व मात्र एक परिकल्पना है, जिसकी उत्पत्ति औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप पूँजीवाद, साम्राज्यवाद तथा दो विश्व युद्ध जैसे चरणों से गुजरकर हुई। दो विश्व युद्धों के बाद पूँजीवादी देश पूरी तरह से विकसित हो गये और साम्राज्यवाद के बिखरने के बाद अधीनस्थ या उपनिवेश राज्य पूरी तरह आजाद हो गये और उन्होंने एक स्वतंत्र सप्रभुता-सम्पन्न राष्ट्रों का दर्जा हासिल कर लिया। इन नवोदित राज्यों में अधिकांश विकास के रास्ते पर चल पड़े, लेकिन कुछ विकास की दृष्टि से अविकसित ही रहे। इस तरह जिन देशों ने विकसित राज्य का दर्जा पाया उनमें अधिकांश यूरोपीय देश, संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत संघ, जापान इत्यादि हैं, लेकिन जिन देशों ने विकास की ओर चलना आरम्भ किया उनको विकासशील राज्यों का दर्जा मिला चीन(लेकिन चीन अब विकसित राष्ट्र है), भारत, पाकिस्तान, इन्डोनेशिया, मलेशिया, कोरिया, अनेक मध्य ऐशिया तथा सेन्ट्रल ऐशिया के देश। जो देश विकास की रफतार नहीं पकड़ सके अफ्रीका, लैटिन अमरीका के अनेक देश वे अविकसित कहलाये। इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के कुछ सिद्धान्तकारों ने विकसित देशों को प्रथम विश्व तथा विकासशील देशों को तृतीय विश्व का नाम दिया। विडम्बना यह है कि दूसरा विश्व कौन सा है, यह कभी स्पष्ट नहीं हो सका। संक्षेप में हम जब तृतीय विश्व की बात करते है तो स्वतः नवोदित राष्ट्र सामने आते हैं।

अब जहाँ तक इस तृतीय विश्व में मैक्स वेबर के सत्ता प्रतिमान की उपयोगिता या प्रासंगिकता का प्रश्न है, यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि वेबर ने जिस मॉडल को तैयार किया, वह सत्ता के सिद्धान्तों पर अधारित उसके आदर्श प्रारूप नौकरशाही का प्रतिमान ही है।

जैसा कि बताया जा चुका है कि मैक्स वेबर ने आदर्श नौकरशाही प्रतिमान प्रस्तुत करके सत्ता, नौकरशाही तथा प्रशासन की तर्कपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की है। संस्थागत मानव व्यवहार में तर्कसंगतता लाने के लिए सर्वोत्तम साधन

आदर्श नौकरशाही ही है। उसने स्पष्ट किया कि यथार्थ में किसी भी संगठन में आदर्श नौकरशाही पूर्णतः नहीं पायी जाती, लेकिन यह आदर्श मॉडल का दोष नहीं है, बल्कि दोष उस संगठन का है, जिसमें बहुत कम मात्रा में आदर्श नौकरशाही के मॉडल को अपनाया गया है।

सत्ता की और विशेष रूप से तर्कसंगत-विधिक सत्ता की अवधारणा पर आधारित मैक्स वेबर के आदर्श नौकरशाही मॉडल को आज विश्व के प्रायः सभी देश अपना रहे हैं, चाहे वह विकसित देश हो अथवा विकासशील या अविकसित। क्योंकि सभी देशों में प्रशासन विकास की चाबी है। और इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रशासन-तंत्र के जिस ढ़ाँचे को इन देशों ने (विकासशील) अपनाया है, उसका आधार मैक्स वेबर का नौकरशाही का मॉडल ही है।

8.7 तृतीय विश्व में वेबोरियन मॉडल की उपयोगिता

अधिकांश तृतीय विश्व के देश ब्रिटेन की प्रशासनिक व्यवस्था से प्रभावित रहे हैं, क्योंकि यह देश एक लम्बे समय तक ब्रिटेन के अधीन रहे थे। ब्रिटने की प्रशासनिक व्यवस्था बहुत कुछ हद तक वेबर के नौकरशाही के मॉडल पर टिकी हुई थी, विशेष रूप से अधिकारीतंत्र की दृष्टि से। इसलिए जहाँ-जहाँ ब्रिटिश साम्राज्य का प्रभाव रहा, वहाँ ब्रिटिश तर्ज का प्रशासन पनपा। ब्रिटेन में केन्द्रीय प्रशासन के संचालन में नौकरशाही की अहम भूमिका रही है। ब्रिटिश लोक सेवकों को छः वर्गों में विभाजित किया गया है। यह हैं- प्रशासनिक वर्ग, विशिष्ट वर्ग, लिपिक वर्ग, लेखक सहायक वर्ग, सन्देश वाहक और निम्न वर्ग। नौकरशाही सरकार की नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए सदा तत्पर रहती है। स्पष्ट है कि ब्रिटेन से मुक्त नवोदित राज्यों को प्रशासनिक विरासत ब्रिटेन से ही मिली। संक्षेप में, तृतीय विश्व के देशों ने वेबर की नौकरशाही की अवधारणा के जिन तत्वों को अपनाया, उनका सार है-

1. नौकरशाही व्यवस्था को अपनाकर, प्रत्येक नौकरशाह एवं कर्मचारियों का स्पष्ट विभाजन करके उन्हें उत्तरदायी बनाया जाता है।
2. प्रशासनिक व्यवस्था में पदसोपान सिद्धान्त का पालन किया जाता है, जिससे उच्च एवं अधीनस्थ के मध्य आदेश एवं दायित्वों का स्पष्ट विभाजन हो जाता है तथा कार्य निश्चित प्रक्रिया से पूरे होते हैं।
3. इन देशों की प्रशासनिक व्यवस्था में कार्यालयों की सम्पूर्ण कार्यवाही अमूर्त नियमों द्वारा की जाती है, जिससे कार्यों में एकरूपता बनी रहती है।
4. इन देशों की प्रशासनिक संरचना में प्रत्येक पद के कार्यों को कानूनी रूप से परिभाषित एवं मर्यादित कर दिया जाता है, जिससे कार्यों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होता है और संगठन में तनाव और संघर्ष की स्थिति कम हो जाती है। यह ध्येय वेबर के आदर्श प्रारूप के प्रतिमान का ही है।
5. प्रतियोगी परीक्षाओं तथा तकनीकी योग्यता के आधार पर अधिकारियों और कर्मचारियों की भर्ती का प्रावधान है। योग्यता और अनुभव को यहाँ मापदण्ड माना जाता है। उचित प्रशिक्षण तथा वरिष्ठता एवं योग्यता के आधार पर प्रोन्नति होती है।
6. तृतीय विश्व के देशों में भी वेबोरियन सिद्धान्त के अनुसार कर्मचारियों को पदसोपान स्तर में पद स्थिति दायित्व आदि के आधार पर वेतन तथा अन्य सुविधाऐं दी जाती हैं, जिससे कर्मचारियों में कार्यों के प्रति प्रेरणा और रुचि बनी रहती है।

8.8 भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था पर वेबर के मॉडल का प्रभाव

तृतीय विश्व का भारत एक महत्वपूर्ण देश है। यह संसार का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। अतीत में ब्रिटेन का उपनिवेश रहा है। इसीलिए प्रशासनिक-तंत्र पर ब्रिटेन की प्रशासनिक व्यवस्था की पूरी छाप है। यहाँ संघीय और संसदीय शासन व्यवस्था है। शासन शक्ति के पृथक्कीकरण के सिद्धान्त पर टिका हुआ है। यहाँ प्रशासनिक व्यवस्था 1854

से लेकर 1947 तक अनेक चरणों से होकर गुजरी है। सन् 1858 में कम्पनी के शासन के स्थान पर भारत में ब्रिटिश क्राउन का शासन स्थापित हो गया और सारी शक्तियां प्रशासकों के हाथों में केन्द्रित हो गयी। सर एडमण्ड ब्लण्ट के शब्दों में ''उच्च ब्रिटिश प्रशासनिक अधिकारी असल में भारत के स्वामी बन बैठे। वे किसी अन्य सत्ता के प्रति उत्तरदायी होने की अपेक्षा परस्पर एक-दूसरे के प्रति उत्तरदायी बन गये।'' 1858 से लेकर 1930 तक भारतीय लोक सेवा से संबंधित लगभग सात आयोगों, अधिनियमों और प्रतिवेदनों ने भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था को मूर्त रूप दिया, जिनमें लोक सेवा आयोग (1926) की स्थापना प्रमुख थी। 1935 के अधिनियम में लोक सेवा आयोग का प्रावधान और उसके कार्यों की विवेचना की गयी। सेवी-वर्ग से जुड़े लगभग सभी विषयों पर कहीं न कहीं वेबर की नौकरशाही के प्रतिमान की झलक नजर आती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सेवी-वर्ग प्रशासन में सुधारों की गति और तेज हो गयी। ए0 डी0 गोरवाला (1951), पाल0 एच0 एपलबी (1953 एवं 1956) ने भारतीय प्रशासनिक सुधार से सम्बन्धित अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जिनमें मैक्स वेबर के नजरिये का सहारा लिया गया। इस तरह भारतीय लोक सेवा की कुछ निश्चित विशेषताऐं सामने आयी, जिनका विवरण इस प्रकार है-

1. भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था राजनीतिक संरक्षण अथवा लूटखसोट प्रणाली के दोषों से मुक्त है, जो अमरीकी प्रशासन की विशेषता थी। यहाँ भर्ती, योग्यता के आधार पर की जाती है। योग्यता की जाँच के लिए खुली प्रतियोगिता होती है, जिसका माध्यम संघीय लोक सेवा आयोग है। राज्यों में यह दायित्व राज्य लोक सेवा आयोग को सौंपा गया है।
2. लोक सेवा आयोग द्वारा चयनित प्रत्याशियों को सेवा पूर्व प्रशिक्षण दिया जाता है।
3. पदोन्नति के न्यायोचित अवसरों, नौकरी की सुरक्षा और अच्छे वेतन की व्यवस्था करके लोक सेवकों के मनोबल और उनकी कार्यक्षमता के स्तर को ऊँचा बनाये रखने का प्रयास किया जाता है।
4. भारतीय लोक सेवा ने 'बहुद्देशीय' स्वरूप ग्रहण किये हैं। इससे 'सामान्य (general or common) प्रशासक' बनते हैं। प्रशासकों को समय-समय पर प्रशासन की प्रत्येक 'मेज' पर काम सौंपा जाता है ताकि वे बहुआयामी प्रशासनिक महारत हासिल कर सकें। आई0ए0एस0 एक बहुपदीय सेवा है, जिसके अधिकारी सामान्य प्रशासन में दक्ष हो जाते हैं। अब निम्न स्तरों पर भी यही नियम लागू होने लगा है। लक्ष्य होता है, सामान्य ज्ञान की प्राप्ति।
5. भारतीय लोक सेवाओं में अधिकारियों का एक चतुवर्गीय विभाजन मिलता है- फर्स्ट, सैंकण्ड, थर्ड और फोर्थ क्लास पब्लिक सर्वेन्ट। इनमें प्रथम तथा दूसरी श्रेणी के अधिकारी 'राजपत्रित' होते हैं, जिसका अर्थ है कि इन सेवाओं के सदस्य प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया में उत्तरदायित्व के पदों पर ही कार्य करेंगे।
6. प्रशासनिक संगठन की संरचना लगभग वैसी ही है, जिसकी वकालत मैक्स वेबर ने की है। अथार्त 'पदसोपानीय व्यवस्था।'
7. अधिकारी निर्वैव्यक्तिक सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं तथा नियमों, अधिनियमों और कानूनों का पालन करते हैं जिसकी सिफारिश वेबर ने की है।

सारांश में, भारतीय लोक सेवा कम से कम सिद्धान्त में तो आदर्श नौकरशाही के प्रतिमान पर आधारित है।

8.9 तृतीय विश्व में वेबेरियन मॉडल की सीमाऐं

तृतीय विश्व के देशों (विशेष रूप से भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश तथा श्री लंका) की प्रशासनिक व्यवस्थाऐं अभी विकासोन्मुख दौर से गुजर रही हैं, जबकि वेबर का आदर्श नौकरशाही मॉडल विकसित देशों के सन्दर्भ में है। विकसित देशों में चहुमुखी विकास हुआ है- आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, नैतिक तथा मानव क्षेत्र में, इतना ही नहीं वैज्ञानिक, तकनीकी क्षेत्र में और भौतिक तथा अधिभौतिकी क्षेत्र में भी। तृतीय विश्व के देशों की यह स्थिति नहीं है। इसलिए वेबोरियन मॉडल की सभी विशेषताओं को इन देशों में अपनाना अभी सम्भव नहीं है।

तृतीय विश्व के देश विकास और आधुनिकता की ओर कदम बढ़ा रहे हैं, लेकिन अशिक्षा, निर्धनता तथा परम्परावाद प्रगति के मार्ग के रोड़े हैं। सबसे बड़ी समस्या है, नैतिक पतन की जो प्रशासिनक भ्रष्टाचार का कारण है। अन्य समस्यायें इस तरह है-

1. तृतीय विश्व के देशों की प्रशासनिक प्रणाली में राजनैतिक हस्तक्षेप बहुत अधिक है। यहाँ राजनीति और प्रशासन में घनिष्ठ संबंध है। यह स्थिति वेबेरियन मॉडल के लिए अनुकूल माहौल तैयार नहीं कर सकती।
2. वेबर का मॉडल आदर्श नौकरशाही के औपचारिक सम्बन्धों पर जोर देता है, जबकि तृतीय विश्व के देशों में अनौपचारिक सम्बन्ध भी प्रशासन को प्रभावित करते हैं। वेबर ने कहीं भी औपचारिक क्रियाओं को मान्यता नहीं दी है।
3. वेबर के मॉडल में प्रत्येक प्रकार के 'आदर्श' पर जोर दिया गया है, लेकिन तृतीय विश्व में 'आदर्श' मात्र एक कल्पना है और यहाँ उदासीनता, विलम्ब, भ्रष्टाचार और अनुशासन हीनता का बोल बाला है। अतः प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर 'आदर्श' का अभाव है, जो वेबेरियन मॉडल को निरर्थक बना देता है।
4. वेबर की आदर्श प्रशासनिक संरचना 'पदसोपान' के सिद्धान्त पर आधारित है, लेकिन तृतीय विश्व के देशों की प्रशासनिक संरचना में पदसोपान का उल्लघंन करना आम बात है। पद सोपान का उल्लंघन करके पदोन्नतियों तथा अतिरिक्त पद तक सृजित किये जाते हैं।
5. तृतीय विश्व के अधिकांश देश निर्धन हैं। ऐसी स्थिति में इन देशों के प्रशासनिक संगठनें में पद के अनुरूप उचित वेतन तथा अन्य सुविधायं दिये जाना संभव नहीं है।
6. तृतीय विश्व के देशों में यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से भर्ती एवं प्रोन्नति मानकों और नियमों के अनुसार करने की बात कही जाती है, लेकिन वास्तविकता यह है निश्चित प्रक्रिया से कम तथा अनैतिक तरीकों से अधिक की जाती है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि इन देशों में वेबर के मॉडल की आदर्श बातों को अपनाया जाना संभव है।

8.10 मूल्यांकन

प्रत्येक संगठित समूह तथा प्रशासनिक संस्था में सत्ता के तत्व विद्यमान रहते हैं। लेकिन सत्ता का वास्तविक अर्थ क्या है? इस पर एक लम्बे समय से बहस छिड़ी हुई है। सत्ता, शक्ति, प्रभाव, नियंत्रण लगभग सब एक जैसे ही शब्द हैं। यद्यपि इनमें अन्तर स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है, लेकिन फिर भी भ्रम बना रहता है। वेबर ने सत्ता और शक्ति में अन्तर किया है। अपनी इच्छा को दूसरे पर थोपने को वह शक्ति कहता है। या इच्छानुसार दूसरे के आचरण के बदलने के शक्ति कहा जा सकता है। लेकिन ऐसा प्रभाव या नियंत्रण के माध्यम से भी सकता हो। सत्ता के प्रयोग से भी इस लक्ष्य की पूर्ति हो सकती है, इसीलिए भ्रम बना रहता है। लेकिन जब वेबर सत्ता को वैधता से जोड़ता है तो सत्ता का अर्थ कुछ हद तक स्पष्ट हो जाता है, इसलिए शक्ति का व्यापक अर्थ है और 'सत्ता' का सीमित। सत्ता, शासन और प्रशासन से जुड़ी हुई है इसीलिए वेबर ने प्रशासन के सन्दर्भ में सत्ता की विवेचना करना अधिक उपयुक्त समझा है।

मैक्स वेबर सत्ता का कोई प्रतिमान निर्मित नहीं करता है, बल्कि अपने नौकरशाही के सिद्धान्त के आदर्श प्रारूप मॉडल की रचना करता है। 'सत्ता' को उसने अपने नौकरशाही के आदर्श मॉडल की रचना का आधार बनाया है। इसलिए उसने सत्ता की विस्तृत विवेचना की है।

यहाँ सच यह है कि वेबेरियन नौकरशाही को अनुभवात्मकता के पैमाने पर स्पष्ट नहीं किया जा सकता। विश्व का स्परूप बदला है, हालात बदले हैं और यहाँ नई परिस्थितियों में वेबर का मॉडल प्रशासनिक युक्ति को पूरा करता नजर नहीं आता है। सत्ता की अवधारणा प्रस्तुत करके और उसका वर्गीकरण करके वेबर क्या सिद्ध करन चाहता है? यह कहीं स्पष्ट नहीं होता है। केवल यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'सत्ता' का विश्लेषण करके उसने

अपनी आदर्श प्रारूप की नौकरशाही के प्रतिमान के लिए भूमिका तैयार की। उसने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि उसका आदर्श प्रारूप सर्वश्रेष्ठ और स्थायी है और ऐसा उसने अपने कानूनी-तार्किक प्रतिमान की पारम्परिक तथा करिश्माई सत्ता से तुलना करके किया।

वेबर ने 'तार्किकता' और 'प्रभावोत्पादकता'(efficiency) को किस अर्थ में लिया है यह वह स्पष्ट नहीं कर सका। वह वैधानिक तर्कसंगतता का प्रेमी था, इसलिए वह यह दावा करता था कि उसका मॉडल अधिकतम प्रभावोत्पादकता के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा। शायद उसका विश्वास यह भी था कि जैसे-जैसे समाज का स्वाभाव बदलेगा, उसका मॉडल स्थायित्व प्रदान करेगा।

उसके आदर्श प्रतिमान की आलोचना औपचारिकता के सन्दर्भ में भी गई है। वह अपने सिद्धान्त में औपचारिकता पर जोर देता है, लेकिन इस आलोचना में भी कोई सार नहीं है। प्रबन्धन तकनीकों, निर्णय-निमार्ण की अवधारणा ने व्यवहारिक शोधों इत्यादि ने प्रशासन को वैज्ञाकिनता प्रदान कर दी है, जिसके फलस्वरूप प्रशासन में औपचारिकता का बढ़ना स्वाभाविक है। वेबर के मॉडल में सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों पहलू हैं। योग्यता तथा तकनीकी महारत के आधार पर अभ्यर्थियों का चयन तथा अधिकारियों के सत्ता दुरूपयोग से बचने के तरीके सकारात्मक पहलू हैं, लेकिन निर्वैव्यक्तिक व्यवस्था, नियम, दक्षता का वृत्त, पदसोपान, तकनीकी नियम तथा लिखित दस्तावेज नकारात्मक बातें हैं। वेबर ने नकारात्मक बातों को अपने मॉडल में अधिक महत्व दिया है, जिसके कारण मॉडल के सकारात्मक पहलू छिप गये हैं।

लेकिन आज वास्तविकता यह है कि वेबर के मॉडल के आधार पर विश्व के लगभग सभी जनतंत्रीय देशों ने अपनी प्रशासनिक व्यवस्था में नौकरशाही को अपनाया है और अब उससे पीछा छुड़ाना असंभव प्रतीत होता है, क्योंकि नौकरशाही का कोई दूसरा विकल्प नहीं है और न ही ऐसी कोई संभावना है। हाँ, इतना जरूर है कि उसका मॉडल तृतीय विश्व के देशों पर उतना सटीक नहीं बैठता, जितना वह चाहता था।

अभ्यास प्रश्न-

1. मैक्स वेबर ने किस पुस्तक की रचना की?
2. वेबर ने किस देश की परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपना आदर्श प्रारूप मॉडल तैयार किया?
3. कौन सा भाग सत्ता नहीं है?
4. सत्ता के कितने प्रकार हैं?
5. पदसोपान किसकी विशेषता है?

8.11 सारांश

1. सामाजिक चिन्तकों में जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर का नाम सर्वाधिक लोकप्रिय है। वह एक बहुआयामी व्यक्तित्व का मालिक था। वह समाजशास्त्री भी था, राजनीति शास्त्री भी और अर्थशास्त्री भी। इन तीनों शास्त्रों की झलक उसके प्रशासनिक चिन्तन में स्पष्ट है। वेबर तुलनात्मक लोक प्रशासन की अध्ययन का अगुआ था। उसके इस नजरिये का प्रभाव सबसे अधिक अमरीकी प्रशासन पर पड़ा। उसका प्रभाव इतना अधिक है कि कोई भी प्रशासनिक विचारक उसके आदर्श मॉडल से बच नहीं सका।
2. मैक्स वेबर ने नौकरशाही के आदर्श प्रारूप के मॉडल का एक तार्किक खाका तैयार किया, लेकिन इस खाके को मूर्त रूप देने के लिए उसने एक भूमिका तैयार की। सत्ता की उसकी अवधारणा, उसका विश्लेषण तथा उसका वर्गीकरण ऐसी ही भूमिका है। लक्ष्य उसका नौकरशाही का आदर्श मॉडल तैयार करना था, सत्ता का उसका विचार एक माध्यम था।

3. वेबर के अनुसार प्रत्येक संगठित समूह एवं प्रशासनिक संस्था में सत्ता के तत्व विद्यमान रहते हैं। सत्ता राज्य का केन्द्रीय बिन्दु है। सत्ता के तीन वर्ग है- पारम्परिक सत्ता, करिश्माई सत्ता तथा तार्किक-विधिक सत्ता। यह तार्किक-विविधिक सत्ता(Rational-legal Authority) ही है, जिसको वेबर ने पारम्परिक तथा करिश्माई सत्ता से पृथक करके नौकरशाही के अपने आदर्श प्रारूप के मॉडल का आधार बनाया है।
4. वेबर ने 'आदर्श' की भी व्याख्या की है। उसके अनुसार आदर्श रूप का आशय कुछ वास्तविक तथ्यों के तर्कसंगत आधार पर यथार्थ अवधारणाओं का निर्माण करना है। आदर्श रूप वास्तविक नहीं है, बल्कि यह वास्तविकता के काल्पनिक आधार से निर्मित किये जाते हैं। पहले एक 'आदर्श' की कल्पना की जाती है फिर उस 'आदर्श' के आधार पर एक विशिष्ट की रचना की जाती है। यही प्रक्रिया वेबर ने आदर्श-रूप की नौकरशाही के मॉडल के निर्माण के लिए बनाई है।
5. वेबर के आदर्श-प्रारूप नौकरशाही प्रतिमान के दो भाग हैं- नौकरशाही संगठन के रूप में, तथा नौकरशाही तार्किक नियम सत्ता के रूप में। उसने इन भागों को विस्तार से समझाया है।
6. आदर्श रूप नौकरशाही की वेबर ने ग्यारह विशेषतायें बताई है, जिनमें स्पष्ट श्रम विभाजन, आदेश तथा दायित्वों के मर्यादित क्षेत्र, अमूर्त नियम, कार्यालयों का परिभाषित कार्यक्षेत्र, अधिकारियों की नियुक्ति का आधार स्वतंत्र संविदा, प्रत्याशियों का चयन तकनीकी योग्यता के आधार पर, मासिक भत्ते व पेन्शन, पूर्ण-कालिक सेवा, आजीवन सेवा, साधनों पर अधिकारियों के स्वामित्व का कोई अधिकार नहीं और निर्वैव्यक्तिकता की भावना इत्यादि।
7. तृतीय विश्व के देशों की प्रशासनिक व्यवस्था पर वेबर के आदर्श रूप के मॉडल की स्पष्ट छाप नजर आती है। लगभग सभी देशों ने नौकरशाही की व्यवस्था को अपनाया है।
8. लेकिन तृतीय विश्व के देशों में वेबर का मॉडल इसीलिए प्रभावशाली नहीं हो सकता, क्योकि यहाँ नैतिकता का स्तर बहुत नीचा है। आज भी यहाँ निर्धनता पैर पसारे है, इसीलिए प्रशासन में अनुशासनहीनता, भ्रष्टाचार, कत्तर्व्यविहीनता तथा अक्षमता अपनी चरम सीमा पर हैं, जो वेबर के सिद्धान्तों के विरूद्ध है।

8.12 शब्दावली

निर्वैव्यक्तिक(impersonal)- जो व्यक्ति के रूप में अवस्थित न हो अथवा जिसमें मित्रवत् मानवीय भावनाऐं न हो अथवा वह पद जिसका पदाधिकारी से निजी सम्बन्ध न हो।

तर्कसंगत- वह बात जो विवेक या बुद्धि की कसौटी पर खरी उतरे। जिसका आस्था या विश्वास से सम्बन्ध न हो। जो वैज्ञानिक हो/जहाँ कार्य, कारण और परिणाम का निश्चित सम्बन्ध हो।

आदर्श(Ideal)- वह बात जिसका सम्बन्ध विचार या प्रत्यय से हो, जो कल्पित या काल्पनिक हो अथवा यथार्थ के विपरीत हो या वह जिसका रूप अन्तिम सत्य से मिलता हो।

वैधता(Legitimacy)- कानूनी स्वीकृति, विधिसम्मत, सत्ता को समाज या जनता की मान्यता, संविधान के अनुसार शक्ति का प्रयोग।

8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. General and Industrial Management, **2.** जर्मनी, **3.** आदर्श, **4.** तीन, **5.** नौकरशाही की

8.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन, जयपुर।

2. प्रसाद, प्रसाद: प्रशासनिक चिन्तक, नई दिल्ली।
3. अवस्थी एण्ड अवस्थी: लोक प्रशासन के सिद्धान्त, आगरा।
4. ऐ0 अवस्थी, लोक प्रशासन, आगरा।
5. अशोक कुमार: प्रशासनिक चिन्तक, आगरा।

8.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. S.P. Verma : Modern Political Theory, Agra.
2. Vatsyayan : Principles of Sociology, Meerut.
3. जाकिर हुसैन: राजनीतिक सिद्धान्त, बरेली।
4. Weber : The Theory of Social and Economic Organization, Newyork.
5. R. Merton : Reader in Bureaucray, Glenco.

8.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. तर्कसंगत-विधिक सत्ता और करिश्माई सत्ता को स्पष्ट कीजिए।
2. वेबर की नौकरशाही का आदर्श प्रारूप क्या है? तृतीय विश्व के देशों में वेबर के सत्ता प्रतिमान की सीमाओं को स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 9 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण, संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण

इकाई की संरचना

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 परिस्थितिकी का अर्थ
9.3 फ्रेड0 डब्ल्यू0 रिग्स: एक परिचय
9.4 रिग्स का सैद्धान्तिक नजरिया
9.5 रिग्स का प्रतिमान निर्माण
9.6 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण और रिग्स
9.7 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण
    9.7.1 प्रकार्यात्मकतावाद का अर्थ
    9.7.2 प्रकार्यात्मकतावाद के प्रकार
    9.7.3 संरचना का अर्थ
9.8 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण और राबर्ट मर्टन
    9.8.1 मर्टन का प्रकार्यों से अभिप्राय
    9.8.2 प्रकार्यात्मक विश्लेषण का प्रतिमान
    9.8.3 राबर्ट मर्टन और लोक प्रशासन
9.9 फ्रेड0डब्ल्यू रिग्स और संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण
9.10 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण तथा गैब्रील आमण्ड
    9.10.1 राजनितिक व्यवस्था और आमण्ड का दृष्टिकोण
    9.10.2 आमण्ड और प्रशासन व्यवस्था
9.11 परिस्थितिकीय तथा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का मूल्यांकन
    9.11.1 राबर्ट मर्टन की आलोचना
    9.11.2 गैब्रील आमण्ड की समालोचना
9.12 सारांश
9.13 शब्दावली
9.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.15 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
9.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.17 निबंधात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

तुलनात्मक लोक प्रशासन नई परिस्थितियों के अनुसार प्रशासन की नई अवधारणाओं के अस्तित्व में आने और विकसित होने का परिणाम है। अंतरसांस्कृतिक और अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासनिक अध्ययन तुलनात्मक लोक प्रशासन के रूप में प्रकट हुआ है। इस क्षेत्र में जिस चिन्तक ने सब से अधिक योगदान किया है वह फ्रेड0डब्ल्यू0 रिग्स थे। वह प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन को सर्वश्रेष्ठ उपागम मानते थे। इसलिए उन्होंने तुलनात्मक संदर्भ में लोक

प्रशासन के विश्लेषण के लिए अनेक प्रतिमान और पद्धतियां विकसित की, जो इस प्रकार है- परिस्थितिकीय पद्धति, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक पद्धति और आदर्श मॉडल परिस्थिति।

रिग्स का कहना था कि प्रशासन अन्य व्यवस्थाओं की तरह अपने आस-पास के पर्यावरण या परिस्थितियों से प्रभावित होकर संचालित होता है। इसी तरह स्वंय प्रशासन भी अपने पर्यावरण को प्रभावित करता है। यह अन्तरक्रिया एक-दूसरे को प्रभावित करती है। इसी प्रक्रिया को समझाने के लिए रिग्स ने परिस्थितिकीय(Ecological) पद्धति की अवधारणा रखी तथा उसके आधार पर उसने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक पद्धति और अनेक प्रकार के आदर्श मॉडलों की रचना की। इसलिए रिग्स की परिस्थितिकीय पद्धति को समझने के लिए हमे उसके अन्य आदर्श मॉडलों को भी समझना होगा। आगे चलकर एक और बात समझनी होगी, वह यह कि विकास आधुनिक समाज का सबसे बड़ा मुद्दा है इसलिए जरूरी है कि प्रशासन का भी विकास हो जिसे नये नजरिये और नये आयाम की जरूरत होती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर उसने प्रशासन तथा पर्यावरण को नये सन्दर्भों में परिभाषित करने का प्रयास किया है। रिग्स के निष्कर्ष बड़े आकृषक और दिलचस्प हैं जिनका अध्ययन जरूरी है।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- तुलनात्मक लोक प्रशासन की अनिवार्यता को समझ पायेंगे।
- तुलनात्मक लोक प्रशासन के सन्दर्भ में रिग्स जैसे चिन्तक से परिचित होंगे।
- रिग्स ने लोक प्रशासन के विश्लषण के लिए जो पद्धतियां विकसित की, उनको समझ पायेंगे।
- यहाँ परिस्थितिकीय पद्धति तथा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक पद्धतियों का अध्ययन करेंगे।
- यह जान पायेंगे कि विकास की दृष्टि से रिग्स की पद्धतियां तथा आदर्श मॉडल कितने जरूरी हैं, तथा
- पर्यावरण और प्रशासन के पारस्परिक रिश्तों को समझ सकेंगे।

9.2 परिस्थितिकी का अर्थ

परिस्थितिकी ''Ecology'' का अनुवाद है। परिस्थितिकी को पर्यावरण कहा जा सकता है लेकिन परिस्थितिकी या एकोलॉजी एक विज्ञान है या वैज्ञानिक अध्ययन है जिसके माध्यम से यह जाना जा सकता है कि किस तरह से सावयवों अथवा जीवों(organism) में पर्यावरण के साथ अन्तःक्रिया चलती है अथवा किस तरह वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। प्रशासन स्वयं में एक सावयव तो नहीं है लेकिन वह मानव जीवों का एक समूह अवश्य है। इसलिए प्रशासन का अपने पर्यावरण को प्रभावित करना स्वाभाविक है। प्रभावित करने की इस अन्तःप्रक्रिया को समझाने का काम रिग्स ने किया है। रिग्स इस परिकल्पना के साथ एक सिद्धान्तकार बना कि प्रशासन परिस्थितिकी के अनुसार स्वयं को ढालता है तथा परिस्थितिकी या पर्यावरण को अपने अनुसार ढलने के लिये मजबूर करता है।

परिस्थितिकीय दृष्टिकोण में आस-पास के पर्यावरण(Environ) का अध्ययन किया जाता है। लोक प्रशासन उसमें लगे मानव-व्यवहार का एक संग्रह है, इसलिए यह स्वाभाविक है कि वह व्यवहार अपने आस-पास के पर्यावरण से प्रभावित हो तथा उस पर्यावरण के अनुसार उसकी कार्यविधि संचालित हो और प्रतिक्रिया स्वरूप ऐसी प्रशासकीय व्यवस्था अपने पर्यावरण को भी प्रभावित करे। यहाँ पर्यावरण से अभिप्राय सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक वातावरण से लिया गया है और विकास के सन्दर्भ में प्रक्रिया तथा अन्तःप्रक्रिया परिभाषित करने का प्रयास किया गया है।

9.3 फ्रेड डब्ल्यू0 रिग्स: एक परिचय

फ्रेड0डब्ल्यू0 रिग्स मूल रूप से अमरीकी-चीनी थे। उनका जन्म 1917 में चीन के कुलिंग नगर में हुआ था, जहाँ उनके अमरीकी माता-पिता रहते थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा न्यूयार्क के एक कस्बे स्कोटिया में हुई। अन्ततः रिग्स ने राजनीति विज्ञान को अपनी उच्च शिक्षा का विषय बना लिया। उन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय से राजनीतिशास्त्र में ''Repeal of Chines Exclusion Act.'' पर डॉक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की। इस उपलब्धि के बाद तो रिग्स अपनी शिक्षा-सम्बन्धी जिन्दगी में इतने व्यस्त हो गये कि उन्होने जीव न के दूसरे सारे सुख त्याग दिये। कहीं उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अध्यापन कार्य शुरू किया (City University of New York) तो कहीं वह अनुसंधान कर्मिक बन कर वैदेशिक नीति संघ में अपना शोध करते रहे। वह लोक प्रशासन विषय से भी जुड़े और न्यूयार्क लोक प्रशासन निपटान कार्यालय में एक शोधकर्ता के रूप में कार्य करने लगे (1991-1955)। वह इंडियाना विश्वविद्यालय के सरकार सम्बन्धी विभाग से भी सम्बद्ध रहे (1956-1967)। अन्त में रिग्स हवाई विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर (1967 के बाद से) रहे तथा इसी विश्वविद्यालय के पूर्व-पश्चिम अध्ययन केन्द्र के वरिष्ठ विशेषज्ञ तथा स्टेनफोर्ड स्थित व्यवहार विज्ञान के अध्येता भी रहे। वह तुलनात्मक प्रशासन संगठन के पहले अध्यक्ष चुने गये।

रिग्स एक महान शोधकर्ता, लेखक और अध्यापक थे। उनका रुजहान अन्तर-अनुशासनीय था। वह एक साथ राजनीतिशास्त्र, लोक प्रशासन, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और व्यवहारवाद जैसे विषयों में महारत रखते थे। तुलनात्मक अध्ययन में उनकी विशेष रूचि थी और इसीलिए उन्होंने तुलनात्मक प्रशासन पर अनेक शोध प्रस्तुत किये तथा पुस्तकों की रचना की। चहुमुखी विकास उनके अध्ययन का लक्ष्य था, इसलिये जरूरत थी एक ऐसे मॉडल के तैयार करने की जो विकास के अतीत और वर्तमान मॉडलों की तुलना में अधिक तार्किक और प्रासंगिक हो। इसलिए रिग्स ने तुलनात्मक प्रशासन का चयन किया तथा अन्तरसांस्कृतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासनिक अध्ययन और विश्लेषण पर जोर दिया। उनके द्वारा रचित पुस्तकों में ''The Ecology of Public Administration, Administration in Developing Countries: The Theory of Prismatic Society'' बहुत महत्वपूर्ण हैं। कुल मिलाकर उन्होंने ग्यारह पुस्तकें तथा 300 शोधपत्र लिखे।

9.4 रिग्स का सैद्धान्तिक दृष्टिकोण

रिग्स के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को समझने के लिए हमे दो बातों को समझना होगा। पहला- रिग्स मूल रूप से लोक प्रशासन के विद्यार्थी नहीं रहे थे, लेकिन वह यह मानते थे कि समग्र विकास की अवधारणा प्रशासनिक अध्ययन के बिना अधूरी है, दूसरा- लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक दृष्टिकोण से होना चाहिए, तथा इस अध्ययन के लिए वृहत्तर धाराओं की पहचान होनी चाहिए तथा इन धाराओं (सिद्धान्तों) को समझाने के लिए महत्वपूर्ण साधनों का प्रयोग होना चाहिए। ऐसा रिग्स ने किस तरह किया यह हमारा अगला विषय है।

तुलनात्मक प्रशासन के अध्ययन के लिए रिग्स ने तीन अवस्थाओं की पहचान की-

- प्रतिमानात्मक(Normative) से अनुभावात्मक(Empirical)
- भावनात्मक(Ideographic) से तथ्यात्मक(Factual)
- गैर-परिस्थितिकीय(Non-ecological) से परिस्थितिकीय(Ecological)

रिग्स इन तीन रुझानों (Trends) से यह स्पष्ट करना चाहता है कि यदि हम बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार नये दृष्टिकोण अपनाये, नये उपकरणों का इस्तेमाल करें तथा नये आयाम तलाशें तो हम प्रशासन के सन्दर्भ में विकास की प्रक्रिया को तेज कर पायेंगे। उदाहरण के लिए अनुभावात्मक अध्ययन के माध्यम से हम मैदान में जाकर हालात की वास्तविकता का पता लगा सकते हैं, जबकि प्रतिमानात्मक वर्णन से हम ऐसा नहीं कर सकते।

इसी तरह तथ्यात्मक दृष्टिकोण के अपनाने से हम सामान्यीकरण तथा नियमीकरण की परिकल्पनाओं को गहराईयों तक पहुँचाते हैं और यह देखते हैं कि व्यवहार और उसके अन्तरसम्बन्धों को परिवर्तनशील तत्वों के साथ नियमितता(Regularity) कैसे मिलती है। जहाँ तक परिस्थितिकीय अध्ययन का प्रश्न है, रिग्स का मानना है कि परिस्थितिकीय परिप्रेक्ष में अध्ययन करने से प्रशासन की गतिशीलता की व्यापक समझ विकसित की जा सकती है।

9.5 रिग्स का प्रतिमान निर्माण

1945 के बाद से लगभग 45 देशों को पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों के चुंगल से आजादी मिली और वे सम्प्रभुतासम्पन्न देश बन गये, क्योंकि यह सभी नये देश पहले लगभग सामान्य शासकीय और प्रशासनिक व्यवस्था का अनुभव कर चुके थे इसलिए नये हालात में इनकी समस्याऐं, आवश्यकताऐं, उम्मीदें और मांगें भी एक जैसी थीं। कुल मिलाकर इन देशों में एक सामान्य घनाटनाक्रम घटित हो रहा था। वे आधुनिकता और गतिशीलता की ओर बढ़ने का रुझान रखते थे। क्योंकि साम्राज्यवादी देशों के प्रशासनिक सिद्धान्त और मॉडल औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम थे। वे यूरोप और अमरीका में तो सफल हुये थे लेकिन ऐशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका में नई परिस्थितियों के परिप्रेक्ष में इन मॉडलों को सफलता नहीं मिल सकती थी। ऐसी स्थिति में पश्चिमी और अमरीकी समाजशास्त्रियों, राजनीतिशास्त्रियों तथा प्रशासनिक चिन्तकों ने नवोदित राज्यों की संरचनात्मक आवश्यकताओं को महसूस करते हुए इन राज्यों के वृहत अध्ययन का बीड़ा उठाया, क्योंकि इन देशों की अवहेलना पूरी मानवता की अवहेलना थी। इनका विकास पूरे विश्व का विकास था। यह तभी सम्भव था जब नवोदित राज्यों का स्वंय वहाँ जाकर घटनाक्रम का तथ्यात्मक अध्ययन किया जाता और वहाँ के लोगों को यह संदेश दिया जाता कि वे (चिन्तक) स्थानीय लोगों का विकास और उसमें उनकी भागीदारी चाहते थे, जो तथ्यपरक अध्ययन और परिणाम स्वरूप नये माडलों की रचना और क्रियान्वयन से सम्भव है।

पश्चिमी तथा अमरीकी चिन्तकों की यह सोच प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन के रूप में प्रकट हुई है। रिग्स का भी यही दावा था कि एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका के नवोदित राज्यों को नये मॉडलों, नये सिद्धान्तों तथा नई तकनीकों और उपकरणों की आवश्यकता है। इसलिए उसने समाजशास्त, भौतिकी और जीव विज्ञान से अवधारणाऐं ग्रहण करके लोक प्रशासन के लिए नये सिद्धान्तों और नये मॉडलों के निर्माण का प्रस्ताव रखा। उसने उधार लेने में कोई कंजूसी नहीं दिखाई: दूसरे विषयों से उसने नये-नये शब्द लेकर उन्हें अपने नजरिये से अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए भी ढाला। और इन शब्दों को इस तरह ढाला कि वे पूरी तरह रिग्सवादी लगने लगे। नतीजा यह हुआ कि रिग्स ने अपने प्रशासकीय सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए तीन विश्लेषणात्मक उपकरणों का प्रयोग किया जो इस प्रकार है-परिस्थितिकीय दृष्टिकोण, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण और आदर्श मॉडल्स। आगे रिग्स के परिस्थितिकीय दृष्टिकोण तथा संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण को विस्तार से समझाने का प्रयास किया जाएगा।

9.6 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण और रिग्स

पहले लिखा जा चुका है कि 'Ecology' परिस्थिति या पर्यावरण को कहा जाता है। यह प्राकृतिक विज्ञान का शब्द है। इसके अन्तर्गत जीवों और उनके पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। परिस्थितिकी के लिए अंग्रेजी का दूसरा शब्द 'Environ' है, अर्थात किसी संस्था या संरचना के आस-पास या इर्द-गिर्द का पर्यावरण या परिस्थिति, क्योंकि लोक प्रशासन मानवों और उनके व्यवहार का एक समुच्य है जो किसी जीव की तरह संगठित है और व्यवहार करता है। अतः प्रशासन का अपने इर्द-गिर्द में पर्यावरण से प्रभावित होना और प्रतिक्रिया में पर्यावरण को प्रभावित करना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसलिए प्रशासन तथा पर्यावरण

के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन जरूरी है। इसी अध्ययन के आधार पर प्रशासन के नये मॉडलों की रचना की जरूरत महसूस की गई।

सार यह है कि परिस्थितिकीय दृष्टिकोण अपनाकर यह देखा जाता है कि किस तरह जीव सावयव(Living Organisms) और उनका भौतिक और सामाजिक पर्यावरण प्रतिक्रिया करते हैं और किस तरह अपने अस्तित्व और अन्य उद्देश्यों को सन्तुलन में बनाये रखने के लिए सावयव और पर्यावरण परस्पर व्यवहार करते हैं। लोक प्रशासन की परिस्थितिकी (Ecology) जो प्रशासन और उसके पर्यावरण की एक अन्तरक्रिया या परिणाम है समाज और उन तत्वों के गहन अध्ययन की जरूरत महसूस करती है जो उसकी (परिस्थितिकी) प्रक्रिया को संचालित करती है। रिग्स परिस्थितिकीय उपागम की वकालत करने वाला पहला चिन्तक नहीं है। सर्वप्रथम जॉन0एम0गॉस ने अपने ग्रंथ 'Reflections on Public Administration' में परिस्थितिकीय दृष्टिकोण की लोक प्रशासन के अध्ययन में वकालत की। उस के अनुसार: ''लोक प्रशासन की परिस्थितिकी(Ecology) लोग, क्षेत्र या सम्पत्ति, भौतिक और सामाजिक प्रौद्योगिकी, जन आवश्यकताओं, विचारों, व्यक्तिशता(Individuality) और संकटकालीन हालात का अध्ययन करती है। दूसरी ओर राबर्ट ढल ने अपनी पुस्तक ''The Science of Public Administration : Three Problems'' में लिखा कि लोक प्रशासन अपने पर्यावरण का दर्पण भी है और अपने पर्यावरण की दिशाओं को निश्चित भी करता है। लेकिन यह रिग्स ही है जिसने परिस्थितिकीय दृष्टिकोण के क्षेत्र में एक अहम भूमिका अदा की तथा अपने ग्रंथ ''The Ecology of Public Administration'' की रचना करके इस दिशा में एक महत्वपूर्ण योदान किया। परिस्थितिकी की अवधारणा को आगे बढ़ाते हुए रिग्स ने प्रशासन और आर्थिक, सामाजिक, प्रौद्योगिकी, राजनीतिक और संचार कारकों के सम्बन्धों का वृहत परिप्रेक्ष में विश्लेषण किया। उसने उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया कि किस तरह पर्यावरणात्मक परिस्थितियां प्रशासनिक व्यवस्था को प्रभावित करती हैं। ऐसा उसने तुलनात्मक उपागम के माध्यम से थाईलैण्ड और फिलिपाइन्स का अध्ययन करके अपने सिद्धान्तों की सार्थकता के लिए निष्कर्ष निकाले।

9.7 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण

संरचनात्मक-कार्यात्मक उपाग्म राजनीति विज्ञान का विषय है जिसका अध्ययन इस विषय में लगभग आठ दशक पहले हुआ था। इसका आरम्भ गणित में लीब्रिज ने किया जिसे बाद में समाजशास्त्रियों और सामाजिक मानव विज्ञानियों(Anthropologists) ने किया। 1922 में यह राजनीति विज्ञान का विषय बना। लेकिन सच यह है कि यह उपागम राजनीति विज्ञान में समाजशास्त्रियों का ऋणी है। टेलकॉट पारसंस ने 'The Social System' मोरिसन लेवी ने 'The Structure of Society' और आर0 के0 मर्टन ने 'Theory and Social Structure' जैसी रचनाऐं प्रस्तुत करके समाज के वैज्ञानिक अध्ययन में एक क्रान्ति ला दी। पारसंस और शिल्ज ने तो 'Towards a General Theory of Action' में यह सिद्ध किया कि सामाजिक विज्ञानों का घटनाक्रम तब बेहतर तरीके से समझा जा सकता है जब सामाजिक संरचनाओं और संस्थाओं को समाज में कार्यों को अदा करने की वास्तविकता को स्वीकार किया जाये। यहाँ एक बात और याद रखना चाहिए कि राजनीतिशास्त्रियों ने संरचनात्मक-कार्यात्मक विश्लेषण के माध्यम को राजनीति के तुलनात्मक अध्ययन के लिए अधिक उपयोगी समझा।

संरचनात्मक-कार्यात्मक उपागम के सही अध्ययन के लिए सबसे पहले संरचना ओर कार्य और इन के आपसी सम्बन्धों को समझना होगा। जहाँ तक प्रकार्यों (Functions) का सम्बन्ध है इस बारे में तीन मूल प्रश्न सामने आते हैं, पहला- किसी व्यवस्था में कौन से कार्य सम्पन्न होते हैं, दूसरे- किन संरचनाओं के द्वारा यह सम्पन्न होते हैं और किसी व्यवस्था में कौन से कार्य सम्पन्न होते हैं, और तीसरे- किन परिस्थितियों में यह सम्पन्न होते हैं। ओरान यंग के अनुसार कार्य का सम्बन्ध क्रिया की रीति या प्रतिमान से है। दूसरे शब्दों में कार्य का सम्बन्ध व्यवस्था से है।

9.7.1 प्रकार्यात्मकतावाद का अर्थ

रजनीति विज्ञान में 'कार्यात्मकतावाद' यूनानी राजनीतिक चिन्तकों की देन है। बाद में इस शब्दावली का प्रयोग मान्टेस्क्यू, कांट, स्पिेन्सर आदि ने किया। आधुनिक समय में राबर्ट मर्टन और मैरियन लेवी ने कार्यात्मकता की अवधारणा का खुलकर समर्थन किया। ऐडविन फोगेमैन के अनुसार जब राजनीतिशास्त्री किसी घटनाचक्र का विश्लेषण उन कार्यों के सन्दर्भ में करते हैं जो घटनाक्रम के उद्देश्यों की पूर्ति करते हों तो इसे कार्यात्मकतावाद दृष्टिकोण कहा जायेगा। दूसरे शब्दों में कार्यात्मकतावाद के तीन मूल सिद्धान्त हैं-

- एक तथ्य या घटना जिसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो;
- वह घटना जिसमें तथ्य नजर आये; तथा
- पूरी घटना से तथ्य का सम्बन्ध।

कार्यात्मक विश्लेषणकर्ता प्रत्येक राजनीतिक या प्रशासनिक घटना को एक पद्धति(System) के रूप में देखते हैं और उसे बनाये रखना चाहते हैं।

9.7.2 कार्यात्मकतावाद के प्रकार

कार्यात्मकतावाद के अनेक प्रकार हैं, लेकिन दो प्रकारों को अधिक मान्यता मिली है। इनमें पहला चयनित या चयनशील(Eclectic) है। यहाँ प्रकार्य को एक रूप या सार में लिया जाता है। विश्लेषणकर्ता प्रकार्य के अतिरिक्त संरचना, इतिहास, विचारधारा और घटनाक्रम के अन्य पहलुओं पर भी नजर रखता है। चयनित कार्यात्मकता का अध्ययनकर्ता यह मानकर चलता कि कार्यात्मक पहलू वृहत घटनाक्रम मात्र का एक हिस्सा है, इसलिए विश्लेषण करते समय अध्ययनकर्ता को राजनीतिक और सामाजिक घटनाक्रम के अन्य पहलुओं पर भी नजर डालना चाहिए।

कार्यात्मकतावाद का दूसरा प्रकार अनुभावात्मक प्रकार्यात्मकतावाद(Empirical Functionalism) है। इस दृष्टिकोण का विकास राबर्ट के0 मर्टन ने अपनी रचना 'Social Theory and Social Structure' में किया है। उसके अनुसार प्रकार्य बहुत महत्वपूर्ण अवधारणा है। वह यह नहीं मानता कि प्रकार्य मात्र एक सामान्य विचार है। प्रत्येक समाज में विभिन्न मांगे पैदा होती हैं और इन मांगों को पूरा करने के लिए कार्य किये जाते हैं। वे प्रक्रिया जो इन मांगों को पूरा करने के लिए कार्य किये जाते हैं। वह प्रक्रिया जो इन मांगों की पूर्ति करके संतोष प्रदान करती है कार्य का उद्देश्य पूरा करती है। अतः किसी एक व्यवस्था में चाहे वह राजनीतिक हो या सामाजिक, अगर गतिशील कार्यों का विश्लेषण अनुभावात्मक आधार पर किया जाये तो यह अनुभावात्मक कार्यात्मकतावादी दृष्टिकोण होगा।

9.7.3 संरचना का अर्थ

यहाँ मान्यता या परिकल्पना यह है कि प्रत्येक व्यवस्था का आधार संरचनाऐं होती हैं, जो मूर्त होती हैं और जो विशिष्ट पद्धतियों या उपकरणों के माध्यम से समाज के महत्वपूर्ण कार्यों को पूरा करती हैं। दूसरे शब्दों में संरचना का अर्थ है- प्रशासनिक अथवा किसी अन्य तरह की एक ऐसी यांत्रिकी(Mechanism) जिसके माध्यम से प्रकार्यों को सम्पन्न किया जा सके। यदि गहराई से देखा जाये तो स्वयं समाज संरचनाओं की एक व्यवस्था है। राजनीतिक व्यवस्था भी संरचनाओं से मिलकर बनी है। यही स्थिति प्रशासनिक व्यवस्था की है।

9.8 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण और मर्टन

वैसे टेलकॉट पारसंस और मैरियन लेवी ने संरचनात्मक-कार्यात्मक ढ़ाँचे की नींव डाली, क्योंकि वे राजनीतिक व्यवस्था का एक वैज्ञानिक सिद्धान्त विकसित करना चाहते थे, लेकिन राबर्ट मर्टन का इस क्षेत्र में काफी योदान है। मर्टन एक समाजशास्त्री थे, इसलिए उनका दृष्टिकोण पूरी तरह समाजशास्त्रीय था। राजनीति, अर्थव्यवस्था और प्रशासन को वह समाज के महत्वपूर्ण घटक मानते थे और उनका विश्वास था कि यह घटक सामाजिक घटनाओं से प्रभावित भी होते हैं तथा उनको प्रभावित भी करते हैं। वह समाज का विश्लेषण सामाजिक संरचनाओं के सन्दर्भ में करने के हामी थे। मर्टन की परिकल्पना थी कि समाज अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहता है। यही समाज का वास्तविक लक्ष्य है। इसके लिए समाज अनुकूलन की प्रक्रिया से गुजरते हैं और प्रकार्यों की मदद लेते हैं। मर्टन कार्यों(works) और प्रकार्यों(functions) में अन्तर करता है।

प्रकार्यावाद समाज की व्याख्या की एक पद्धति है। उसे मानव शास्त्रीय संदर्भ में लिया गया है। लेकिन मर्टन ने इस धारणा में संशोधन किया है। उसने अपनी रचना ''Social Theory and Social Structure'' में प्रकार्यावादी दृष्टिकोण को विस्तार देते हुए एक त्रिकोणात्मक रूप प्रदान किया है अर्थात सिद्धान्त, पद्धति और आकड़ों को एक व्यवस्था के रूप में लिया है। प्रकार्यवाद इन्हीं घटकों पर टिका हुआ है।

9.8.1 मर्टन की प्रकार्य सम्बन्धी अवधारणा

जैसा कि बताया जा चुका है कि मर्टन कार्य और प्रकार्य में अन्तर करता है। प्रकार्य एक उपागम है। प्रकार्य एक कार्य-पद्धति है। यह एक अवधारणा है जिसका आधार जीव विज्ञान है। यह बिल्कुल वैसा ही है जैसा कोई सावयवी(Organism) शरीर की प्राणजी को बनाये रखने में अपनी भूमिका अदा करे, मर्टन इसी सावयवी अवधारणा को समाजशास्त्र और मानवशास्त्र में स्वीकृति प्रदान करता है। तर्क यह है कि समाज अपनी व्यवस्था को उसी तरह बनाये रखना चाहता है, जिस तरह शरीर अपनी प्रणाली को बनाये रखना चाहता है। वह कहता है कि प्रकार्य वे देखे जा सकने वाले परिणाम हैं जो सामाजिक व्यवस्था में अनुकूलन अथवा सामंजस्य को सम्भव बनाते हैं। मर्टन ने कार्य-पद्धति (सावयवी) के सन्दर्भ में तथा समाज के अनुकूलन के अर्थ में प्रकार्य को लिया है।

9.8.2 प्रकार्यात्मक विश्लेषण का प्रतिमान

मर्टन ने प्रकार्यात्मक विश्लेषण का एक असाधारण प्रतिमान तैयार किया है। यह प्रतिमान मर्टन के वैज्ञानिक नजरिये और तकनीक के प्रयोग का परिणाम है। इस प्रतिमान में उसने जिन अवधारणाओं को शामिल किया है वे इस प्रकार है-

1. **विषय-** सामाजिक तथ्यों के अध्ययन को मर्टन विषय कहता है। सामाजिक भूमिका, समूह संगठन, सामाजिक संरचना तथा सामाजिक नियन्त्रण, सामाजिक प्रक्रिया, सांस्कृतिक स्वरूप, संवेग, सामाजिक व्यवहार-यह सब विषय हैं, जिनका विश्लेषण प्रकार्यात्मक विश्लेषण के अन्तर्गत आता है।
2. **व्यक्तिनिष्ट व्यवस्थाऐं-** यह वास्तव में प्रेरणाऐं हैं, जिनका अध्ययन जरूरी है। ऐसा वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से किया जा सकता है। प्राकर्यात्मक विश्लेषण बहुत कुछ हद तक इन मानवीय प्रेणाओं का सहारा लेता है, जो यथार्त हैं।
3. **उद्देश्य परिणाम-** मर्टन प्रकार्यात्मक विश्लेषण में दो समस्याओं की ओर इशारा करता है। प्रथम, सामाजिक तथ्यों के योगदान को किस तरह मालूम किया जाये। दूसरे, क्योंकि प्रत्येक तथ्य की एक विषयगत प्रेरणा होती है, तब इस प्रेरणा को उद्देश्यपूर्ण परिणामों से पृथक करके किस तरह समझा जाये। इसी घटनाक्रम को मर्टन उद्देश्यपूर्ण परिणाम कहता है।

4. **प्रकार्य इकाई-** प्रकार्यात्मक विश्लेषण के अन्तर्गत जिस विषय का प्रकार्य के आधार पर विश्लेषण किया जाता है, वह विषय इकाई कहलायी जायेगी। धारणा यह भी है एक विषय प्रकार्य की इकाई हो सकता है, लेकिन यही विषय दूसरे के लिए अप्रकार्य की इकाई हो सकता है। मनोवैज्ञानिक उपागम प्रयोग करते हुए मर्टन इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रकार्य जब क्रियाशील होते हैं तो उनकी अभिव्यक्ति मनोवैज्ञानिक प्रकार्य, समूह प्रकार्य, सामाजिक प्रकार्य तथा सांस्कृतिक प्रकार्य के रूप में हो सकती है।
5. **यांत्रिकीकरण की अवधारणा-** मर्टन प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिए जिस अवधारणा को चुनता है, वह यांत्रिकी है। यह यांत्रिकी शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान की यांत्रिकी से मेल खाती है। जिस तरह शरीर और मस्तिष्क की यांत्रिकी व्यवहार करती है, लगभग वैसा ही कुछ हमें समाज के अन्तर्गत होने वाले प्रकार्यात्मकता के व्यवहार में देखने को मिलता है।
6. **प्रकार्यवाद की मान्यताऐं-** प्रकार्यात्मकतावाद की तीन मान्यताऐं प्रचलित थीं। प्रथम, सामाजिक संरचना का निर्माण अनेक इकाईयां करती हैं जो प्रकार्य करती हैं। दूसरे, सामाजिक इकाईयों के यह प्रकार्य ही एक सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था को बनाये रखते हैं और तीसरे, प्रकार्य प्रत्येक इकाई के अपरिहार्य नतीजे होते हैं। मर्टन इन मान्यताओं को स्वीकार नहीं करता है। वह किसी भी प्रकार्य की प्रकृति की सार्वभौमिकता से इन्कार करता है।

9.8.3 राबर्ट मर्टन और लोक प्रशासन

प्रश्न यह पैदा होता है कि राबर्ट मर्टन ने प्रकार्यत्मकतावाद को समाज या सामाजिक व्यवस्था से जोड़ा तो आखिर प्रशासनिक व्यवस्था के सन्दर्भ में उसे अध्ययन का विषय कैसे बनाया जाये? या उसको एक प्रशासनिक चिन्तक क्यों माना जाये? इन सवालों का उत्तर हमें मर्टन की नौकरशाही की अवधारणा में मिलेगा। मर्टन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना ''Social Theory and Social Structure'' है, जिसमें उसने प्रशासकीय संगठन की विवेचना की है। इस रचना में उसने समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से प्रशासनिक मसलों को हल करने का प्रयास किया है। इस सम्बन्ध में उसका विशेष ध्यान नौकरशाही की ओर जाता है। यहाँ वह नौकरशाही को प्रकार्यों से न जोड़कर अकार्यों(Dys Functions) को प्रकार्यों से जोड़ता है। मर्टन की नजर में नौकरशाही का अकार्य सिद्धान्त यह समझाता है कि प्रशासकीय संगठन नौकरशाही का एक ऐसा प्रतिमान या मॉडल है, जिसका अस्तित्व मानव सभ्यता के इतिहास में मिलता है। इतिहास में नौकरशाही की सक्रियता का महत्व भी है और इतिहास इसके बदलते स्वरूपों का गवाह भी है। इसके रूप कभी तर्कसंगत(Reasonable) रहे हैं, तो कभी अतार्किक। नौकरशाही का दुर्भाग्य यह है कि उसके द्वारा निष्पादित अच्छे कार्यों को भी अक्सर लोग पसंद नहीं करते रहे हैं। यह नापसंद अक्सर अवांछनीय परिणामों में सामने आती है।

आप यहाँ देखेंगे कि नौकरशाही की अकार्य अवधारणा मर्टन को कार्ल मार्क्स के नजदीक पहुँचा देती है। मार्क्स के अनुसार उत्पादन के साधनों और उत्पादन के सम्बन्धों से व्यक्ति (मजदूर) नियंत्रित होता है और प्रशासन का नौकरशाहीकरण व्यक्तियों को उत्पादन के साधनों से अलग कर देता है। मर्टन, मार्क्स के इस विचार से पूरी तरह सहमत है। वह नौकशाही को एक ऐसा प्रशासनिकतंत्र मानता है जो एकाधिकारिक प्रवृति अपनाकर और अपनी चालाकी का प्रयोग करके यथास्थिति को बनाये रखता है। नौकरशाही का लक्ष्य अपनी स्थिति को मजबूत करना होता है। इस तरह हम देखते हैं कि प्रशासनिक व्यवस्था में प्रकार्यात्मक सिद्धान्त के माध्यम से मर्टन नौकरशाही के अकार्य कारकों के आधार पर नौकरशाही की आलोचना करतता है। इस आलोचना का कारण हैं- पहला, नौकरशाही मनोवृत्ति जो जन समाज के विरूद्ध प्रकट होती है। दूसरा, नौकरशाही का नियमों से चिपके रहना वास्तविक उद्देश्यों को नकारना होता है तथा तीसरा, नौकरशाही का निर्वैयक्तिक(Impersonal) होना जो मित्रवत

मानवीय भावनाओं को कुचल देती है। मर्टन के अनुसार नौकरशाही के यह दुष्प्रभाव अकार्यत्मकता के कारण होते हैं।

9.9 रिग्स और संरचनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण

रिग्स परिस्थितिकीय (Ecological) सिद्धान्त का प्रतिपादक है। उसने अपने इस अध्ययन में जिस उपागम का प्रयोग किया वह संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक है। इस परिकल्पना के साथ आगे बढ़ता है कि प्रत्येक प्रणाली या व्यवस्था (System) का निर्माण विभिन्न संरचनाओं(Structures) से होता है और इन संरचनाओं के द्वारा विशिष्ट कार्य या प्रकार्य किये जाते हैं। यहाँ यह याद रखना होगा कि संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक सिद्धान्त का आधार व्यवस्था विश्लेषण (System Analysis) है। इस विश्लेषण से ही पूर्ववर्ती संरचनात्मक उपागम तथा प्रकार्यात्मक उपागम का मिलकर विकास हुआ। संरचनाऐं मूर्त भी होती हैं, जैसे विभाग तथा अमूर्त भी, जैसे प्राधिकार या सत्ता। प्रत्येक संरचना में प्रकार्य तथा अकार्य गतिशील रहते हैं।

रिग्स संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम को उपागम न कहकर 'ढाँचा'(Frame work) कहता है। उसका मानना है कि संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक ढांचा उन प्रकार्यों को जो एक समाज में निष्पादित होते हैं (उनके) विश्लेषण करने की एक पद्धति है। संरचनाऐं प्रकार्यों को निष्पादित करने के लिए उत्तरदायी होती हैं और पद्धतियों के द्वारा प्रकार्यों को पूरा किया जाता है। रिग्स के अनुसार प्रत्येक समाज में पांच महत्वपूर्ण प्रकार्यों का निर्वाह होता है। उसने अपनी पुस्तक ''Administration in Developing Countries The Theory of Primatic Societies'' में लिखा कि ''इसी प्रकार के प्रकार्य प्रशासनिक उप-व्यवस्था में पूरे किये जाते हैं, जहाँ विभिन्न संरचनाऐं एक विशिष्ट रूप में अनेक प्रकार्यों को अंजाम देती है।'' रिग्स के अनुसार इन संरचनाओं, प्रकार्यों और पद्धतियों के घटनाक्रम को समझना ही संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण है।

9.10 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण तथा गेब्रिल ऑमण्ड

गेब्रील ऑमण्ड का संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण से गहरा सम्बन्ध है। उसकी नजर में प्रशासनिक व्यवस्था या लोग प्रशासन राजनीतिक व्यवस्था का एक हिस्सा है, इसलिए राजनीतिक विश्लेषण के अन्तर्गत प्रशासनिक विश्लेषण का अध्ययन स्वतः ही हो जायेगा जहाँ तक राजनीतिक विश्लेषण का सवाल है, आमण्ड के अनुसार पांच राजनीतिक प्रकार्य होते हैं- राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक भर्ती, हित अभिव्यक्ति(Articlation), हित संकलन (Aggregation) तथा राजनीतिक संचार। जहाँ तक प्रशासनिक व्यवस्था का सवाल है तो ऑमण्ड यह मानता है कि प्रशासनिक व्यवस्था सरकारी प्रकार्यों के अन्तर्गत आती है। यह सरकारी प्रकार्य हैं- नियम-निमार्ण और नियमों का निर्गितीकरण(Adjudication) करना। आमण्ड के अनुसार सारी राजनीतिक व्यवस्थाऐं किसी न किसी रूप में इन प्रकार्यों को पूरा करती हैं। उसका कहना है कि चाहे वे राजनीति शास्त्री हों या प्रशासनिक सिद्धान्तकार उनको इन प्रकार्यात्मक गति विधियों को सम्भालना होगा, यदि राजनीति अथवा प्रशासन को वे समझना चाहते हैं विशेष रूप से तब जहाँ सरकारें अधिक विकसित न हुई हों।

ऑमण्ड वास्तव में राजनीतिक इकाई (राज्य) के प्रकार्यात्मक सिद्धान्त को समझना चाहता था। वह यह जानना चाहता था कि किस प्रकार से राजनीतिक व्यवस्थाऐं परम्परागत से आधुनिक में परिवर्तित होती हैं। उसका दार्शनिक नजरिया यह था कि व्यवस्था एक जीवित इकाई है और वह सामाजिक व्यवस्था का एक अंग है, जिसकी अपनी विशेषताऐं हैं। इस व्यवस्था पर पर्यावरर्णात्मक दबाव पड़ते हैं, इसलिए इसमें हल्के या तीव्र बदलाव आते रहते हैं।

9.10.1 राजनीतिक व्यवस्था और ऑमण्ड का दृष्टिकोण

यह पहले बताया जा चुका है कि प्रशासनिक व्यवस्था राजनीतिक व्यवस्था का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है, इसलिए जब ऑमण्ड राजनीतिक व्यवस्था का विश्लेषण करता है तो उसे प्रशासकीय व्यवस्था का भी अध्ययन समझना चाहिए। अपनी रचना ''Politics of Developing Areas'' में आमण्ड और कोलमैन ने लिखा कि राजनीतिक व्यवस्था अन्त:क्रियाओं की एक ऐसी व्यवस्था है, जो तमाम स्वतंत्र समाजों में पायी जाती है और जो एकीकृत करने और अनुकूलित (Adaptation) करने का काम कम या अधिक वैधानिक शारिरीक बाध्यता के माध्यम से पूरा करती है। इस परिभाषा में चार तथ्य सामने आते हैं। पहला, राजनीतिक व्यवस्था अन्तः क्रियाओं का एक समुच्च है, दूसरे यह व्यवस्था अनुकूलित तथा एकीकृत करने का काम करती है, तीसरे, काम या उद्देश्य की पूर्ति वैधानिक तौर से की जाती है, तथा चौथे, जोर जबरदस्ती से काम लिया जाता है। इस तरह ऑमण्ड की नजर में राजनीतिक व्यवस्था एक ठोस इकाई है। इसका पर्यावरण को प्रभावित करना तथा उससे प्रभावित होना जरूरी है। वैधानिक शारीरिक बल व्यवस्था को बांधे रखता है। इस व्यवस्था में अन्तरक्रियाऐं घटित होती हैं, लेकिन यह व्यक्तियों के मध्य नहीं होती हैं, बल्कि उन भूमिकाओं के मध्य होती हैं जो व्यक्ति अदा करते हैं। आमण्ड राजनीतिक व्यवस्था को खुली व्यवस्था मानता है जो, सदा दूसरी व्यवस्थाओं के सम्पर्क में रहती है। ऑमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था की कुछ विशेषताऐं बताई हैं, जो इस प्रकार हैं- राजनीतिक संरचना की सार्वभौमिकता, राजनीतिक प्रकार्यों की सार्वभौमिकता, राजनीतिक प्रकार्यों की बहुप्रकार्यात्मकता तथा, सांस्कृतिक रूप से मिश्रित स्वाभाव।

ऑमण्ड का संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण बहुत विस्तृत और अलझा हुआ है। जैसा कि बताया जा चुका है आमण्ड ने सरकारी प्रकार्यों में नियम निर्माणों, नियम क्रयान्ववन तथा नीति या न्याय निर्णीत को शामिल किया है। इनमें नियम क्रयान्वन का सम्बन्ध प्रशासन से है।

9.10.2 आमण्ड और प्रशासनिक व्यवस्था

आमण्ड ने अपने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक के नजरिये से प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन किया है। इस सन्दर्भ में उसका विषय नौकरशाही है। इस सम्बन्ध में वह मैक्स वेबर, कार्ल फ्रीडरिच, फेनरनॉड इत्यादि से प्रभावित नजर आता है जिनके अनुसार नौकरशाही नियम क्रियान्वयन में एक अहम भूमिका अदा करती है और जो नौकरशाही को आधुनिक शासन का मगज मानते हैं। ऑमण्ड नौकरशाही को आधुनिक समाज के लिये अपरिहार्य मानता है। उसके अनुसार राजनीतिक नेताओं या जजों के निर्णय नौकरशाहों और अधिकारीगण के द्वारा ही क्रियान्वित किये जाते हैं। उसने लिखा, आधुनिक काल में अधिकतर कानून बहुत सामान्य प्रकार के होते हैं, ताकि उनको प्रभावशाली ढंग से लागू किया जा सके। प्रशासनिक अधिकारियों का काम है कि वे ऐसे विनियम या विनियामक संहिता तैयार करें, जिससे उस नीति का स्पष्टीकरण हो जो शासन की राजनीतिक शाखाओं ने अपनाई है। आम तौर से जिस सीमा तक एक सामान्य नीति लागू की जाती है वह उन व्याख्याओं पर निर्भर करती है जो नौकरशाहों द्वारा की जाती है।

आमण्ड के अनुसार नौकरशाह हितों के व्याख्याकारों और एकीकरणताओं की हैसियत से अहम भूमिका अदा करते हैं। नौकरशाही किसी राजनीतिक व्यवस्था के संचार प्रकार्य को लागू करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह संस्था राजनीतिक मुद्दों और राजनीतिक दृष्टि से अहम घटनाओं की सूचना का एक स्रोत भी बनती है। लेकिन नौकरशाही एक प्रभावशाली भूमिका अदा कर सके, इसके लिए जरूरी है कि वह एक योग्य शासकीय और निर्देशक समूह से निर्देशित तथा नियंत्रित हो। उसको एक केन्द्रीय नीति निर्माण अभिकरण(Agency) की आवश्यकता होती है। ऑमण्ड ने लिखा, ''एक ऐसी केन्द्रीय, निर्देशक नीति निर्माण अभिकरण के अभाव में

ऊर्जाहीनता और विकेन्द्रीकरण की ओर रुख़ अपरिहार्य हो जाता है, क्योंकि अपनी प्रकृति और प्रवृति से नौकरशाही दैत्य एक तकनीकी उपकरणीय दैत्य हो जाता है।'' नौकरशाही के बारे में आमण्ड का उक्त विश्लेषण प्रशासनिक दृष्टि से बहुत महत्पवूर्ण है।

9.11 परिस्थितिकीय तथा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का मूल्यांकन

रिग्स ने परिस्थितिकीय दृष्टिकोण का विचार रखा और यह समझाने का प्रयास किया कि प्रशासन और उसका पर्यावरण एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और इस प्रक्रिया की गतिशीलता या गतिशील विज्ञान को समझना प्रशासन के समझने के लिए अनिवार्य है। रिग्स के परिस्थितिकीय दृष्टिकोण को प्रशासकीय चिन्तकों ने प्रशासन के सन्दर्भ में बहुत महत्वपूर्ण माना है, लेकिन साथ में यह भी तर्क दिया है कि उसने नई-नई शब्दावली का प्रयोग करके तथा दूसरे विज्ञानों से उनकी विशिष्ट अवधारणाऐं लेकर अपने दृष्टिकोण को उलझा दिया है। समालोचकों के इस तर्क में काफी दम है कि रिग्स के दृष्टिकोण को समझने के लिए पहले उसकी भाषा को समझना पड़ता है, फिर उसकी अवधारणा को और अन्त में उसके दृष्टिकोण की प्रासंगिकता को समझना पड़ता है। जैसे-जैसे रिग्स प्रशासन के प्रतिमानों के निर्माण की ओर बढ़ता जाता है वह अस्पष्ट और कठिन होता जाता है, लेकिन सच यह भी है कि रिग्स को प्रशासनिक प्रतिमान के सृजनकर्ता की हैसियत से बड़ी ख्याति मिली है। उसका तुलनात्मक प्रशासन तथा विकास प्रशासन के क्षेत्र में बड़ा योगदान है। प्रशासन के सन्दर्भ में उसने अनेक मॉडलों, जैसे- आदर्शात्मक, अनुभावात्क, संरचनात्मक, प्रकार्यात्मक का सृजन किया लेकिन वह लोक प्रशासन के अध्ययन में सबसे अधिक परिस्थितिकीय उपागम को पसंद करता है।

9.11.1 रार्बट मर्टन की आलोचना

जहाँ तक संरचनात्मक-प्रकार्यात्क उपागम का प्रश्न है, समाचोलना के रूप में सर्वप्रथम रार्बट मर्टन के दृष्टिकोण को लिया जा सकता है। उसका कहना है कि सरकार को कुछ सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करनी चाहिए। वह मूल्यों की बात करता है लेकिन यह नहीं बताता कि सामाजिक मूल्य क्या हैं।

दूसरे उसने राजनीतिक और सामाजिक उपागमों और प्रकार्यों के मध्य स्पष्ट समबद्ध भी स्थापित किये हैं। तीसरे, मर्टन ने शासकीय और राजनीतिक उपागमों में अन्तर तो किया है लेकिन उनका पारस्परिक सम्बद्ध किया है इसका उत्तर नहीं दिया है। वह सामाजिक गतिविधियों तथा कल्याणकारी गतिविधि में अन्तर तो करता है, लेकिन यह नहीं समझा सका कि राज्य का क्या काम होगा और प्रशासन क्या काम करेगा।

चौथे, मर्टन का दृष्टिकोण सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में नहीं रखता है। वह केवल सरकार और राजनीति जैसे दो तत्वों को अध्ययन का विषय बनाता है। लेकिन वह यह नहीं समझा सका कि यह दो तत्व सम्पूर्ण समाज नहीं है। इसलिए उसका अध्ययन एकांगी है। उसने सामाजिक व्यवस्थाओं तथा शासकीय और प्रशासनिक अभिकरणों के मध्य सम्बन्धों को भी समझाने का प्रयास नहीं किया।

सारांश में उसने किसी सामान्य सिद्धान्त की रचना नहीं की और सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में नहीं रखा। यह उसकी कमजोरी थी।

9.11.2 गैब्रील ऑमण्ड की समालोचना

आमण्ड संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक सिद्धान्त का सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनाकार है। लेकिन इस सम्बन्ध में उसके दृष्टिकोण की भी कम आलोचना नहीं हुई है। उसके विरूद्ध पहला तर्क यह है कि यद्यपि उसने टेलकॉट पारसंस से अपने विचारों को सजोने के लिए बहुत कुछ ग्रहण किया, लेकिन पारसंस के विचारों को उसने उस रूप में क्रियान्वित नहीं किया जो पारसंस का उद्देश्य था। पारसंस की दिलचस्पी व्यवस्थाओं में थी, जबकि ऑमण्ड की

रूचि प्रकार्यों में थी। आमण्ड प्रकार्यों की बात तो करता है, लेकिन उस व्यवस्था की बात नहीं करता जहाँ प्रकार्य अर्थपूर्ण होते हैं। आमण्ड के अनुसार व्यवस्था अन्तःक्रियाओं का एक समुच्च्य है, लेकिन वह यह नहीं समझा पाता है कि 'व्यवस्था' या अन्तःक्रिया क्या है।

आमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्था से ग्रहण की है, लेकिन उसने यह साफ नहीं किया है कि किस तरह पश्चिमी राजनीतिक संस्थाओं और उनकी विशेषताओं को गैर-पश्चिमी राजनीतिक समाजों पर लागू किया जा सकता हे।

उसकी एक और आलोचना यह भी है कि उसने राजनीतिक व्यवस्था को तमाम स्वतंत्र समाजों में पाई जाने वाली अन्तःक्रियाओं की व्यवस्था माना है। लेकिन स्वतंत्र समाजों से उसका क्या अभिप्राय है, यह वह नहीं बता सका। ऑमण्ड ने प्रकार्यों के सात विभिन्न रूप गिनायें है, लेकिन व्यवहार में राजनीतिक और गैर-राजनतिक समूहों के मध्य अन्तर करना कठिन है। आमण्ड यह बताने में भी असफल हुआ है कि राज्य और समाज में स्वतंत्र संवाद कैसे होता है। उसकी आलोचना का एक आधार यह भी है कि उसने निर्गतन(Output) प्रकार्यों को उचित महत्व नहीं दिया है। अन्त में यह कहा जा सकता है कि उसका तुलनात्मक राजनीतिक उपागम अपूर्ण है। उसने विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवथाओं की तुलना विकसित देशों से की है और इस तुलना से विकसित राजनीतिक व्यवस्थाओं को हानि हुई है। उसने ऐसा करके अनेक राजनीतिशास्त्रियों और प्रशासनिक चिन्तकों को भटकाया है। इयुजान मोहान ने तो यहाँ तक कहा है कि ऑमण्ड ने वास्तव में किसी सिद्धान्त का निर्माण ही नहीं किया है। उसकी व्यवस्था सम्बन्धी योजना वास्तव में कोई योजना नहीं है। उसकी शब्दावली अपर्याप्त और उलझी हुई है।

अभ्यास प्रश्न-

1. 'दि एकोलॉजी ऑफ पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन' किस लेखक ने लिखी?
2. रिग्स ने अपने परिस्थितिकीय विश्लेषण में किस उपागम का प्रयोग किया?
3. 'पॉलिटिक्स ऑफ डेवेलपिंग कन्ट्रीज' का लेखक कौन है?
4. परिस्थितिकीय दृष्टिकोण का सिद्धान्तकार कौन है?
5. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का सिद्धान्तकार कौन है?

9.12 सारांश

1. इस इकाई में दो प्रमुख दृष्टिकोणों की व्याख्या की गई है-परिस्थितिकीय दृष्टिकोण की तथा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की। रिग्स को प्रशासनिक प्रतिमान निर्माण का अगुआ माना जाता है। उसने तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययन के माध्यम से प्रशासनिक व्यवस्थाओं का विषेश रूप से विकासशील समाजों के सन्दर्भ में विस्तृत परिस्थितिकीय और विकास के परिप्रेक्ष में अध्ययन किया है।
2. रिग्स तुलनात्मक लोक प्रशासन के अन्तर-सांस्कृतिक और अन्तर-राष्ट्रीय(Cross-Cultural and Cross-national) अध्ययन पर जोर देता है। उसने विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं को समझाने पर अधिक ज़ोर दिया है। उसने तीन विस्तृत धाराओं की पहचान की है। आदर्शवादी से अनुभावात्मक, विचारात्मक से तथ्यात्मक और गैर-परिस्थितिकीय से परिस्थितिकीय। उसकी नजर में यह धाराऐं तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण हैं।
3. रिग्स ने परिस्थितिकीय उपागम, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम तथा आदर्श प्रतिमानों को प्रशासनिक सिद्धान्तों के स्पष्टकरण (स्पष्टीकरण) के लिए महत्वपूर्ण विश्लेषणात्मक उपकरण माना है।

4. रिग्स के दृष्टिकोण की आलोचना भी की गई है। विशेष रूप से उसने जिस नई शब्दावली का प्रयोग किया है, वह भ्रम भी पैदा करता है और उलझाव भी।
5. जहाँ तक संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का प्रश्न है, रिग्स के अतिरिक्त रार्बट मर्टन और गेब्रील ऑमण्ड का इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। मर्टन अपने विश्लेषण में प्रकार्यों तथा अकार्यों में अन्तर करता है। इसके अतिरिक्त वह प्रकटीय(Manifest) अैर अप्रकटीय(Latent) प्रकार्यों में भी अन्तर करता है। दोनों प्रकार्यों का अध्ययन अनिवार्य है।
6. मर्टन के अनुसार सामाजिक सिद्धान्त के निर्माण में तथ्यों और शोध को एक-दूसरे से जोड़ना चाहिए। उसके अनुसार सामाजिक और राजनीतिक तथ्यों को ज्ञात करने के लिए प्रकार्य आधार बनते हैं। संगठनात्मक व्यवस्था को समझने के लिए भी प्रकार्य अनिवार्य है।
7. मर्टन ने राजनीतिक और सरकारी व्यवस्थाओं में भी अन्तर किया है। उसके अनुसार राजनीतिक पहलू ज्यादा विस्तृत हैं, शासकीय पहलू की तुलना में। राजनीति व्यवस्था में राजनीतिक दलों, दबाव गुटों और नेतृत्व का भी अध्ययन किया जाता है।
8. मर्टन राजनीतिक विश्लेषण को अधिक वैज्ञानिक बनाना चाहता है। इस दृष्टि से वह अपने समय से बहुत आगे है।
9. मर्टन की भी आलोचना की गई है। सर्वप्रथम, उसने सामाजिक मूल्यों को स्पष्ट नहीं किया है। दूसरे, उसने राजनीतिक और सामाजिक क्रमिकता और प्रकार्यों का स्पष्ट सम्बन्ध नहीं जोड़ा है। तीसरे, मर्टन ने अपने विश्लेषण में सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को नहीं लिया है।
10. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का तीसरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्तकार गेब्रील आमण्ड है। उसने अपने विश्लेषण में पांच राजनीतिक प्रकार्य गिनाये हैं- राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक भर्ती, हित अनुकूलन, हित एकीकरण और राजनीतिक संचार। शासकीय प्रकार्यों में नियम-निर्माण, नियम क्रयान्वयन और विनियम-किर्णावन आते हैं। तमाम राजनीतिक व्यवस्थायें इन प्रकार्यों को करती हैं।
11. आमण्ड का उद्देश्य राजनीतिक व्यवस्था का प्रकार्यात्मक सिद्धान्त खोजना था। वह यह जानना चाहता था कि किस प्रकार से राजनीतिक व्यवस्थाऐं पारम्परिक से आधुनिक में बदलती है। उसके अनुसार व्यवस्था एक सावयव (जीव) है और उसका सम्बद्ध सामाजिक व्यवस्था से है जिसकी अपनी विशेषताऐं होती हैं।
12. प्रशासनिक दृष्टि से संरचनातमक-कार्यात्मक ढ़ाँचे में ऑमण्ड ने नौकरशाही पर अपने विचार रखे हैं। उसके अनुसार नीतियों का क्रयान्वन प्रशासक करते हैं। इस क्रयान्वयन में नीतियों का स्वरूप कैसा हो इसकी व्याख्या नौकरशाह करते हैं। हितों के अनुकूल और एकीकरण में भी नौकरशाहों की अहम भूमिका रहती है।
13. आमण्ड के दृष्टिकोण की आलोचना हुई है। वह पारसंस से प्रभावित था लेकिन उसने पारसंस का अनुसरण नहीं किया। पारसंस व्यवस्थाओं में दिलचस्पी लेता है, लेकिन आमण्ड प्रकार्यों की बात करता है।
14. उसने राजनीतिक व्यवस्था का विचार पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्थाओं से लिया है, लेकिन वह यह नहीं समझा सका कि किस तरह पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्थाओं की विशेषताओं को गैर-पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्थाओं पर लागू किया जा सकता है।

9.13 शब्दावली

परिस्थितिकी(Ecology)- परिस्थितिकी एक ऐसा विज्ञान है, जिसके अन्तर्गत सावयवों तथा उनके पर्यावरण के मध्य होने वाली अन्तःक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

प्रकार्य(Functions)- प्रकार्यों तथा कार्यों में अन्तर है। प्रकार्य एक उपागम है जबकि कार्य मात्र एक गतिविधि है। प्रकार्य एक तकनीकी शब्द है जबकि कार्य एक सामान्य शब्द है।

सावयव(Organism)- सावयव जीव को कहते है जो अंगो से मिलकर बना है। प्रत्येक अंग का यद्यपि एक स्वतंत्र रूप है, लेकिन सावयव अर्थात अंग एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। वे अपने पर्यावरण (माहौल) से प्रभावित होते हैं और प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं।

अप्रकार्य(Dys-Function)- वे प्रकार्य जो क्रियाशीलता पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं अथवा प्रकार्यों को निषेध करते है।

9.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. फ्रेड डब्ल्यू रिग्स, **2.** तुलनात्मक उपागम का, **3.** ऑमण्ड एवं कोलमैन, **4.** रिग्स, **5.** ग्रैबिल ऑमण्ड

9.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. S.P. Verma : Modern Political Theory.
2. D. Ravindra Prasad, V.S. Prasad, P. Stynarayana : Administrative Thinkers (Edited).
3. Riggs, Fred W., The Ecology of Public Administration.
4. प्रसाद, सत्यनारायण: प्रशासनिक चिन्तक।
5. Maheshwari, S.R., Administrative Thinkers
6. Marcus Weeks, Politics in Miniuters (London)

9.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सुरेन्द्र कटारिया: प्रशासनिक चिन्तक, जयपुर।
2. Riggs, Fred W., Trends in the Comprarative Study of Public Administration (Paper).
3. Kumar, Ashok, History of Social Thought

9.17 निबंधात्मक प्रश्न

1. रिग्स का परिस्थितिकीय दृष्टिकोण क्या है। विस्तार से उत्तर दीजिए।
2. प्रकार्यात्मकता के तीन मूल सिद्धान्त क्या हैं? स्पष्ट कीजिए।
3. राबर्ट मर्टन ने लोक प्रशासन की अवधारणा किस सन्दर्भ में प्रस्तुत की है। सपष्ट कीजिए।
4. गेब्रील ऑमण्ड ने पांच राजनीतिक प्रकार्यों का उल्लेख किया हैं। वे कौन-कौन से हैं? उनकी चर्चा कीजिए।

इकाई-10 विकास मॉडल और डाउन्स मॉडल

इकाई की संरचना

भाग-1 विकास मॉडल

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 विकास की प्रशासनिक अवधारणा
10.3 प्रशासनिक विकास का लक्ष्य
10.4 प्रशासनिक विकास की प्रकृति
10.5 विकास प्रशासन का क्षेत्र
10.6 विकास प्रशासन के घटक
10.7 विकास प्रशासन के साधन
    10.7.1 विकास प्रशासन का सार
    10.7.2 राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास
10.8 फ्रेड रिग्स की विकास की अवधारणा
10.9 रिग्स की विकास अवधारणा का तकनीकी सार
10.10 मूल्यांकन

भाग-2 डाउन्स मॉडल

10.11 ऐन्थानी डाउन्स: एक परिचय
10.12 डाउन्स की नौकरशाही की अवधारणा
    10.12.1 ब्योरोज और निर्णय-निर्माण
10.13 ब्योरोज की परिभाषा तथा नौकरशाहों की प्रकृति
10.14 निर्णय निर्माण-सिद्धान्त और परिकल्पनाऐं
10.15 डाउन्स की पर्यावरण की अवधारणा
10.16 ब्योरोज की पदसोपनीय संरचना
10.17 ब्योरोज पदसोपानों में संचार और नियन्त्रण की समस्याऐं
10.18 ब्योरोज के गतिज: उनका जीवन चक्र
10.19 ब्योरोज व्यवहार पर आयु का प्रभाव
10.20 मूल्यांकन
10.21 सारांश
10.22 शब्दावली
10.23 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.24 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.25 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.26 निबंधात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

इस इकाई के दो भाग हैं। भाग-1 में विकास मॉडल की विवेचना की गयी है। भाग-2 में डाउन्स के मॉडल की व्याख्या है। विकास के कई आयाम हैं-आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक लेकिन आधुनिक दृष्टिकोण यह है कि प्रशासन का विकास अन्य सभी विकासों की एक अनिवार्य शर्त है। विकास तथा विकास प्रशासन दो विभिन्न विषय हैं लेकिन दोनों में गहरा सम्बन्ध है। विकास प्रशासन तुलनात्मक लोक प्रशासन की देन है। यदि विकास एक मनः स्थिति है तो विकास प्रशासन उस मनः स्थिति को मूर्त रूप देने का एक माध्यम है। विकास प्रशासन की अपनी प्रकृति, अपना क्षेत्र, अपने लक्ष्य, अपने घटक तथा अपने साधन हैं। इसलिए विकास प्रशासन स्वयं में एक पूर्ण विज्ञान हैं। उसके सिद्धान्त हैं और उसकी एक अवधारणा है, जिसकी विवेचना इस इकाई में की गयी है।

डाउन्स एक अमरीकी अर्थशास्त्री है लेकिन लोक प्रशासन भी उसका विशिष्ट विषय रहा है। इसलिये उसने नौकरशाही पर अपनी खोज के अनुसार सिद्धान्त की रचना की है। वह नौकरशाही की सकारात्मक भूमिका को स्वीकार करता है, लेकिन शब्द नौकरशाही का वह प्रयोग करना नहीं चाहता है। उसका विश्लेषण विषय ब्योरोज हैं जिनको विभाग या अनुभाग कहा जा सकता है। इन ब्योरोज़ का वह निर्णय-निर्माण के सन्दर्भ में विश्लेषण करता है। लोक प्रशासन में यही उसकी देन है। वह शब्द नौकरशाह(Bureaucrat) का भी प्रयोग नहीं करना चाहता है। इसके स्थान पर उसने ‘Officials’(अधिकारी) का नाम अधिक पसन्द किया है तथा अधिकारियों की भूमिका, स्वभाव, उद्देश्य तथा कार्यविधि की उसने विवचेना की है। इस तरह नौकरशाही से सम्बन्धित अपने सिद्धान्त को उसने न तो मॉडल कहा है और न आदर्श। एक और विशेष बात यह है कि मैक्स बेबर से असहमत होते हुये भी उसने बेबर की नौकरशाही के आदर्श मॉडल से ‘पदसोपान’ का सिद्धान्त ग्रहण किया है। संक्षेप में डाउन्स के मॉडल या सिद्धान्त के तार्किक पहलू हैं, जिनकी अवहेलना नहीं की जा सकती।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- प्रशासन, विकास तथा विकास प्रशासन से सम्बन्धित अवधारणाओं तथा आधुनिक विषम समाज में उनके महत्व को समझ सकेंगे।
- विकास और विकास प्रशासन दो अलग विषय हैं। इस इकाई के माध्यम से दोनों के शास्त्रीय अन्तर को जान सकेंगे।
- विकास प्रशासन की प्रकृति, उसके लक्ष्यों, क्षेत्र और उसके घटकों की जानकारी कर सकेंगे।
- आधुनिकीकरण और विकास का आपस में क्या सम्बन्ध है, यह जान पायेंगे।
- विकास से सम्बन्धित रिग्स की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- इकाई का दूसरा भाग-एन्थानी डाउन्स के मॉडल से सम्बन्धित डाउन्स के बारे में जानकारी ले सकेंगे।
- डाउन्स ने नौकरशाही का अध्ययन ब्यारोज के सन्दर्भ में किया है, जिसे समझ सकेंगे।
- डाउन्स ने ब्योरोज में किस तरह निर्णय-निर्माण के सिद्धान्त के अध्ययन को विषय बनाया है, यह जान पायेंगे।
- डाउन्स ने निर्णय-निर्माण से सम्बन्धित कुछ परिकल्पनाओं का सहारा लिया है, उनमें से एक ब्योरोज के पर्यावरण से सम्बन्धित है। यह क्या अवधारणा है, इसको समझ सकेंगे।

- ब्योरोज की संरचना का आधार पदसोपान है, इससे जुड़ी हुई संचार और नियंत्रण की समस्याओं से तथा उनके जीवन चक्र तथा आयू सम्बन्धित डाउन्स के सिद्धान्त से परिचित हो सकेंगे।

10.2 विकास की प्रशासनिक अवधारणा

तुलनात्मक लोक प्रशासन के विश्लेषण आयामों का निरन्तर विकास होता रहा है। समाजशास्त्री तथा प्रशासनिक चिन्तक निरन्तर यह समझने का प्रयास करते रहे हैं कि विषम तथा विविधतापूर्ण प्रशासनिक व्यवस्थाओं में परिवर्तित क्यों और कैसे आते हैं। दो विश्व युद्धों ने सामाजिक विज्ञान से लेकर मनोविज्ञान तक प्रत्येक विषय का स्वरूप बदल दिया। लोक प्रशासन भी इससे अछूता नहीं रहा। परम्परागत लोक प्रशासन परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल नहीं रहा था। उसको नई दिशा की जरूरत थी। एडवर्ड वाइडनर ने इस वास्तविकता को समझ कर विकास प्रशासन की अवधारणा प्रस्तुत की। यह कोई नई बात नहीं थी। समाजशास्त्रियों की ओर से आर्थिक विकास में सामाजिक दृष्टिकोण को पहिचानने की वकालत पहले ही हो चुकी थी। बी0एफ0 होजलिट्ज, नील स्मेलजर तथा आर0डब्ल्यू0 मैक के ग्रंथ इस दिशा में प्रकाशित हो चुके थे। अब एक तार्किक धारणा यह बनी थी कि जब तक सामाजिक विकास नहीं होगा आर्थिक विकास अर्थहीन है और जब तक प्रशासनिक विकास नहीं होगा अन्य विकास संभव नहीं हैं।

विकास प्रशासन लोक प्रशासन का नया आयाम है। राजनीति तथा आर्थिक विकास के बदलते स्वरूप ने विकास प्रशासन को जन्म दिया है। समाज का आधुनिकीकरण, वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति, लोकतान्त्रिक राजनीति के नये तकाजे तथा शहरी और ग्रामीण विकास की नई मांगे विकास प्रशासन के लिये नये दरवाजे खोलती है। विकास प्रशासन को समझने से पहले संक्षेप में विकास को समझना होगा। विकास समाज की गतिशीलता है जो एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था की ओर अग्रसर रहती है। बाइडनर के अनुसार, विकास एक मनः स्थिति, प्रवृत्ति एवं दिशा है। बदलते रहना विकास की प्रकृति है। रिग्स के अनुसार, विकास एक व्यवस्था की उस क्षमता में वृद्धि है, जिसके अनुसार वह अपने भौतिक, मानवीय तथा सांस्कृतिक पर्यावरण को अपनी इच्छानुसार आकार देती है। विकास का अर्थ मात्र आर्थिक विकास या आर्थिक वृद्धि(Economic Growth) नहीं है। यह भौतिकवादी नजरिया है। विकास बहुआयामी होता है। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक सभी प्रकार के विकास अनिवार्य हैं और नई अवधारणा यह है कि अब यह विकास प्रशासनिक विकास पर टिके हुये हैं।

विकास प्रशासन के दो अर्थ हैं। प्रथम, विकास गतिविधियों के प्रशासन तथा बहुआयामी विकास के लिये निर्मित नीतियों के क्रियान्वयन के तरीके से लिया जाता है। दूसरे, प्रशासनिक क्षमताओं में वृद्धि विकास है। इन दोनों का एक- दूसरे के सम्बन्ध है। विकास प्रशासन के विश्लेषण का केन्द्रीय बिन्दु सरकारीतंत्र की क्षमता है। बहुआयमी विकास के लक्ष्यों को पाने के लिये प्रशासनिक कुशलता एक अहम भूमिका अदा करती है। इसके लिये नियोजित तकनीकें एवं सिद्धान्त अपनाये जाते हैं। इसलिये विकास प्रशासन को नियोजित(planned) परिवर्तन माना गया है। विकास प्रशासन चार 'P' पर टिका हुआ है: P- Planning या योजना, P- Policy या नीति, P- Programme या कार्यक्रम तथा P- Project या परियोजना। विकास प्रशासन जनता के लिए जनता के सहयोग से चलता है। विकेन्द्रीकरण और सहभागिता इसका मूल मंत्र है। यह कल्याणकारी है और मानवीय है। जनता तथा विकास प्रशासन एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं।

10.3 प्रशासनिक विकास का लक्ष्य

प्रशासन को गतिशील, क्रियाशील और तर्कसंगत बनाये रखना प्रशासनिक विकास के अन्तिम लक्ष्य हैं। प्रशासनिक विकास नवीनीकरण में विश्वास रखता है। वह परम्परावादी प्रशासन की कमियों को सुधारता है। वह परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को ढालता है। जहाँ विकसित समाजों की गति का वह कारण है वहाँ

विकासशील देशों में भी वह ऐसा ही विकास लाना चाहता है। वह आधुनिकीकरण तथा नवीनीकरण का माध्यम है जिसकी नकल विकासशील देश करते हैं। विकास प्रशासन एक विषय है। यह तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययन का परिणाम है और इसलिए यह प्रशासनिक विकास का एक अभिन्न अंग है। संक्षेप में प्रशासनिक विकास पाँच तत्वों पर टिका हुआ है-

1. प्रशासनिक विकास, विकास प्रशासन का एक अभिन्न अंग है;
2. प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार इसका लक्ष्य है ताकि एक अर्थपूर्ण सार्थक नतीजा निकल सके;
3. यह प्रशासन की परम्परागत प्रक्रियाओं, पद्धतियों एवं नियमों में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन लाने का प्रयास करता है;
4. प्रशासनिक क्षमता, कुशलता तथा गतिशीलता में वृद्धि इसका लक्ष्य है; तथा
5. यह बहुआयामी विकास की माँगों को पूरा करने का प्रयास करता है।

10.4 प्रशासनिक विकास की प्रकृति

विकास प्रशासन अध्ययन और विषय की दृष्टि से प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन का नतीजा है और अब यह लोक प्रशासन का एक अंग माना जाता है। त्वरित विकास, परम्परागत प्रशासन की कमजोरी, विदेशी तकनीकी सहायता तथा विविध आवश्यकताओं की तीव्रता ने इसके महत्व को बढ़ा दिया है, इसीलिये जरूरी है कि विकास प्रशासन की प्रकृति को पहले समझा जाऐ। इसकी प्रकृति से सम्बन्धित सात विशेषताऐं सामने आती हैं जो इस प्रकार हैं-

1. त्वरित विकास(Rapid development) के लिए नवोदित राष्ट्रों की जो पहली माँग थी तथा जो विकसित राष्ट्रों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना चाहते हैं ऐसे देशों में एक नियोजित कार्यक्रम की आवश्यकता होती है, जिसको क्रियान्वित करने तथा उनमें गतिशीलता लाने का काम विकास प्रशासन कर सकता है।
2. परम्परागत विकास तथा परम्परागत प्रशासन में अन्तरद्वन्द के कारण विकास की प्रक्रिया धीमी पड़ जाती है। ऐसी स्थिति में विकास प्रशासन परिवर्तित माहौल के अनुसार क्रियाशील होकर विकास को गति देता है।
3. विकास प्रशासन विदेशी तकनीकी सहायता पर निर्भर करता है। वह विकसित देशों में होने वाले नित-नये प्रशासनिक प्रयोगों और उनके परिणामों का लाभ उठाता है।
4. तुलनात्मक प्रशासन के अध्ययन ने विकास प्रशासन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन की नींव डाली है। तुलनात्मक प्रशासन सिद्धान्तों तथा प्रतिमानों (मॉडलों) का नमूना है जिसका लाभ विकास प्रशासन उठाता है।
5. परिवर्तन के अनुकूल ढालना विकास प्रशासन की मूल प्रकृति है। विकास स्थिर या निश्चल (Static) नहीं है। वह परम्परावादी भी नहीं है। गतिशीलता उसका लक्षण है। परिस्थितियों के अनुकूल चलना उसका स्वभाव है।
6. नियोजित प्रयास के माध्यम से विकास प्रशासन परिवर्तन लाता है।
7. जन-सहभागिता पर आधारित होना विकास प्रशासन की एक विशेषता है। वह जनकल्याण के लिए है और प्रशासनिक नीतियों, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं को मूर्त रूप देने के लिये जन सहयोग पर निर्भर करता है। इन सात विशेषताओं के अतिरिक्त विकास प्रशासन लक्ष्योन्मुख होता है। निर्धारित लक्ष्यों की एक समय सीमा में प्राप्ति उसकी प्रकृति है। विकास प्रशासन न तो पलायनवादी है तथा न लक्ष्यों और प्रकार्यों के प्रति उदासीन। वह उत्तरदायी है और जिम्मेदारी के साथ अपने कर्त्तव्य को परिस्थितियों के

अनुसार निभाता है। विकास प्रशासन प्रगतिशील है; वह श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर की ओर बढ़ता है। वह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तकाजों को पूरा करने के लिए कटिबद्ध है।

10.5 विकास प्रशासन का क्षेत्र

प्रशासन तथा विकास प्रशासन में अन्तर करना कठिन है। यदि सैद्धान्तिक नजरिये से ऐसा कोई अन्तर किया भी जाए तो केवल कह सकते हैं कि प्रशासन सामान्य शब्द है जबकि विकास प्रशासन विशिष्ट। दोनों का कार्यक्षेत्र एक है, दोनों का लक्ष्य एक है। सभी प्रशासनिक अभिकरणों(Agencies) का विकास से सम्बन्ध है। कुल मिलाकर विकास प्रशासन का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, जिसको अनेक भागों में बाँटा जा सकता है, जो इस प्रकार है-

1. **सामान्य प्रशासन के अभिकरण-** शासकीय नीतियों के निर्धारण, राजनीतिक तथा प्रशासनिक मुद्दों के मध्य समन्वय तथा प्रशासनिक प्रकार्यों का निर्देशन, उन पर नियंत्रण तथा उनका निरीक्षण सामान्य प्रशासन के अभिकरणों की परिधि में आता है।
2. **प्रशासनिक विकास के अभिकरण-** प्रशासनिक संरचना, प्रशासनिक संगठन (विभाग, अनुभाग) तथा इनसे सम्बन्धित कार्मिक(Personnel) प्रशासन, उनकी भर्ती, उनका चयन तथा उनमें दक्षता के आधार पर उत्तरदायित्वों का बँटवारा प्रशासनिक विकास अभिकरण के अन्तर्गत आते हैं।
3. **नियोजन-परिवर्तन तथा प्रशासन-** विकास प्रशासन के अभिकरण आर्थिक, सामाजिक परिवर्तन के लिये नियोजन के माध्यम से लक्ष्यों की प्राप्ति करते हैं। इन अभिकरणों में योजना आयोग (अब नीति आयोग), राज्य योजना विभाग तथा समाज कल्याण विभाग आते हैं। 2016 से पूर्व पंचवर्षीय योजनाऐं देश के त्वरित आर्थिक और सामाजिक विकास के उद्देश्यों की पूर्ति करने में सफल रही थी।
4. **संगठन-कार्मिक वर्ग तथा प्रशासन-** विकास प्रशासन का सबन्ध केवल विकास के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से ही नहीं है वह प्रशासनिक संगठनों की आन्तरिक कार्य क्षमता बढ़ाने के साथ उनकी भर्ती, नियुक्ति, प्रशिक्षण, प्रोन्नति तथा पदस्थापन से सम्बन्धित समस्याओं का भी निबटारा करता है।
5. विकास प्रशासन के मानवीय पहलू- विकास प्रशासन के अध्ययन में समाज तथा समाज से सम्बन्धित पहलू जिनका रिश्ता मानवीय विकास तथा मानव कल्याण से हो सम्मिलित किये जाते हैं। आर्थिक नियोजन का लक्ष्य यही है।
6. विकास प्रशासन मानव संसाधनों की दृष्टि से- शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक न्याय, महिला सशक्तिकरण, सुरक्षा, रोजगार इत्यादि जैसे-बहुआयामी क्षेत्र विकास प्रशासन की परिधि में आते हैं। संक्षेप में विकास प्रशासन का क्षेत्र बहुत विकसित है। यह कल्याणकारी राज्य की भावना को मूर्त रूप देता है।

10.6 विकास प्रशासन के घटक

विकास प्रशासन तुलनात्मक प्रशासन का नवीनतम् विषय है। यदि विकास प्रशासन का कोई प्रतिमान (मॉडल) स्वीकार किया जाता है तब उसके कुछ घटकों का निर्धारण करना होगा। इस दृष्टि से प्रशासनिक चिन्तकों ने विकास प्रशासन के जो घटक तय किए हैं, वे इस प्रकार हैं-

1. **लोकतांत्रिक मूल्य-** लोकतांत्रिक संस्कृति पर प्रशासनिक विकास का टिका रहना वास्तव में लोकतांत्रिक मूल्य हैं। व्यस्कमताधिकार, राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा समानता, राजनीतिक संस्थाओं में भागीदारी तथा असहमति यह वे मूल्य हैं जो प्रशासनिक विकास का आधार बनते हैं।
2. **लोक कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना-** आधुनिक राज्य का लक्ष्य जनकल्याण है। भारतीय संविधान में दिये गये राज्य की नीति के निर्देशक तत्व जनकल्याण की भावना को अभिव्यक्त करते हैं।

3. **मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था-** यदि जनकल्याण या बहुआयामी विकास एक साध्य है तो मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था एक साधन है। अमेरिका का विकास वैज्ञानिक प्रबन्धन के कारण हुआ है। किसी देश के विकास की धीमी गति ढीले प्रशासन के कारण होती है।
4. **शक्तियों का विभाजन-** प्रशासनिक संरचना शक्तियों के विभाजन पर आधारित है, जो पदसोपान के सिद्धान्त में निहित हैं। विकास प्रशासन इस शक्ति विभाजन के प्रभाव पर टिका होता है।
5. **कल्याणकारी कानून तथा नीतियाँ-** कार्यपालिका का काम लोक कल्याणकारी नीतियाँ बनाना तथा व्यवस्था का काम इन नीतियों के बारे में कानून बनाना होता है। विकास प्रशासन का आधार यही नीतियाँ और कानून या नियम होते हैं।
6. **संसाधनों का महत्व-** आर्थिक, प्राकृतिक एवं मानव संसाधनों की उपलब्धि विकास प्रशासन को गतिशील और सुगम बनाती है।
7. **समाज के मूल्य तथा परम्पराऐं-** विकास प्रशासन समाज के तर्कसंगत मूल्यों तथा परम्पराओं पर टिका होता है। मूल्य एवं परम्पराऐं विकास की दिशा को तैय करते हैं।
8. **राजनीति का स्वरूप-** किसी समाज का स्वरूप क्या है? जनतन्त्रीय(लोकतंत्रीय), एकाधिकारिक या राजतन्त्रीय-प्रशासन की अवधारणा इस स्वरूप पर निर्भर करती है।
9. **जनतंत्रीय शर्तें-** राजनीतिक दबाव समूह, राजनीतिक सहभागिता, राजनीतिक समाजीकरण, स्वतन्त्र मीडिया, जनतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण, मौलिक अधिकार, मानव अधिकार, समाज के कमजोर अल्पसंख्यक तबकों के प्रति रुख, राजनीति का स्वाभाव (दलगत राजनीति तथा धार्मिक-जातीय धुव्रीकरण) यह ऐसे घटक हैं, जो प्रशासनिक विकास की प्रकृति का निर्धारण करते हैं।
10. **बहुआयामी भौतिक प्रगति-** वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति, औद्योगिक, कृषि एवं संचार प्रगति, वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता, मानवीय कौशल और क्षमता, राष्ट्रीय इच्छा शक्ति, स्वदेश प्रेम, नैतिक चरित्र का उत्थान (ताकि भ्रष्टाचार न बढ़े) तथा राष्ट्रीय एकता, साम्प्रदायिक सौहार्द तथा राष्ट्रीय मनोबल इत्यादि यह ऐसे तत्व हैं, जो प्रशासनिक विकास का आधार बनते हैं।

यूरोप तथा अमेरिका यदि विकसित कहलाते हैं, तो इसका कारण वहाँ उक्त सभी घटकों की अर्थपूर्ण मौजूदगी है और यहाँ यह स्पष्ट है कि तृतीय विश्व के विकासशील तथा अविकसित राष्ट्र प्रशासनिक विकास के इन घटकों को पाने के लिए संघर्ष करते नजर आ रहे हैं। इन्हीं घटकों से सम्बन्धित विकास प्रशासन के साधन हैं।

10.7 विकास प्रशासन के साधन

विकास प्रशासन के तीन प्रमुख साधन माने जाते हैं- प्रशासनिक सुधार, नवीनीकरण या नवाचार तथा स्वतः प्रशासनिक विकास।

1. **प्रशासनिक सुधार-** प्रशासन की गतिशीलता सतत् बनी रहती है। लेकिन कभी-कभी उसमें जड़ता आ जाती है जिसके कारण उसका रूप विकृत होने लगता है। ऐसी स्थिति में प्रशासन में कुछ सुधारों की आवश्यकता होती हैं। यह विकास प्रशासन की अनिवार्य शर्त है। विकास प्रशासन में सुधार लाने के लिए सुनियोजित प्रयास होते रहते हैं, जिनके फलस्वरूप संगठन और संरचना में परिवर्तन लाये जाते हैं। नई प्रशासनिक तकनीकें तथा पद्धतियां प्रयोग में लाये जाती हैं। नियमों तथा मानवीय व्यवहार में सुधार किया जाता है। कार्यशैली तथा लक्ष्यों को नया रूप दिया जाता है।
2. **नवीनीकरण या नवाचार-** नवीनीकरण के लिए तीन साधन अपनाये जाते हैं- नई तकनीक एवं नये विचार का अविष्कार अथवा नवीन विधियों का अविष्कार किया जाता है, इन अविष्कारों की स्वीकृति

ली जाती है; तथा इस स्वीकृति के बाद उसका व्यवहारिक उपयोग किया जाता है। ऐसा करना केवल आधुनिक समाज में संभव है, परम्परागत समाजों में नहीं।

3. **स्वतः प्रशासनिक विकास-** विकास एक ऐसी यांत्रिकी है, जिसके कारण विकास की प्रक्रिया स्वतः चलती रहती है। समय तथा परिस्थितियां भी प्रशासन को विकसित करती हैं। समाज का स्वभाव, संस्कृति, राजनीति, अर्थव्यवस्था, विज्ञान तथा तकनीकों के प्रभाव प्रशासन को प्रभावित करते हैं। इन परिस्थितियों से प्रशासन के विकास में गति आती है।

10.7.1 विकास प्रशासन का सार

प्रशासन और प्रशासनिक विकास में घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रशासन एक सामान्य शब्द है लेकिन विकास प्रशासन तक विशिष्ट अर्थ रखता है। जब राजकीय संगठनों द्वारा नीति और भौतिक लक्ष्यों की योजनाऐं क्रियान्वित होती हैं तो इसका कारण विकास प्रशासन होता है। विकास प्रशासन में प्रगतिशील राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक लक्ष्यों को पाने के मार्गदर्शन की प्रक्रिया को अपनाना होता है। विकास प्रशासन में विशेष ध्यान कार्य-परक(Action-oriented) एवं ध्येय-पर(Goal-oriented) प्रशासन प्रणाली पर रहता है। प्रशासन में परिवर्तन पर्यावरण में परिवर्तन के बिना नहीं लाये जा सकते हैं और पर्यावरण स्वयं परिवर्तित नहीं हो सकता, जब तक विकास कार्यक्रमों के प्रशासन को सुदृढ़ नहीं किया जाता। विकास प्रशासन का आधार सरकार की क्षमता है।

10.7.2 राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास

यदि आधुनिकीकरण(Modernisation) और विकास की बात की जाये तो इन दोनों को परिभाषित करना वास्तव में बहुत कठिन है। दोनों एक दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इसलिये दोनों को विभाजित करना मुश्किल है। लेकिन फिर भी पहले आधुनिकीकरण को समझना जरूरी है। आधुनिकीकरण का अगर अर्थ, आधुनिक समाज से लिया जाये तो फिर आधुनिक समाज को समझना होगा। पश्चिमी अर्थ में आधुनिक समाज की विशेषता है, शहरीकरण, साक्षरता, सामाजिक गतिशीलता तथा प्रौद्योगिकी का प्रयोग। वहाँ जीवन के यह आधुनिक रास्ते हैं अर्थात् पश्चिमी अर्थ में पारम्परिक समाज का विघटन और सामाजिक सम्बन्धों के प्रति धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण, जन मामलों में न्याय और इस विचार को स्वीकृति कि राष्ट्र-राज्य राजनीतिक संस्था(Polity) की पहली और सर्वोच्च इकाई है। पश्चिम में ऐसे आधुनिकीकरण का पहला चरण औद्योगिक क्रान्ति था जो समय के साथ पूरे विश्व में फैल गया। इसके बाद दूसरा चरण सुधार युग(Reformation Era) का था। यह दोनों चरण आधुनिकीकरण की अभिव्यक्ति थे, जिनके फैलाव को रोकना असंभव था। हनंटिगटन(Huntington) का कहना है कि आधुनिकीकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है जो मानव चिन्तन और क्रियाशीलन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन लाती है। उसके अनुसार शहरीकरण, औद्योगीकरण और धर्म-निरपेक्षीकरण आधुनिकीकरण तथा आधुनिक समाज की विशेषताऐं हैं। आधुनिकीकरण मूल्यों, अभिवृत्तियों और अपेक्षाओं में भी परिवर्तन हो जाता है।

साराँश में राबर्ट एवर्ड के शब्दों में ‘‘आधुनिकीकरण एक प्रक्रिया है, जो संसाधनों के तार्किक उपयोग पर आधारित है और जिसका उद्देश्य एक आधुनिक समाज की स्थापना करना है। यह एक ऐसी अवधारणा है, जिसके अन्तर्गत सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक और मनः सांस्कृतिक आयाम आते हैं। आधुनिक समाज का उद्देश्य राजनीतिक दृष्टि से समाज को गतिशील बनाना है। इसी स्थिति को विकास कहा जायेगा।

10.8 रिग्स की विकास की अवधारणा

रिग्स उन प्रशासनिक चिन्तकों में से है जिन्होंने सामाजिक व्यवस्थाओं के सन्दर्भ में विकास को तकनीकी शब्दावली के माध्यम से परिभाषित किया है। उदाहरण के लिये उसने विकास को परिभाषित करने के लिये

'विवेकशीलता' (Discretion) तथा 'विवर्तन'(Diffraction) जैसी शब्दावली का प्रयोग किया है। उसके अनुसार विकास सामाजिक व्यवस्थाओं की बढ़ती हुई स्वायत्तता की एक प्रक्रिया है, जो विवर्तन के उठते हुए स्तर से सम्भव होती है।' वह विवेकशीलता को ही स्वायत्तता के रूपमें लेता है। विवेकशीलता क्या है? रिग्स के अनुसार, विवेकशीलता विकल्पों में से चुने जाने का कौशल है जबकि विवर्तन (बहुरंगी पैटर्न में विभाजन) एक समाज में अवकलन(Differentiation) या भेदात्मक और एकीकरण के स्तर को दर्शाता है। परिस्थितिकीय दृष्टिकोण से विकास एक ऐसी बढ़ती हुई क्षमता है, जो पर्यावरण को प्रभावित करने वाले सामूहिक निर्णय लेती है तथा उनको क्रियान्वित करती है। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि रिग्स अन्तरता या अवकलन और एकीकरण को विकास की प्रक्रिया के दो प्रमुख तत्व मानता है।

अवकलन का अर्थ है, एक ऐसी स्थिति का अस्तित्व जिसमें प्रत्येक प्रकार्य को पूरा करने के लिए एक विशिष्ट संरचना मौजूद होती है। दूसरी ओर एकीकरण का अर्थ है, एक ऐसी यांत्रिकी जो विभिन्न प्रकार की विशिष्ट भूमिकाओं को एक-दूसरे से जोड़े, उनको मिलाये, उनको गूंथे और उनमें समन्वय पैदा करे। अवकलन तथा एकाकीरण के स्तर विकास की विवर्तनीय(diffracted) तथा प्रिज्मीय (प्रिज्मीय, एक त्रिकोणीय व्यवस्था है जिसका रूप इन्द्रधनुष जैसा है, जिसमें से तिरंगी किरणें फूटती है) स्थितियाँ होती हैं। यदि समाज में पूरी तरह भिन्नता है, लेकिन एकीकरण में कमजोरी या कमी है, तो यह प्रिज्मीय समाज है। विवर्तनीयता विकास को आगे बढ़ाती है और विवर्तनीयता तथा एककीकरण का जितना उच्चतर स्तर होगा, उतना उच्चतर विकास का स्तर होगा तथा जितना निम्नस्तर इनका स्तर होगा, उतना कम विकास होगा। इसी तरह रिग्स के अनुसार, विवर्तनीयता तथा एककीकरण के मध्य विकृत तारतम्यता प्रिज्मीय स्थितियों के विभिन्न स्तरों के रूप में प्रकट होती हैं।

रिग्स ने विवर्तनीयता और एकीकरण के बदलते हुये स्तरों के मध्य दो रेखाऐं खींची हैं। यहाँ वह यह सिद्ध करता है कि दोनों के मध्य एक विकर्ण(Diagonal) है। यह विकर्ण उस एककीकरण के उस आदर्श स्तर को प्रस्तुत करता है जो उन विषमताओं को संभालने का काम करता है और जो विवर्तनीय भूमिकाओं में समन्वय लाने के लिये जरूरी है। इसके लिये वह प्रत्येक भूमिका को पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान करता है, ताकि वह सफलता के साथ विभिन्न प्रकार्यों का निष्पादन कर सके। रिग्स ने परिकल्पनात्मक आधार पर कुछ ऐसे काल्पनिक समाजों को प्रस्तुत किया है, जो अधिक से अधिक विवर्तनीय हैं और जो परिवर्तनों से उत्पन्न समस्याओं पर सफलता पाये बिना अधिकाधिक भिन्न होते जाते हैं।

10.9 रिग्स की विकास अवधारणा का तकनीकी सार

रिग्स न तो इंजीनियर था और न ही भौतिकी वैज्ञानिक, लेकिन उसे विकास के सन्दर्भ में अपने दृष्टिकोण को सिद्ध करने के लिये वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के प्रयोग करने का एक जूनून था। उदाहरण के लिये वह विवर्तन (differention) एककीकरण(integration) जैसे शब्दों के अतिरिक्त 'भेदन' या 'वेद्यन'(penetration), भागीदारी (Participation), प्रिज्मैटिक(Prismatic) आदि जैसे शब्दों का भी प्रयोग विकास से सम्बन्धित अपने प्रतिमानों को गढ़ने के लिये करता है। नतीजा यह है कि उसका नजरिया अस्पष्ट और उलझा हुआ नजर आता है।

उदाहरण के लिये, रिग्स के अनुसार, किसी भी देश में विवर्तन का स्तर प्रौद्योगिकीय तथा गैर-प्रौद्योगिकीय कारकों पर निर्भर करता है। प्रौद्योगिकी का जितना अधिक विकास होगा, विवर्तन का स्तर उतना ही ऊँचा होगा। रिग्स का तर्क है कि एकीकरण दो महत्वपूर्ण कारकों पर निर्भर करता है। अर्थात् भेदन(Penetration) और भागीदारी(Participation) पर। भेदन सरकार की वह क्षमता या योग्यता है, जिसके आधार पर वह (सरकार) निर्णय लेती है तथा उन्हें पूरे देश में लागू करती है। भागीदारी का अर्थ है कानून की ग्रहणशीलता(Receptivity) तथा शासन ने जो कानून बनाये हैं उनके क्रियान्वयन कराने में मदद करने की इच्छा। इस तरह जहाँ भेदन का सम्बन्ध शासन से है, वहीं भागीदारी का सम्बन्ध जनता से है।

भागीदारी के दो महत्वपूर्ण तत्व हैं- इच्छा और क्षमता। अर्थात जन-समाज में सरकारी नीतियों और कानूनों को लागू कराने की अपनी इच्छा तथा क्षमता का प्रदर्शन करना। रिग्स के अनुसार लोगों में भागीदारी की जितनी अधिक इच्छा और क्षमता होगी सरकारी मामलों में भागीदारी का स्तर उतना ही ऊँचा होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि वेद्यन या भेदन और भागीदारी विवर्तनीय संरचनाओं के एककीकरण को आसान बनायेगी और नतीजा यह होगा कि अन्तिम उद्देश्य अर्थाथ विकास सम्भव होगा।

10.10 मूल्यांकन

विकास एक ऐसा विषय है जिसके बारे में सामाजिक विज्ञानों के विद्वानों ने अपना दृष्टिकोण अपने विषय-क्षेत्र के सन्दर्भ में रखा है। अर्थशास्त्रीयों ने आर्थिक वृद्धि के सन्दर्भ में विकास को लिया है। समाजशास्त्रीयों ने सब से पहले विकास के सामाजिक पहलुओं को उजागर किया। इन समाजशास्त्रियों में बी0एफ0 होजीलट्ज, नील जे स्मेलजर तथा आर0डब्ल्यू0 मैक का नाम लिया जा सकता है। इन विद्वानों ने आर्थिक और सामाजिक विकास को एक साथ बाँधने का प्रयास किया है। विकास से सम्बन्धित अनेक सिद्धान्त भी रचे गये जिनमें प्रकार्यात्मक तथा द्वन्दात्मक दृष्टिकोणों को महत्व दिया गया है।

लेकिन लोक प्रशासन में तुलनात्मक अध्ययन के साथ लोक प्रशासन का सम्बन्ध तुलनात्मक लोक प्रशासन से जुड़ गया, जिसके फलस्वरूप विकास प्रशासन का नजरिया सामने आया। विकास प्रशासन तथा प्रशासनिक विकास एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। विकास प्रशासन एक शास्त्रीय विषय है (अकादमिक) जिसके कुछ सिद्धान्त हैं, लेकिन प्रशासनिक विकास एक प्रक्रिया है जो विकास प्रशासन पर टिकी हुई है। एडवर्ड वाइजनर ने सबसे पहले विकास प्रशासन की अवधारणा प्रस्तुत की। विकास प्रशासन लोक प्रशासन का नया आयाम है। आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं के बदलते स्वरूपों ने विकास प्रशान को जन्म दिया है। वाइडनर का यह कथन समझाने के योग्य है कि ''विकास एक मनः स्थिति, प्रवृत्ति एवं दिशा है।'' विकास बहुआयामी होता है और अब स्थिति यह है कि विकास, विकास प्रशासन की गति पर टिका हुआ है। विकास प्रशासन आधुनिकीकरण तथा नवीनीकरण में विश्वास रखता है। उसके कुछ निश्चित लक्ष्य हैं, उसकी अपनी प्रकृति है तथा उसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसी तरह विकास प्रशासन के कुछ घटक हैं तथा उसके अपने कुछ लक्ष्य हैं। इन सारी बातों ने विकास प्रशासन का अपना एक सिद्धान्त और मॉडल तैयार किया है, जिस पर आज सामान्य प्रशासन टिका हुआ है।

लेकिन यहाँ यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रशासन, विकास प्रशासन तथा प्रशासनिक विकास की अवधारणाऐं एक- दूसरे से इतनी उलझ गई हैं कि उन्हें सुलझाना कभी-कभी कठिन लगता है।

भाग- 2 डाउन्स मॉडल

10.11 ऐन्थानी डाउन्स: एक परिचय

ऐन्थॉनी डाउन्स को एक अर्थशास्त्री, राजनीतिशास्त्री तथा एक प्रशासनिक चिन्तक की हैसियत से जाना जाता है। उसका जन्म 21 नवम्बर 1930 को वांशिंगटन, संयुक्त राज्य अमेरीका में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा कार्टेलन कॉलिज तथा स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में हुई। उसका अध्ययन-क्षेत्र पब्लिक एकोनॉमी तथा राजनीति विज्ञान था लेकिन मूल रूप से वह एक अर्थशास्त्री था और अर्थशास्त्र के नजरिये से ही उसने लोक प्रशासन तथा राजनीति का विश्लेषण किया। उसके सिद्धान्तों पर जोजेफ शुमपीटर, जूलियस मारगोलिस, के0 नेथ, जे0 ऐरो तथा मैक्स वेबर का गहरा प्रभाव पड़ा। उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'An Economic Theory of Democracy' (1957) है। इस ग्रन्थ में उसने लोकतंत्रीय व्यवस्था में लोगों के मतदान रीति(Voting Pattern) का विश्लेषण किया है और वह इस नतीजे पर पहुँचा है कि कुल मिलाकर अकेले या सामुहिक रूप से मतदाता स्वःहित(Self-Interest)

से प्रेरित होकर मतदान करते हैं। उसके इस नतीजों को पश्चिमी लोकतंत्रों में बहुत मान्यता मिली। डाउन्स लोक प्रशासन का भी विद्यार्थी रहा था। इस क्षेत्र में उसका योगदान अद्वितीय है। उसने अपने शोध प्रबन्ध 'Inside Bureaucracy' (1967) में नौकरशाही से सम्बन्धित अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जिसको 'डाउन्स मॉडल' कहा जा सकता है, यद्यपि वह अपने सिद्धान्त को मॉडल कहना पसंद नहीं करता है। इस प्रबन्ध में उसने मूल रूप से 'ब्योरोज'(Bureaus) का विश्लेषण निर्णय-निर्माण के सन्दर्भ में किया है। डाउन्स ने अमरीका के प्रसिद्ध संस्थानों में उच्च पदों पर काम किया, जिनमें Brooking Institutions, Rand Corporation हैं। उसने लगभग 24 पुस्तकों तथा 500 से अधिक लेखों एवं शोध प्रबन्धों की रचना की। 86 वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया।

10.12 डाउन्स की नौकरशाही की अवधारणा

एन्थॉनी डाउन्स ने अपने शोध प्रबन्ध(Inside Bureaucracy, 1964) में नौकरशाही पर अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। उसकी नजर में यह विडम्बना की बात है कि नौकरशाही को नफरत से देखा जाता है, जबकि ब्योरोज (Bureau) विभाग या कार्यालय विश्व के प्रत्येक देश में सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्थाऐं हैं। वे रोजगार का एक बड़ा स्रोत हैं और निर्णय-निर्माण का एक बड़ा साध्य हैं। इस तरह डाउन्स ने नौकरशाही पर अपने चिन्तन में 'ब्योरेज' को अपने अध्ययन का केन्द्रीय विषय बनाया है तथा उन्हें 'निर्णय-निर्माण'(decision-making) प्रक्रिया के सन्दर्भ में लिया है, क्योंकि उसकी नजर में ब्योरोज ही वे संस्थाऐं हैं, जो निर्णय-निर्माण के माध्यम से विश्व के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और यहाँ तक कि नैतिक जीवन की दिशाओं को तैय करती हैं। यहाँ यह याद रखना चाहिये कि यद्यपि डाउन्स 'नौकरशाही' का विश्लेषण करना चाहता है, लेकिन आज नौकरशाही एक नापसंदीदा शब्द है, इसलिये वह नौकरशाही के स्थान पर 'ब्योरोज' और 'आफिशियल्स'(Officials) कहना पसंद करता है।

10.12.1 ब्योरोज और निर्णय-निर्माण

मार्श, साइमन, ब्लाउ तथा स्कॉट के 'औपचारिक संगठनों' के नजरिये से प्रभावित होकर डाउन्स ने अपना नौकरशाही सम्बन्धी निर्णय-निर्माण सिद्धान्त पूर्वानुमयता के उद्देश्य से प्रस्तुत किया है। उसका यह सिद्धान्त उस मौलिक परिकल्पना पर आधारित है कि नौकरशाही वाले अधिकारी, समाज के अन्य प्रतिनिधियों के समान अपने निजी हितों से प्रेरित होते हैं। इस निष्कर्ष पर डाउन्स- एडम स्मिथ (अर्थशास्त्री), साइमेल, ट्रूमेन, राइकर, साइमन (राजनीतिशास्त्री) इत्यादि से प्रभावित है। उसके नौकरशाही सम्बन्धी निर्णय-निर्माण सिद्धान्त के चार भाग हैं- शब्दावली की परिभाषा, अनेक केन्द्रीय परिकल्पनाऐं, एक काल्पनिक पर्यावरण तथा पर्यावरण पर लागू परिकल्पनाओं पर आधारित प्रस्ताव।

10.13 ब्योरोज की परिभाषा तथा नौकरशाहों की प्रकृति

डाउन्स के अनुसार ब्योरोज संगठन का एक विशिष्ट प्रारूप है। इसलिये पहले संगठन को परिभाषित करना जरूरी है। उसकी नजर में संगठन दो या दो से अधिक व्यक्तियों की सजग समन्वित गतिविधियों या शक्तियों की एक व्यवस्था है। इस व्यवस्था को अस्तित्व में लाने का कारण एक विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति करना है। इस तरह एक संगठन एक ऐसा ब्योरो है जिसकी चार मौलिक विशेषताऐं हैं-

1. यह इतना बड़ा है कि सर्वोच्च स्तर के सदस्य व्यक्तिगत तौर पर संगठन के आधे से कम लोगों को जानते हैं।

2. इसके अधिकतर सदस्य पूर्णकालिक कर्मचारी होते हैं, जो अपनी आय के लिए संगठन की नौकरी पर निर्भर रहते हैं।
3. संगठन में कर्मचारियों की उपलब्धियों के आधार पर उनको सेवा में स्थायित्व और प्रोन्नति का अवसर मिलता है, भले ही यह बात सैद्धान्तिक हो।
4. संगठन के द्वारा होने वाले निर्गतन(Output) का किसी बाजार में परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से आंकलन नहीं किया जाता है।

ब्योरोज से सम्बन्धित इन चार विशेषताओं से जो तथ्य सामने आते हैं, उनका सार यह है कि बड़ा आकार होने के कारण ब्योरोज (विभाग) निर्वैव्यक्तिकरण की ओर अधिक बढ़ते हैं और परिणामस्वरूप अनेक प्रशासनिक समस्याओं का सामना करते हैं। पूर्णकालिक रोज़गार का अर्थ है कि ब्योरोज के सदस्य नीम हकीम (अल्प ज्ञानी) नहीं होते हैं, वे अपने कार्य में दक्ष तथा उसके प्रति बफादार होते हैं। उनका बाजार मूल्य(Market Value) होता है, वे प्रतिस्पर्धा में भागीदार होते हैं। जहाँ तक कर्मचारी उपलब्धियों से सम्बन्धित प्रोन्नति के मापदण्डों या नीतियों का प्रश्न है, सच यह है कि कर्मी(Personnel) पूरी तरह अपने वरिष्ठों पर निर्भर रहते हैं। नतीजा यह होता है कि कर्मी अपने व्यवहार को वरिष्ठों की मर्जी के अनुसार तथा उपलब्धियों को पाने की जिज्ञासा के अनुरूप ढालने का प्रयास करते हैं और अन्त में, ब्योरोज के कार्यों का बाजार में मूल्यांकन न होने का कारण लाभ विहीन नजरिया है। अर्थात् उनके द्वारा निष्पादित कार्य ध्येय की पूर्ति के लिए होते हैं न कि लाभ के लिए।

डाउन्स ब्योरोज की अपनी इस परिभाषा में सरकारी विभागों के अतिरिक्त गैर-सरकारी संस्थाओं जैसे रोमन कैथेलिक चर्च, कैलीफोरनिया विश्वविद्यालय, दि न्यूयार्क पोर्ट अथारिटी तथा चायनीज कम्यूनिस्ट आर्मी जैसे संगठनों को ब्योरोज का दर्जा देता है।

यहाँ डाउन्स यह भी स्पष्ट करता है कि नौकरशाह मात्र वे व्यक्ति नहीं होते हैं जो ब्योरोज़ के लिए काम करते हैं। डाउन्स ब्योरोज को भी परिभाषित करता है। उसके अनुसार यह वह लोग हैं, जो 1. एक बड़े आकार के संगठन के लिए काम करते हैं। 2. उस संगठन से वेतन प्राप्त करते हैं, जो उनकी आय का एक बड़ा भाग होता हैं। 3. उनके खूबी से काम करने की योग्यता(Performance) और उपलब्धियों के आधार उनकी भर्ती, पदोन्नति और सेवा अवधि का निर्धारण होता है। इस तरह कोई भी अधिकारी जिस पर उक्त चार बातें लागू होती हों भले ही वह कहीं भी काम करता हो ''नौकरशाह'' कहलाया जा सकता है।

यहाँ यह याद रखना होगा कि डाउन्स अपने विश्लेषण में शब्द ''नौकरशाह''(Bureaucrat) का प्रयोग नहीं करना चाहता। इसलिए नहीं कि यह शब्द अनादरपूर्ण है, लेकिन इसलिये कि इसका प्रयोग लोगों को अपमानजनक लगता है। डाउन्स नौकरशाह के स्थान पर शब्द ''अधिकारी''(Official) का प्रयोग करता है।

10.14 निर्णय निर्माण-सिद्धान्त और परिकल्पनाऐं

ब्योरोज के सन्दर्भ में डाउन्स का निर्णय-निर्माण सिद्धान्त अनेक केन्द्रीय परिकल्पनाओं पर आधारित है। यह इस प्रकार है-

अधिकारी (नौकरशाह) अपने ध्येयों की पूर्ति तर्क संगत तरीके से करते हैं। अर्थात् अपनी अधिकतम क्षमताओं और योग्यताओं के अनुसार सीमित साधनों तथा सूचना के दायरे में रहकर वे कार्यों का निबटारा करते हैं। इस तरह वे 'उपयोगिता को बढ़ाने वाले'(Utility maximizers) होते हैं। अर्थात् कम से कम लागत और समय में अधिकतम उपलब्धि उनका लक्ष्य होता है।

अधिकारियों के कुछ जटिल लक्ष्य होते हैं। इनमें शक्ति, आय, प्रतिष्ठा, सुरक्षा, सुगमता या सुविधा, वफादारी (विचार के प्रति, संस्था के प्रति, या राष्ट्र के प्रति), अति श्रेष्ठ कार्य से गर्व और जनहित के लिए सेवा भाव। इनको प्राप्त करना अधिकारियों के लक्ष्य होते हैं। कुछ अधिकारियों के बहुत छोटे लक्ष्य भी होते हैं। उदाहरण के लिये- 1.

विशुद्ध आत्म-हितकारी अधिकारी जो ऐसे लक्ष्यों के लिये काम करते हैं जो उनको लाभ पहुचाये न कि ब्योरेज या समाज को। ऐसे अधिकारी दो प्रकार के होते हैं, पहला- पर्वतारोही(Climbers) यहाँ अर्थ पर्वत से चढ़ने से नहीं है, अर्थात् वे अधिकारी जो अपनी शक्ति, आय और प्रतिष्ठा को दिन-रात बढ़ाये रखना अपना लक्ष्य समझते हैं। यह चालाकी से प्रोन्नति, अपना स्तर, अपनी स्थिति को बुलन्दियों तक ले जाते हैं। दूसरा- अनुदार(Conservers) यह अपनी सुरक्षा और सुविधा को बढ़ाने में लगे रहते हैं। यह यथास्थिति में विश्वास रखते हैं। यह परिवर्तन को अपनी स्थिति आय, प्रतिष्ठा के लिये खतरा समझते हैं। इसीलिए यह नवीनीकरण (Innovation) का विरोध करते हैं। 2. मिश्रित-प्रयोजन (Mixed-motive) अधिकारी- ये वे अधिकारी हैं, जो आत्म-हितों को जनहित मूल्यों से मिला लेते हैं। ऐसे अधिकारियों के तीन वर्ग हैं, पहला- उत्साही या जोशीले(Zealots), दूसरा- समर्थक(Advocates) और तीसरा- राजनीतिज्ञ(Statesmen)। उत्साही, संकुचित नीतियों के प्रति वफादार होते हैं लेकिन ऐसी नीतियाँ जो उनको लाभ पहुँचाये। समर्थक या वकालत करने वाले विस्तृत नीतियों का समर्थन करते हैं और राजनीतिज्ञ, राष्ट्र या समाज के प्रति वफादार होते हैं। लेकिन यह तीनों वर्ग कहीं न कहीं अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हैं। शक्ति प्राप्त करना, प्रभावित करना तथा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना इनका विशिष्ट लक्ष्य होता है।

10.15 डाउन्स की पर्यावरण की अवधारणा

डाउन्स के सिद्धान्त में अधिकारी जिस जगत में काम करते हैं, वह यथार्थवादी है। वह इस यथार्थवादी स्थिति को 'पर्यावरण' कहता है। इस पर्यावरण की अनेक शर्तें हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. सूचना पर्यावरण की एक अनिवार्य शर्त है। संगठन के संचालन के लिये सूचना का आदान जरूरी है, लेकिन सूचना का आदान महँगा होता है, क्योंकि यह आँकड़ों को प्राप्त करने में देरी लगाता है, जोखिम माँगता है, धन भी व्यय होता है।
2. निर्णय-निर्माताओं की क्षमताऐं सीमित होती हैं। वे निर्णय-निर्माण में अधिक समय नहीं लगा सकते। उनके सामने निर्णय लेते समय अनेक मुद्दे होते हैं और जो आँकड़े उनको मिलते हैं, आवश्यक नहीं वे उनके लिये उपयोगी हों।
3. यद्यपि सूचना प्राप्त करके कुछ अनिश्चितता दूर की जा सकती है, लेकिन एक सीमा के बाद मूल अनिश्चितता निर्णय निर्माण में बांधा बनती है। इस तरह डाउन्स जिस पर्यावरण की बात करता है, वह भौगोलिक नहीं है, बल्कि संगठन का आन्तरिक पर्यावरण है जो, निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। सार यह है कि संगठन या ब्योरोज में निर्णय-निर्माण के लिये बाहर से सूचनाऐं आती हैं, जिनका सम्बन्ध आँकड़ों से होता है।

10.16 ब्योरोज की पदसोपनीय संरचना

यद्यपि डाउन्स, वेबर के आदर्श नौकरशाही के मॉडल से पूरी तरह सहमत नहीं है, लेकिन उसने वेबर के पदसोपनीय सिद्धान्त को स्वीकार किया है। वह पदसोपानीय संरचना को ब्योरोज का अनिवार्य कारक मानता है। उसके अनुसार दो कारणों से ब्योरोज की पदसोपनीय संरचना होनी चाहिए। प्रथम, ऐसी संरचनाऐं उन टकरावों को रोकने के लिए जरूरी हैं, जो बड़े संगठनों में समन्वित गतिविधियों की उपज होती है। द्वितीय, ब्योरोज अधिकारियों के विभिन्न ध्येय, यथार्थ को देखने के विभिन्न नजरिये, उनके व्यवहार तथा उनकी तकनीकी अर्हताऐं टकराव का कारण होते हैं। डाउन्स के अनुसार इन टकरावों को रोकने के लिये ब्योरोज की कोई यांत्रिकी होनी चाहिये, जो चन्द वरिष्ठों के हाथों में हो। इस स्थिति को प्राप्त करने का साधन केवल पदसोपनीयता ही हो सकती है। जैसे-जैसे संगठन बड़े से बड़ा होता जाये, वरिष्ठों के सत्ता स्तर बनने चाहिये, ताकि वे निम्न स्तर के टकरावों को दूर कर सकें।

पदसोपानीय संगठन के पक्ष में दूसरा तर्क है, प्रभावशाली संचार की आवश्यकता। संगठन के सदस्यों में एक-दूसरे के व्यवहार या कार्य-विधि की जानकारी होना अनिवार्य है, लेकिन सब अन्य सब की जानकारी रखें, यह सम्भव नहीं है। इसीलिये एक यांत्रिकी होनी चाहिए जो केवल पदसोपानीय व्यवस्था ही प्रदान कर सकती है। डाउन्स ने इस विषय पर विस्तार से चर्चा की है तथा पदसोपानीयता को संगठन के वास्तविक साध्य का एक प्रभावशाली साधन माना है। डाउन्स के अनुसार पद सोपानीयता के अनेक रूप हो सकते हैं। इनमें दो बहुत महत्वपूर्ण हैं। पहला- लम्बे पदसोपान (Tall hierarchies) जिनमें नियंत्रण के विस्तार तंग, लेकिन पद(Levels) अनेक होते हैं। दूसरा- 'समतल' पदसोपान (Flat hierarchies) जिनमें नियंत्रण के विस्तार चौड़े और पद कम होते हैं।

1. लम्बे पद सोपानों की आवश्यकता वहाँ होती है, जहाँ संगठनों में टकराव की सम्भावना अधिक होती है। ऐसे संगठन बड़े विषम होते हैं। उनको परिभाषित करना कठिन होता है। उनके पर्यावरण अनिश्चित होते हैं। उनके कर्मी बहुत विशिष्ट होते हैं। यहाँ तकनीकी नवीनीकरण की प्रक्रिया तीव्र होती है। अनेकता और भिन्नता अधिक होती है।
2. समतल पदसोपान वहाँ अनिवार्य है, जहाँ टकराव की सभावना कम होती है। समतल पदसोपान ऐसे ब्योरोज की जरूरत हैं, जहाँ साधारण, सरल और परिभाषित प्रकार्य हों। जहाँ स्थायी पर्यावरण हो तथा कम विशिष्टता प्राप्त कर्मी हों। जहाँ आन्तरिक तकनीकों में स्थायित्व हो तथा समानुरूप सदस्यता हो।

समतल पद सोपान व्यवस्था विकेन्द्रीकरण की विशेषता है लेकिन लम्बे पदसोपान पूरी तरह केन्द्रित ब्योरोज की विशेषता होती है।

10.17 ब्योरोज पदसोपानों में संचार और नियन्त्रण की समस्याऐं

ब्योरोज पद सोपानों में जो समस्याऐं पैदा होती हैं, डाउन्स उन्हें संचार (Communications) और नियंत्रण की समस्या कहता है। उसके अनुसार आधुनिक ब्योरोज की विषम पदसोपानीय व्यवस्थाऐं आँकड़ा-संकलन पद्धतियों के रूप में काम करती हैं और उनकी बनावट कुछ ऐसी होती है कि वह केवल अनिवार्य सूचना को उच्चस्तरीय अधिकारियों तक पहुँचाती हैं ताकि वे महत्वपूर्ण नीतियों का चयन कर सकें। पदसोपान के प्रत्येक स्तर पर सूचनाओं की काटछाँट होती है और वे ही सूचनाऐं निर्गत होती है जो निर्णय निर्माण के लिये अति आवश्यक होती हैं।

ब्योरोज पदसपोनों में दूसरी समस्या निर्देशित-विकृतिकरण(Directive-Distortion) या तोड़ने-मरोड़ने की है। डाउन्स के अनुसार ब्योरो पदसोपान में आदेश तथा निर्देश नीचे की ओर जाते हैं। होता यह है कि उच्चतम अधिकारी सम्पूर्ण ब्योरो के लिए एक लक्ष्य निर्धारित करता है, क्योंकि उसके पास न तो समय होता है और न अनिवार्य सूचना, इसीलिये वह केवल सामान्य(General) खाका प्रस्तुत करता है। इस खाके की बारीकियाँ मातहतों(अधीन) पर छोड़ दी जाती है। मातहत उस सामान्य खाके को हर स्तर पर अधिक विशिष्ट बनाते चलते हैं। यहाँ उन्हें औचित्य के प्रयोग की छूट होती है। लेकिन यहाँ होता यह है कि मातहत औचित्य की शक्तियों का प्रयोग अक्सर अपने निजी हित के लिए करने लगते हैं, यद्यपि वे औपचारिक कार्यों की पूर्ति भी करते हैं। अतः ऊपर से निचले स्तर तक विकृतीकरण (Distortion) की समस्या पैदा होने लगती है। यहाँ तक कि निर्धारित तथा निर्देशित लक्ष्य अधिक से अधिक विकृत हो जाता है। उच्चतर अधिकारी के मौलिक ध्येय में निम्न स्तर के अधिकारियों की इच्छाऐं शामिल हो जाती हैं और इस तरह लक्ष्य का स्वरूप बदल जाता है। अपने इस विश्लेषण में डाउन्स जिन नतीजों पर पहुँचता है, वे इस प्रकार हैं-

1. बड़े संगठन में मातहतों के व्यवहार को उच्च स्तर के अधिकारी नियन्त्रित नहीं कर सकते। यहाँ टकराव की सम्भावना बनती है, विशेष रूप से ध्येयों के मामले में। इस तथ्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्योरोज की प्रत्येक इकाई पर प्रभावशाली नियन्त्रण नहीं रखा जा सकता। यहाँ डाउन्स दो नतीजों पर

पहुँचता है, पहला- किसी ब्योरो को संगठित करने का कोई प्रभावशाली तरीका नहीं है। बड़े संगठनों में नियन्त्रण की समस्या बड़ी जटिल होती है। दूसरा- प्रत्येक ब्योरो के नेता(leaders of organisation) बाहरी जाँच-पड़ताल से डरते हैं। जाँच-पड़ताल से किसी ऐसे व्यवहार का पता लगता है जिस से ब्योरो के औपचारिक लक्ष्य के साथ टकराव होना अनिवार्य बन जाता है, लेकिन जाँच-पड़ताल के डर से ब्योरोज में पारस्परिक टकराव की सम्भावना कम हो जाती है। यह ब्योरोज के जीवित रहने के लिये जरूरी है। इसके अतिरिक्त जाँच-पड़ताल का डर ब्योरोज के अधिकारियों को काम या संगठन के प्रति ज्यादा वफादार बना देता है।

2. डाउन्स पदसोपानों में संचार और नियन्त्रण की समस्याओं से दूसरा नतीजा यह निकालता है कि किसी भी ब्योरो से 'फालतू'(Waste) को दूर करना नितांत गैर-जरूरी है। 'फालतू' से यहाँ अभिप्राय ऐसे कामों, सूचनाओं, आँकड़ों इत्यादि से हैं जो समय को बर्बाद करते हैं या अनुपयोगी होते हैं। डाउन्स का कहना है कि कोई भी मानव संगठन शत-प्रतिशत अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये एक सीमा तक 'फालतू' अपरिहार्य है। इससे यह नतीजा भी निकाला जा सकता है कि प्रत्येक ब्योरो पूर्ण नहीं है तथा संगठन का प्रत्येक व्यवहार अनिवार्य नहीं है।

10.18 ब्योरोज के गतिज: उनका जीवन चक्र

डाउन्स अपने सिद्धान्त में ब्योरोज की गतिशीलता या गतिज(Dynamics) की बात करता है और यह समझाने का प्रयास करता है कि किस तरह ब्योरोज अस्तित्व में आते हैं। उसके अनुसार ब्योरोज पैदा नहीं होते, वे बनाये जाते हैं। इनके बनाने वाले कुछ उत्साही(Zealots) लोग होते हैं, जो एक विशेष विचार को पर्याप्त सहयोग के माध्यम से ब्योरोज के रूप में साकार करते हैं। ब्योरोज वास्तव में आधुनिक समाजों की देन है, क्योंकि ऐसे समाजों में उत्साहियों को अपने 'विचार'(Idea) साकार करने का मौका और प्रोत्साहन मिलना आसान होता है। ब्योरोज के अस्तित्व में आने के लिये दूसरी शर्त उचित माहौल या पर्यावरण का होना है। अर्थात्, अनुकूल उदित परिस्थितियाँ (Exogenous conditions) नये ब्योरोज के लिये अपरिहार्य हैं। इस तरह 'उत्साही' अनुकूल पर्यावरण में अपने विचारों को ब्योरोज के रूप में साक्षात करते हैं। डाउन्स के अनुसार उत्साही चार तरीकों(Ways) से ब्योरोज का निर्माण करते हैं-

करिश्मे का उपयोग करके, जिसका समर्थन मैक्स वेबर ने भी किया है। यहाँ उत्साहित करिश्माई नेता होते हैं, जो अपनी निजी क्षमताओं को ब्योरोज में बदल देते हैं।

एक स्थापित ब्योरो को दो भागों में बाँट कर यहाँ उत्साही किसी स्थापित ब्योरो के सदस्य होते हैं, लेकिन वे उसी ब्योरो में एक पृथक अनुभाग स्थापित करके अपने विचार को मूर्त रूप देते हैं। यहाँ तक कि यह अनुभाग स्वयं एक स्वायत ब्योरो बन जाता है, क्योंकि इसको बाहरी समर्थन मिलता है।

उत्साहियों द्वारा अपने नये विचार को साकार करने के लिये उद्यमकर्ता-सम्बन्धी(Entrepreneurial) विकास का सहारा लेना पड़ता है। यहाँ अर्थ यह है कि एक नया उद्यमी अपनी योजना को साकार करने के लिये जिस तरह जोखिम उठाता है वैसे ही उत्साही नये ब्योरोज के निर्माण के लिये जोखिम उठाते हैं। वे पर्याप्त सहयोग प्राप्त करते हैं और अपना सपना साकार करते हैं।

क्रियेशन एक्स निहिलो(Creation ex nihilo) जैसी शब्दावली का प्रयोग करके डाउन्स ने ब्योरोज की उत्पत्ति की एक अस्पष्ट अवधारणा प्रस्तुत की है, जो उलझन में डालने वाली है। उसका कहना है कि कुछ अन्य सामाजिक अभिकरणों(Agencies) के शक्तिशाली सदस्य किन्हीं प्रकार्यों को करने के लिए एक संगठन की आवश्यकता महसूस करते हैं। यह संगठन उत्साहियों की परिधि से बाहर होता है, लेकिन कुछ समय के बाद उत्साही इसके प्रति आकृषित होते हैं और जो लोग इस संगठन को बनाते हैं, वह यह महसूस करते हैं कि यदि वे उत्साहियों के समान

काम करते हैं तो उनको बड़ी सफलता मिलेगी। लेकिन यह सदस्य किसी प्रकार के नियमों, अधिनियमों, परम्पराओं आदि की परवाह नहीं करते हैं, इसीलिये डाउन्स इनको 'ex nihilo' कहता है, जिसका अर्थ है कुछ नहीं अर्थात् कोई नियम नहीं, कोई परम्परा नहीं।

10.19 ब्योरोज व्यवहार पर आयु का प्रभाव

डाउन्स के अनुसार ब्योरोज जितने पुराने (लम्बी आयु के) होते जाते हैं उतनी ही उनकी निपुणता बढ़ती जाती है और वे बाहरी सहायता, सहयोग और संसाधन जुटाकर अस्तित्व में बने रहते हैं। आयु के ब्योरोज पर जो प्रभाव पड़ते हैं वे निम्न प्रकार के हाते हैं-

1. ब्योरो अपने काम को निपुणता से करना सीखता है और उसमें अधिक क्षमता का संचार होता है। अधिकारी इस क्षमता का प्रयोग अधिक सेवाऐं प्रदान करने में करते हैं।
2. ब्योरोज अधिक प्रभावी नियमों और अधिनियमों को विकसित करते हैं। नई परिस्थितियों का सामना करने की ब्योरोज में शक्ति बढ़ती है।
3. ब्योरोज के उच्च अधिकारियों के ध्येय संगठन को बनाये रखने तथा विस्तृत करने में बदल जाते हैं। इस तरह वे प्रशासनिक मामलों में ज्यादा ध्यान देते हैं। इस लिए ब्योरोज की दीर्घ आयु ध्येय में लचीलापन लाती है।
4. अधिकारियों का महत्व ब्योरोज में परिवर्तित होता रहता है। उत्साहियों की शक्ति और प्रभाव घट जाती है, क्योंकि वे कमजोर प्रशासक होते हैं। अनुदारवादियों की शक्ति बढ़ जाती है, क्योंकि वे अच्छे प्रशासक होते हैं तथा संगठनात्मक उद्देश्यों को बदलते में लचीले होते हैं।
5. एक ब्योरो जितना पुराना और बड़ा होता जाता है उतना ही वह ऊर्जाहीनता का शिकार होता है। इसका नतीजा यह निकलता है कि दीर्घ आयु ब्योरोज नियमों के बारे में कम लचीले और ध्येयों के मामले में अधिक लचीले हो जाते हैं।

डाउन्स के सिद्धान्त का व्यवहारिक पहलू यह है कि, पहला- नौकरशाही या अधिकारी तन्त्रीय निर्णय-निर्माण का सिद्धान्त ब्योरोज कार्य-विधि को अच्छे ढंग से समझने में सहायता करता है तथा दूसरा- यह सिद्धान्त ब्योरोज के व्यहवार के बारे में अधिक सटीक भविष्यवाणियाँ करने में सक्षम होता है। डाउन्स ने इस सिद्धान्त का खाका ब्योरोज के यथार्थ जीवन से सम्बन्धित व्यवहारिक भविष्यवाणी करने के लिये तैयार किया है। इस सिद्धान्त के आधार पर ब्योरोज के कुछ आन्तरिक तत्व और ब्योरोज के प्रकार्यों के अनेक पहलू हमारे समाने आते हैं जो निम्न हैं-

आन्तरिक तत्व	**ब्योरोज प्रकार्यों के पहलू**
संचार व्यवस्था।	स्पष्टता जिससे इसके प्रकार्य परिभाषित किये जा सकते हैं।
सूचना संकलन पद्धति।	वह सरलता जिससे ब्योरोज़ की क्रिया के नतीजे देखे जा सकते हैं तथा उनके प्रभाव आँके जा सकते हैं।
सत्ता का बटबारा, औपचारिक तथा अनौचारिक दोनों।	ब्योरो के आन्तरिक तकनीकी पर्यावरण का स्थायित्व।
संसाधनों को बाँटने की पद्धति।	ब्योरो के बाहरी पर्यावरण का स्थायित्व बारे में रुख।
ब्योरो के लक्ष्य तथा कार्यों को परिभाषित करना।	ब्योरो के विभिन्न प्रकार्यों को अन्तर्निर्भरता।
नवीनीकरण का तरीका और नवीनीकरण के बारे में रूख।	प्रकार्यों की विषमता।

प्रकार्यों का आन्तरिक पृथककीरण।	प्रकार्यों का क्षेत्र।
आकार, तकनीकी पद्धति, सामाजिक प्रकार्यों के सन्दर्भ में स्थायित्व।	ब्योरो का उसके पर्यावरण में शक्ति निर्धारण।

10.20 मूल्यांकन

नौकरशाही पर मैक्स वेबर से लेकर आज तक बहुत कुछ लिखा गया है। नकारात्मक भी और सकारात्मक भी। लेकिन शायद ही कोई ऐसा प्रशासनिक चिन्तक हो, जिसने नौकरशाही की अनिवार्यता को स्वीकार न किया हो। आलोचकों ने नौकरशाही की आलोचना की है लेकिन वे यह बताने में असफल रहे कि इस तन्त्र का विकल्प क्या है।

एन्थोनी डाउन्स उन चिन्तकों में से एक हैं, जो नौकरशाही की अनिवार्यता को मौजूदा राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समाज के विकास की एक अनिवार्य शर्त मानता है। यद्यपि डाउन्स ने मैक्स वेबर के नौकरशाही सम्बन्धी नजरिये को स्वीकार किया है, लेकिन वह उसके आदर्श प्रकार के मॉडल को स्वीकार करने से कतराता नजर आता है। शायद इसलिए कि वह अपनी एक अलग पहिचान बनाये रखना चाहता है। लेकिन वेबर का नौकरशाही का मॉडल एक ऐसा जाल है, जिसमें जो एक बार फँस गया उसका मुक्त होना बहुत कठिन है। ऐसा ही कुछ डाउन्स के साथ हुआ है। उसने अपने सिद्धान्त में मैक्स वेबर का वह तथ्य स्वीकार किया है, जो वेबर के मॉडल का केन्द्रीय बिन्दु है। अर्थात् प्रशासनिक संगठन की पदसोपानीय व्यवस्था।

डाउन्स के विश्लेषण की इकाई 'ब्योरो' (विभाग) है, लेकिन वह ब्योरोज के सदस्यों को नौकरशाह न कहकर 'अधिकारी'(Officials) कहता है। यहाँ उसके दृष्टिकोण में विरोधाभास नजर आता है। वह नौकरशाही के आलोचकों की भर्तसना करता है और स्वयं वह शब्द ''नौकरशाही'' या ''नौकरशाह'' का प्रयोग नहीं करता है। ऐसा इसलिये कि शब्द ''नौकरशाह'' बदनाम है। डाउन्स का रुजहान निर्णय-निर्माण की ओर है। यहीं वह अपने सिद्धान्त की मौलिकता बनाये रखता है।

डाउन्स यह स्वीकार करने से हिचकिचाता है कि नौकरशाही में कुछ मानवीय दुर्बलताऐं हैं। लेकिन वह इस परिकल्पना के साथ आगे बढ़ता है कि नौकरशाही के अधिकारी अपने प्रशासन में तथा निर्णय लेने में अपने निजी हितों से प्रेरित होते हैं। यहाँ वह यह भूल जाता है कि यह निजी हित ही नौकरशाही को विकृत करते हैं। डाउन्स ने ब्योरोज की जो परिभाषा दी है उसमें उसने वे तत्व सम्मिलित किये हैं जिनको वेबर ने अपने आदर्श प्रकार के मॉडल में दर्शाया है। इसलिये उसकी परिभाषा में नया कुछ भी नहीं है। डाउन्स ने ब्योरोज का विश्लेषण निर्णय-निर्माण के सन्दर्भ में किया है। यह उसका मौलिक विचार नहीं है। निर्णय-निर्माण का सिद्धान्त रिचर्ड सी0 स्नाइडर ने विकसित किया था। बाद में इस दृष्टिकोण का समर्थन बर्क, स्पेन, डेविड ईस्टन, और विलियम राइकर ने खुलकर किया। डाउन्स का योगदान यह है कि उसने शुद्ध प्रशासनिक दृष्टि से निर्णय-निर्माण को अपने सिद्धान्त का आधार बनाया। लेकिन उसके द्वारा निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में लगे अधिकारियों का जो विश्लेषण पर्वतारोही(Climbers) तथा अनुदार(Conservers) के रूप में किया गया है वह मात्र काल्पनिक है। यथार्थ से उसका कोई लेना देना नहीं है।

लेकिन डाउन्स का 'पर्यावरण' सम्बन्धी विश्लेषण यथार्थ के काफी समीप है। सूचना की उसकी अवधारणा तर्क-संगत है। इसी तरह डाउन्स ने ब्योरोज की पदसोपनीय संरचना की जो अवधारणा प्रस्तुत की है, उसमें पर्याप्त यथार्थ है। ब्योरोज में होने वाले आन्तरिक टकरावों को दूर करने के लिये वह पदसोपान को एक यांत्रिकी के रूप में लेता है जो अनिवार्य है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि डाउन्स ने ब्योरोज की निर्णय-निर्माण की भूमिका का विश्लेषण करके नौकरशाही को एक नया आयाम देने का प्रयास किया है, भले ही जिस शब्दावली का इस विश्लेषण में प्रयोग किया है उस से सिद्धान्त को स्पष्टता न मिली हो।

अभ्यास प्रश्न-

1. विकास प्रशासन कितने 'P' पर टिका हुआ है?
2. विकास प्रशासन का पहला सिद्धान्तकार कौन है?
3. विकास प्रशासन का घटक नहीं है?
4. 'विवेकशीलता' तथा 'विवर्तन' की अवधारणा किस चिन्तक की देन है?
5. डाउन्स के शोध प्रबन्ध का शीर्षक क्या है?
6. डाउन्स नौकरशाह को क्या कहता है?
7. डाउन्स किस इकाई का विश्लेषण करता है?
8. डाउन्स के सिद्धान्त की मूल्य अवधारणा क्या है?
9. कौन सा विचार डाउन्स का नहीं है?

10.21 सारांश

1. इस इकाई में विकास का सम्बन्ध आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक विकास से नहीं है। यहाँ विषय विकास बनाम प्रशासन है। जिसे विकास प्रशासन कहा जाता है और जो तुलनात्मक लोक प्रशासन की देन है।
2. प्रशासन और विकास प्रशासन में अन्तर बहुत कम है। पहला, एक क्रिया है तो दूसरा, एक शास्त्रीय विषय।
3. सार यह है कि आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, मानवीय और तकनीकी या वैज्ञानिक विकास, विकास प्रशासन की अवधारणा पर टिके हुये हैं।
4. विकास प्रशासन लोक प्रशासन का नया आयाम है। वह कल्याणकारी तथा आधुनिकीकरण की एक मांग है। विकास एक मन स्थिति, एक प्रकृति और एक दिशा है।
5. विकास प्रशासन के कुछ निश्चित लक्ष्य हैं। प्रशासन को गतिशील तथा तर्कसंगत बनाये रखना उसका सर्वोपरि ध्येय है। वह बहुआयामी विकास की माँगों को पूरा करता है।
6. विकास के अनेक घटक हैं, जिनमें लोकतांत्रिक मूल्य, सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था, शक्तियों का विभाजन, कल्याणकारी नीतियाँ, संसाधनों का महत्व, सामाजिक परम्पराऐं, राजनीतिक स्वरूप तथा बहुआयामी भौतिक प्रगति प्रमुख हैं।
7. रिग्स की विकास अवधारणा ने विकास को नया तकनीकी रूप प्रदान किया है।
8. डाउन्स ने अपनी नौकरशाही का सिद्धान्त अपने शोध प्रबन्ध ''Inside Bureaucracy'' में प्रस्तुत किया है। वह अपने नौकरशाही सम्बन्धी नजरिये को सिद्धान्त कहना पंसद करता है न कि मॉडल। इसी तरह नौकरशाह के स्थान पर वह अधिकारी(officials) कहना ज्यादा उपयुक्त समझता है।
9. नौकरशाही सम्बन्धी उसके विश्लेषण की इकाई 'ब्योरो'(officials) है, जिसका अर्थ है- विभाग। ब्योरोज को वह निर्णय-निर्माण का माध्यम मानता है।
10. डाउन्स का निर्णय-निर्माण चार भागों पर आधारित है- शब्दावली की परिभाषा, परिकल्पनाऐं, एक काल्पनिक पर्यावरण तथा पर्यावरण पर लागू परिकल्पनाओं पर आधारित प्रस्ताव।

11. उसने संगठन के सन्दर्भ में ब्योरोज को परिभाषित किया है तथा उनकी चार मौलिक विशेषताऐं बताई हैं- संगठन का बडा आकार, संगठन के सदस्य पूर्ण कालिक कर्मचारी, स्थायित्व और प्रोन्नति उपलब्धियों के आधार पर तथा संगठन के निर्गतनों का आकलन की परिधि से बाहर होना।
12. डाउन्स ने ब्योरोज का विश्लेषण निर्णय-निर्माण के सन्दर्भ में किया है। यह अनेक केन्द्रीय परिकल्पनाओं पर आधारित है। यह इस प्रकार है- अधिकारी उपयोगिता बढ़ाने वाले होते हैं(Utility Maximizers), अधिकारियों के कुछ जटिल लक्ष्य होते हैं। अधिकारी दो प्रकार के होते हैं, विशुद्ध स्व-हितकारी या आत्म-हितकारी तथा मिश्रित प्रयोजन अधिकारी। आत्म हितकारी भी दो प्रकार के होते हैं, पर्वतारोही अर्थात् अपनी आय, शक्ति तथा प्रतिष्ठा को बुलन्दी तक ले जाने वाले तथा अनुदार जो यथास्थिति बनाये रखने में लगे रहते हैं। मिश्रित प्रयोजन अधिकारी तीन प्रकार के होते हैं- उत्साही, समर्थक तथा राजनीतिज्ञ।
13. डाउन्स ने ब्योरोज के पर्यावरण की विवेचना की है जिसकी अनेक शर्तें हैं, जिनमें सूचना का संचार; निर्णय-निर्माण की क्षमताऐं तथा पर्यावरण का आन्तरिक स्वरूप।
14. डाउन्स ने ब्योरोज के विश्लेषण में पदसोपान को विशेष मान्यता दी है, जो ब्योरोज के आन्तरिक टकारावों को रोकने में सहायक होती है। पदसोपनीयता के दो रूप हैं, पहला- 'लम्बा'(Tall) तथा दूसरा- 'समतल'(Flat)।
15. डाउन्स ने पदसोपानों में संचार, नियंत्रण और विकृतिकरण की समस्या को स्पष्ट किया है।
16. डाउन्स अपने सिद्धान्त में ब्योरोज की गतिशीलता की बात करता है और यह समझाने का प्रयास करता है कि किस प्रकार से ब्योरोज अस्तित्व में आते हैं और जीवित रहते हैं।
17. ब्योरोज का निर्माण करने वाले कुछ 'उत्साही'(Zealots) होते हैं। वे यहाँ चार साधनों का प्रयोग करते हैं- करिश्मे का, टुकड़े करके, उद्यमकर्मी की तरह तथा, क्रियेशन ऐक्स निहिलों की हैसियत से।
18. डाउन्स के अनुसार ब्योरोज के व्यवहार पर आयू (अवधि) का भी प्रभाव पड़ता है। उसने ब्योरोज के व्यवहार उनके आन्तरिक तत्व तथा ब्योरोज के प्रकार्यों के अनेक पहलुओं की भी चर्चा की है।
19. डाउन्स के सिद्धान्त की अनेक बिन्दुओं पर आलोचना की जा सकती है। विशेष रूप से यह कहा जा सकता है कि उसका सिद्धान्त काल्पनिक तथा परिकाल्पनिक अधिक है व्यवहारिक कम। वह स्वयं को वेबेरियनवाद से मुक्त नहीं कर सका है। यद्यपि उसने कुछ मौलिक विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, लेकिन उसमें अन्त-द्वन्द स्पष्ट है।

10.22 शब्दावली

आधुनिकीकरण(Modernisation)- एक ऐसा शब्द जो आधुनिकता से जुड़ा हुआ है, जो वैज्ञानिक-तार्किक विकास पर जोर देता है और जो जड़ परम्पराओं और रुढ़ियों का विरोधी है।

विवेकशीलता(Discretion)- यहाँ विवेकशीलता का अर्थ है, विकल्पों में से चुने जाने का कौशल।

विवर्तन(Diffraction), अर्थात् एक समाज में अवकलन या भेदात्मक और एककीकरण (Integration) के स्तर को प्रदर्शित करना ही विवर्तन है।

भेदन(Penetration), अर्थात् सरकार की वह क्षमता या योग्यता जिसके आधार पर सरकार निर्णय लेती है।

ब्योरो(Bureau) का शाब्दिक अर्थ- मेज, डेस्क, अल्मारी, पत्राजात लेकिन सिद्धान्त में विभाग, प्रशासनिक संगठन जिसमें काम करने वाले Bureaucrats (अधिकारी) या नौकरशाह कहलाऐ जाते हैं।

कलाइम्बर्स(Climbers) शाब्दिक अर्थ- पर्वतारोही, ऊँचाई पर जाने वाले लेकिन सिद्धान्त में वे लोग जो अपनी शक्ति, आय, प्रतिष्ठा, सुरक्षा इत्यादि को ऊँचाइयों तक ले जाना चाहते हैं, अर्थात् महत्वाकांक्षी अधिकारी।

एक्सोजीनस कन्डीशन्स(Exogenous Conditions) शाब्दिक अर्थ- अनुकूल उदित परिस्थितियाँ, अर्थात् ब्योरोज के अस्तित्व के लिये अनुकूल परिस्थितियों का होना जरूरी है।

एक्स निहिलो(ex nihilo) शाब्दिक अर्थ- 'कुछ नहीं'(nothing) अर्थात्, वह अवधारणा जो वर्तमान विचारों तथा नई परम्पराओं का विरोध करती है।

जीलटस(Zealots) का शाब्दिक अर्थ है, उत्साही या जोशीले। यहाँ वे लोग जो, नित नये ब्योरोज का निर्माण करते हैं।

10.23 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. चार, **2.** रिग्स, **3.** आर्थिक व्यवस्था, **4.** रिग्स, **5.** 'Inside Bureaucracy' **6.** ब्यूरो (Officials) **7.** ब्यूरोज, **8.** निर्णय-निर्माण, **9.** विकास

10.24 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. S.P. Varma : Modern Political Theory, Poona.
2. Vats Yayan : Principles of Sociology, Meerut.
3. Kumar : Social Change and Social Control, Agra.
4. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन।
5. Anthony Downs : Inside Bureaucracy, 1964.
6. Joseph La Palombava : (ed) Bureaucracy and Political Development (1963).
7. Max Weber : Bureaucracy in Sociology, 1962.
8. Max Weber : The Routinization of Charisma, The Theory of Social and Economic Organization.
9. Ludvig Yon Mises : Bureaucracy, 1962.

10.25 सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

1. B.F. Hozelitz : Sociolgical Aspect of Economic Growth.
2. S.N. Eisenstadt : Essays on Sociological Aspects of Political and Economic Development.
3. Neil J. Smelser : The Sociology Life.
4. R.W. Mack : Social Change in Developing Areas.
5. S.P. Varma : Modern Political Science.
6. त्रिलोकनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन।
7. D. Ravindra Parasad (ed) : Administrative Thinkers.
8. प्रसाद, प्रसाद, सत्यनारायण: प्रशासनिक चिन्तक।

10.26 निबंधात्मक प्रश्न

1. विकास की प्रशासनिक अवधारणा क्या है? प्रशासनिक विकास के लक्ष्य, प्रकृति एवं क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए।

2. रिग्स की विकास की अवधारणा क्या है? रिग्स की विकास अवधारणा के तकनीकी सार पर चर्चा कीजिए।
3. डाउन्स के नौकरशाही के सिद्धान्त के कौन-कौन से भाग हैं? नौकरशाहों की अवधारणा डाउन्स ने क्यों प्रस्तुत की?
4. डाउन्स ने अपने सिद्धान्त में किस इकाई का विश्लेषण किया है? डाउन्स की अधिकारियों(Officials) की अवधारणा क्या है? स्पष्ट करें।
5. डाउन्स ने निर्णय-निर्माण को किस रूप में लिया है? पदसोपान पर डाउन्स के सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए।

इकाई- 11 एफ0डब्ल्यू0 रिग्स का सामाजिक प्रारूप- प्रिज्मैटिक समाज और साला मॉडल

इकाई की संरचना

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 एफ0डब्ल्यू0 रिग्स: एक परिचय
11.3 रिग्स द्वारा वेबर की आलोचना
11.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन तथा रिग्स की भूमिका
11.5 रिग्स के आदर्श मॉडल
11.5.1 कृषका समाज
11.5.2 औद्योगिका समाज
11.5.3 ट्रांजीशिया मॉडल
11.6 विस्तृत प्रिज्मीय-चक्रीय मॉडल
11.6.2 रिग्स का विस्तृत मॉडल
11.6.3 विवर्तित मॉडल
11.7 रिग्स का समपार्श्वीय समाज
11.7.1 विजातीयता
11.7.2 औपचारिकता
11.7.3 अतिराव या सर्वव्यापिता
11.8 रिग्स का साला मॉडल
11.8.1 साला मॉडल की प्रकृतियाँ
11.8.2 प्रिज्मीय समाज और परिवर्तन
11.8.3 साला तथा प्रिज्मीय समाज में सम्बन्ध
11.9 प्रिज्मीय समाज की आलोचना
11.10 रिग्स के मॉडलों का मूल्यांकन
11.11 सारांश
11.12 शब्दावली
11.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.14 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
11.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.16 निबंधात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास में फ्रेड डब्ल्यू0 रिग्स का योगदान उल्लेखनीय है। उसने प्रशासनिक व्यवस्थाओं और उनके पर्यावरण के मध्य होने वाली क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं में अनेक महत्वपूर्ण अवधारणाओं एवं सिद्धान्तों की खोज की। रिग्स के अध्ययन-क्षेत्र विशेष तौर पर विकासशील तथा संक्रमणशील (transitional) समाज रहे हैं। रिग्स का नया प्रशासनिक प्रिज्मीय समाज निश्चय ही विकासशील एवं अर्द्धविकसित समाजों में प्रशासन की गतिशीलता को सम्झने का एक महत्वपूर्ण माध्यम या मॉडल है। रिग्स ने

परिस्थितिकीय दृष्टिकोण तथा संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम को अपनाकर सामाजिक विश्लेषण किया है। प्रशासनिक अध्ययन की दृष्टि से उसने समाजों को दो भागों-कृषका तथा औद्योगिका में विभाजित किया है, यद्यपि यह उसकी काल्पनिक अवधारणा है। उसने प्रिज्मीय समाज की अवधारणा प्रस्तुत की है, लेकिन इससे पहले उसने 'फ़्यूज्ड' (विस्तृत तथा अविस्तृत), 'डिफ्रेक्टेड' (विवर्तनीय) तथा 'समपार्श्वीय' की रूपरेखा प्रस्तुत की और अन्तः 'साला मॉडल' का विचार रखा। इस इकाई में उसके इन सभी मॉडलों, समाजों और नजरियों की व्याख्या, आलोचना तथा समालोचना को समझाया गया है।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- रिग्स के तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास योगदान को जान पायेंगे।
- उसके द्वारा अपनाये गये परिस्थितिकीय दृष्टिकोण तथा संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण को समझ पायेगें।
- उसके द्वारा प्रस्तुत कृषका-औद्योगिक समाज से परिचित होंगे।
- उसके द्वारा रचे गये प्रिज्मीय मॉडल को विस्तृत समाज तथा चक्रीय समाज के सन्दर्भ में समझ सकेंगे।
- उसके द्वारा 'साला' मॉडल की परिकल्पना के बारे में जान सकेंगे।
- प्रिज्मीय समाज की विशेषताओं, प्रकृतियों, साला तथा प्रिज्मीय समाज के सम्बन्धों तथा प्रिज्मीय समाज में परिवर्तन की समस्याओं को समझ सकेंगे।
- रिग्स की किन आधारों पर आलोचना की गई, यह जान सकेंगे।

11.2 एफ0डब्ल्यू0 रिग्स: एक परिचय

पिछली इकाई में एफ0 डल्ब्यू0 रिग्स के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यहाँ हम संक्षेप में केवल इतना बतायेंगे कि तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास में 'इण्डियाना विश्वविद्यालय' के प्रोफेसर रिग्स का महत्वपूर्ण योगदान है। वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण के धनी थे, इसलिए उन्होंने प्रशासनिक व्यवस्थाओं और उनके वातावरण के बीच होने वाली क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं तथा उनके नतीजों का वैज्ञानिक नजरिये से अध्ययन किया और इन नतीजों के आधार पर ऐसे सिद्धान्तों की खोज की जो उनकी परिकाल्पनिक अवधारणाओं का अन्तः आधार बने। जिन समाजों का रिग्स ने अध्ययन किया, उनमें खास तौर से विकसित तथा संक्रमणशील (transitional) समाज थे। अपने तुलनात्मक नजरिये को ठोस आधार देने के लिए रिग्स ने फिलिपाइन्स (1958-59), भारत (1959), थाईलैण्ड (1957-58) तथा कोरिया (1956) आदि देशों का दौरा किया। वहाँ उन्होंने विश्वविद्यालयों में भाषण दिये तथा वहाँ की सामाजिक-प्रशासनिक व्यवस्थाओं का तथ्यात्मक अध्ययन किया। अपने इस अनुभावात्मक (empirical) अध्ययन के आधार पर उन्होंने तुलनात्मक लोक प्रशासन पर सैद्धान्तिक और व्यवहारिक विवेचन के लिए नये-नये मॉडल प्रस्तुत किये। इन मॉडलों में रिग्स का नया प्रशासनिक मॉडल-समपार्श्वीय या प्रिज्मैटिक (Prismatic Society) बहुत ही विख्यात हुआ है। इस मॉडल से निश्चय ही विकासशील एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं में प्रशासन की गतिशीलता को समझने में आसानी हुई है। इस मॉडल के आधार पर समाजों की पुरानी हो चुकी प्रशासनिक संरचनाओं को सुधारने या उनको नयापन देने का उपकरण मिलता है।

11.3 रिग्स द्वारा वेबर की आलोचना

किसी प्रशासनिक चिन्तक का मैक्स वेबर से पीछा छुड़ाना बड़ा मुश्किल लगता है। यही बात रिग्स के साथ भी है। किसी नये मॉडल की रचना के लिए यह जरूरी है कि वह प्रचलित मॉडल को नकारे। रिग्स ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रचलित मॉडलों की आलोचना करते हुए उनको अपर्याप्त माना, विशेष रूप से उसने सबसे पहले वेबर के नौकरशाही के मॉडल पर उंगली उठाई। वेबर अपने नौकरशाही के मॉडल को 'आदर्श'(Ideal) बताता है। रिग्स को शब्द 'आदर्श' के प्रयोग पर ही आपत्ति है। उसके अनुसार 'आदर्श' मात्र एक कल्पना है, इसलिए वेबर का नौकरशाही का मॉडल भी एक स्वायत्त प्रशासन व्यवस्था की कल्पना मात्र है। यह यथार्थ से दूर है और विकासशील समाजों के अध्ययन के लिए न्यायसंगत नहीं है। कारण यह है कि विकसित समाजों में प्रशासनिक संरचनाऐं स्वायत्त (Autonomous) होती हैं, लेकिन विकासशील समाजों में प्रशासन की संरचनाऐं स्वायत्त नहीं होती, वे एक-दूसरे पर निर्भर करती हैं। जिसका अर्थ है कि विकासशील समाज के प्रशासन की अन्य समाजिक तत्वों के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया की प्रक्रिया चलती रहती है। अक्सर ऐसा देखा गया है कि विकासशील समाजों में प्रशासनिक इकाईयों द्वारा प्रशासनिक के अतिरिक्त गैर-प्रशासनिक कार्य भी किये जाते हैं। इस तरह इन इकाईयों का प्रशासनिक स्वरूप विलुप्त हो जाता है। इस स्थिति में रिग्स का कहना यह है कि विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्था को वेबर के नौकरशाही मॉडल के आधार पर नहीं समझा जा सकता।

इसलिए रिग्स का मत है कि विकासशील अथवा अर्द्धविकसित समाजों के अध्ययन के लिए नई तकनीकें, नई अवधारणाऐं और नये मॉडल तैयार करने होंगे और उनको नये सन्दर्भों में लागू करना होगा। यह नई अवधारणाऐं ऐसी होनी चाहिए जिनमें पुरानी (पारम्परिक) और आधुनिक संरचनात्मक लक्षणों का ताल-मेल हो। रिग्स ने अपने ग्रंथ ''Administration in Developing Countries: Theory of Prismatic Society'' में सपष्ट किया है कि समाजों को नये यर्थाथवादी नजरिये से देखना और उन समाजों की मागों के अनुसार नई अवधारणाओं की रचना करना जरूरी है। वेबर के मॉडल के द्वारा विकासशील समाजों की विभाजीय विशेषताऐं अभिव्यक्त नहीं हो सकती। टेल्कॉट पारसन्स ने भी रिग्स के दृष्टिकोण का समर्थन किया है। उसके अनुसार बदली हुई परिस्थितियों तथा तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में हुए नये विकासों के कारण नई तकनीकों तथा नये मॉडलों की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है।

11.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन तथा रिग्स की भूमिका

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप अनेक प्रशासनिक मॉडल सामने आये। इनका विकास पश्चिमी देशों तथा अमरीका में हुआ था। लेकिन दूसरे विश्व युद्ध के बाद परिस्थितियां बदली। साम्राज्यवाद बिखर गया। नये राष्ट्र अस्तित्व में आये, जिनको अविकसित या विकासशील देशों का दर्जा मिला। यह देश ऐशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका में हैं। जब इन देशों में विकसित देशों के प्रशासनिक मॉडलों को लागू किया गया तो यह लगभग असफल होते नजर आये, कारण था यहाँ की विशेष परिस्थितियां तथा व्यवस्थाऐं जो विकसित देशों से भिन्न थी। इन देशों में इनकी उपयोगिता और प्रांसगिकता संदिग्ध थी। विकसित देशों के मॉडल यथास्थिति को बनाये रखने के उद्देश्य से थे, लेकिन विकाशशील देशों में स्थिति को बदलना था।

अतः रिग्स ने इस वास्तविकता को समझा। उसने पूर्णतः एक नई अवधारणा विकसित करने का निश्चय किया। इसी क्षेत्र में दूसरे चिन्तकों ने प्रयास किये। इस तरह इस नई अवधारणा की खोज के परिणामस्वरूप तुलनात्मक लोक प्रशासन अस्तित्व में आ गया। अब तुलनात्मक लोक प्रशासन के माध्यम से जिस क्षेत्र का अध्ययन करना था वे दो क्षेत्र थे- अन्तरसांस्कृतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासन। यहाँ रिग्स ने तुलनात्मक प्रशासन के अध्ययन के लिए तीन विस्तृत धाराओं (Trends) की पहचान की। यह हैं- प्रतिमानात्मक से अनुभावात्मक (normative to

empirical), भावसूचक से तथ्यपरक (ideographic to nomathetic) और गैर-परिस्थितिकीय से परिस्थितिकीय (non-ecological to ecological)।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रतिमानात्मक वर्णन में तो केवल आदर्श का अध्ययन होता है लेकिन अनुभावात्मक अध्ययन के द्वारा व्यवहारिक पहलुओं को समझा जाता है। इसी तरह भावात्मक पद्धति विशिष्ट का अध्ययन करती है लेकिन तथ्यात्मक पद्धति सामान्यीकरण की ओर जाती है। नियमों तथा परिकल्पनाओं का सहारा लेकर व्यवहार की निरन्तरता को अन्तर सम्बन्धों की परिवर्तनशील तत्वों के साथ नियमित्ता प्रदान करती है। रिग्स परिस्थितिकीय दृष्टिकोण को सब से अधिक पसंद करता है। रिग्स ने अपने सिद्धान्तों को समझाने के लिए विशेष रूप से तीन महत्वपूर्ण साधनों का प्रयोग किया है- (1) परिस्थितिकीय दृष्टिकोण, (2) प्रकार्यात्मक-संरचनात्मक दृष्टिकोण तथा आदर्श प्रारूप (मॉडल)। पहले तथा दूसरे साधन की चर्चा पिछली इकाई में हो चुकी है। यहाँ आदर्श मॉडल पर बहस की जायेगी।

11.5 रिग्स के आदर्श मॉडल

रिग्स विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण करना चाहता था, इसलिए उसने अनेक आदर्श प्रतिमानों का विकास किया। रिग्स ने प्रत्येक समाज के लिए पांच मूलभूत कार्य माने हैं-आर्थिक, सामाजिक, संरचनात्मक, प्रतीकात्मक तथा राजनीतिक। इस तरह इन पांचों कार्यों को नजर में रखकर उसने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक(Structural-Functional Approach) दृष्टिकोण का सहारा लिया, जिसकी प्रेरणा उसको 1955 में डवाइट वाल्डो से मिली थी। रिग्स ने वाल्डो के सिद्धान्त पर चिन्तन किया और 1956 या 1957 में कृषका-औद्योगिका (Agraria-Industria) विद्या का उल्लेख अपने ग्रन्थ ''Agraria and Industrial Towards a Topography of Comparative Administration'' में पहली बार किया। कृषका का अर्थ है- कृषक समाज तथा औद्योगिका का अर्थ है- औद्योगिक समाज। अर्थात अपने आरम्भ में यह दो समाज विकसित हुए। उसने इम्पीरियल चीन तथा संयुक्त राज्य अमरीका के सन्दर्भ में कृषका (चीन) तथा औद्योगिका (अमरीका) को दृष्टि में रखकर अपने मॉडल विकसित किये। वह इस परिकल्पना के साथ आगे चला कि सभी समाज कृषका से औद्योगिका में बदलते हैं। (रूप परिवर्तन होता है)।

रिग्स के अनुसार दोनो समाजों की अपनी-अपनी विशेषतायें तथा लक्षण होते हैं। कुछ विचारकों का मानना है कि समाज का ऐसा विभाजन समाजों की संक्रमणकालीन अवस्था(Transitional period) को जानने में उपयोगी नहीं हो सकता।

11.5.1 कृषका समाज (Agraria Society)

रिग्स ने कृषका समाज के छः संरचनात्मक लक्षणों की पहचान की है, जो इस तरह हैं- आरोपित या काराणात्मक मूल्य (Ascriptive Value), विशिष्ट लक्षण(Diffused Pattern), असंगठित या विसरित ढांचा(Limited Social and Spatial Mobiltiy), सीमित सामाजिक तथा स्थानकेन्द्रित गतिशीलता(Simple and Stable Occupational differences), साधारण और स्थिर पेशागत भिन्नताऐं(Simple and Stable Occupational differences), भेदपूर्ण स्तरीकरण व्यवस्था का अस्तित्व(Existence of differential stratification System)।

संक्षेप में रिग्स द्वारा कृषका समाज के लक्षणों को दर्शाने का उद्देश्य यह है कि किस तरह कृषका समाज अस्तित्व में आता है, संचालित होता है तथा धीमी गति से स्वयं को बदलने का प्रयास करता है। ऐसे समाज के अपने मूल्य होते हैं जो आरोपित होते है या जिनका कोई कारण होता है। विशिष्टता ऐसे समाज की पहचान होती है(सामन्तवाद)। प्रशासनिक ढांचा विसरित होता है, फैला हुआ। गतिशीलता में धीमापन होता है। मतभेद बहुत होते हैं, जिनके दूर होने में विलम्ब होता है, भिन्नताऐं बहुत होती हैं।

11.5.2 औद्योगिक समाज (Industrea Society)

रिग्स ने औद्योगिक समाज की भी छः विशेषतायें बताई हैं, जो इस प्रकार हैं- उपलब्धि के मानक(Achievement Norms), सार्वभौमिकता(Universality), विशिष्टता(Specificity), उच्चतर सामाजिक और स्थान केन्द्रित गतिशीलता(Higher Social and spatial Mobility), पूरी तरह विकसित व्यावसायिक ढ़ाँचे (Well developed occupational patterns) और समतावादी-वर्ग व्यवस्था की मौजूदगी(Existence of Egalitarian class System)।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक समाज में आर्थिक दृष्टि से उपलब्धि के कुछ मानक हैं, जिनमें प्रति व्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय उत्पादन वृद्धि विशेष है। साथ ही प्रशासन विकास के भी कुछ मानक हैं, जिन पर अन्य सारे विकास टिके होते हैं। ऐसे समाज की रूपरेखा सार्वभौमिक होती है, लेकिन विशिष्ट स्थिति स्पष्ट होती है। समाज अत्याधिक गतिशील होता है तथा व्यवसायिक ढ़ाँचे पूरी तरह विकसित होते हैं। राजनीतिक तौर पर समानता होती है।

11.5.3 ट्रांजीशिया मॉडल (Transitia Model)

रिग्स के कृषका तथा औद्योगिक मॉडलों के बारे में आलोचकों का तर्क यह था कि विशुद्ध औद्योगिक समाज कहीं भी नहीं पाया जाता है, इसी तरह कृषि समाज निरन्तर औद्योगिक समाजों की ओर बढ़ते रहे हैं। इसीलिए रिग्स का यह मॉडल यथार्थ के समीप नहीं है, इसलिए इसकी उपयोगिकता भी नहीं है। रिग्स के यह मॉडल अमूर्त और काल्पनिक हैं तथा प्रशासनिक दृष्टि से यह महत्वहीन हैं। फिर भी रिग्स के कृषका तथा औद्योगिका मॉडलों ने प्रशासनिक चिन्तन को आगे बढ़ाया। लेकिन क्योंकि स्वंय इन प्रतिमानों को वह अपर्याप्त समझ रहा था, इसीलिए इन मॉडलों को नजर में रख कर और वह और आगे बढ़ा। उसका ट्रांजीशिया मॉडल उसके इसी नजरिये का नतीजा है।

रिग्स ने शब्द ट्रांजीशिया(Transitia) ट्रांजिट अथवा ट्रांजीशन(Transition) से गढ़ा है, जिसका अर्थ है- संक्रान्ति या संक्रमणकाल। 'ट्रांजीशिया' से उसका अभिप्राय है, कृषका समाज और औद्योगिका समाज के मध्य का संक्रमणकाल। ऐसे समाज तब अस्तित्व में आते हैं, जब कृषका समाज औद्योगिका समाज में बदलता है। ट्रांजीशिया मॉडल रिग्स की नजर में एक साम्य(Equilibrium) या संतुलित मॉडल है। 'ट्रांजीशिया' में कृषि समाज तथा औद्योगिक समाज दोनों की विशेषताऐं मौजूद होती हैं, लेकिन इससे पहले कि रिग्स के ट्रांजीशिया मॉडल की कुछ पहचान बनती, इसकी भी आलोचना होने लगी। आलोचकों के अनुसार ट्रांजीशिया मॉडल की भी सीमाऐं हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. यह मॉडल (संकेतों का अध्ययन) संक्रमणकालीन समाजों के अध्ययन में ज्यादा सहायक नहीं हो सकता।
2. मिश्रित समाजों के विश्लेषण में इस पद्धति से किसी विशेष यांत्रिकी का प्रयोग नहीं किया जा सकता, क्योंकि आधुनिक समाजों में कहीं न कहीं कृषक विशेषताऐं पाई जाती हैं।
3. यह मॉडल कृषका समाज से औद्योगिक समाज में बदलने का दिशाहीन मार्ग उपलब्ध कराता है तथा,
4. इस मॉडल में प्रशासनिक व्यवस्था के पर्यावरण के विश्लेषण पर बहुत कम जोर दिया गया है।

11.6 विस्तृत प्रिज्मीय-चक्रीय मॉडल (The Fused-Prismatic Diffracted Model)

रिग्स ने उक्त कमियों को भी महसूस किया और विकासशील देशों के लिए नये मॉडलों का विकास किया। अब उसका नया मॉडल था, विस्तृत प्रिज्मीय-चक्रीय मॉडल (Fused-Prismatic Diffracted Model)। यहाँ रिग्स ने लोक प्रशासन के अध्ययन के मॉडलों की रचना सामाजिक संरचना तथा इसके कार्यों के आधार पर करने का प्रयास किया है, जो अनेक कार्य समपन्न करती हैं। बहु-कार्यात्मकता(Multi-functionality) को कार्यात्मक दृष्टि

से अपविस्तृत (Diffused) कहा जाता है, जो सामाजिक संरचना विशेष तथा सीमित कार्य करती है, उसे कार्यात्मक रूप से 'विशिष्ट' कहा गया है। इसी विशिष्ट को रिग्स ने 'चक्रीय' (Diffracted) कहा है। 'फ्यूज्ड' तथा 'डिफरेक्टेड' के मध्यवर्ती समाजों को रिग्स 'प्रिज्मैटिक' कहता है। इस तरह रिग्स के नये मॉडल का नाम है: 'फ्यूज्ड-प्रिज्मैटिक-डिफरेक्टेड' मॉडल या 'विस्तृत-समपाश्वींय-चक्रीय प्रतिमान। इसे विवर्तन(diffracted) भी कहा जा सकता है। रिग्स के इस मॉडल का अवधारणात्मक आधार है-

1. संरचात्मक और प्रकार्यात्मक नजरिये के आधार पर मॉडल का विकास।
2. किसी विस्तृत(Fused) समाज में एक ही संरचना अनेक तरह के कार्य सम्पन्न करती है, जबकि किसी विवर्तित या चक्रीय समाज में विशिष्ट प्रक्रियाओं को पूरा करने के लिए पृथक-पृथक संरचनाओं का निर्माण होता है।
3. विस्तृत समाज तथा विवर्तित(defused) समाजों के मध्य दूसरे समाज भी मौजूद रहते हैं, जिनमें दोनों के लक्षण विद्यमान होते हैं, इसी समाज को प्रिज्मीय(Prismatic) या समपाश्वींय समाज कहा जाता है। ऐसे समाजों को इन्द्रधनुषी भी कह सकते हैं।
4. रिग्स का विश्वास यह भी है कि कोई भी समाज न तो पूरी तरह से विस्तृत होता है और न ही पूरी तरह से विवर्तित या चक्रीय। व्यापक तौर पर सभी समाज प्रिज्मीय होते हैं।
5. रिग्स की नजर में यह 'आदर्श' प्रकार के मॉडल हैं, जो किसी वास्तविक समाज में नहीं पाये जाते हैं। परन्तु कुछ समाज इनके नजदीक होते हैं जो निजी उद्देश्यों के लिए उपयोगी होती हैं।

11.6.1 रिग्स का विस्तृत मॉडल (Rigg's Fused Model)

रिग्स का विस्तृत मॉडल 1957 के दशक के साम्राज्यवादी चीन, थाईलैण्ड और कंबोडिया के अनुभावात्मक अध्ययन पर आधारित है। तब इन समाजों में प्रकार्यों का कोई वर्गीकरण नहीं था। एकल संरचना से प्रकार्य सम्पन्न होते थे। यह कृषक समाज थे। इनमें औद्योगिकता और आधुनिकता का अभाव था। प्रशासनिक व्यवस्था में राजा की अहम भूमिका थी। मुख्य प्रशासक सभी प्रकार की आर्थिक, प्रशासनिक गतिविधियों को संचालित करता था। शासक जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं था। जनता वफादारी के लिए प्रतिबद्ध थी। समाज में मुख्य भूमिका राजा की हो या राजपरिवार की, प्रशासन-तंत्र ऐसे समाजों में शासक-वर्ग का ही पंगू होता है। उसे प्रजा का नहीं राजा का ध्यान रखना होता है। ऐसे समाजों की प्रशासनिक व्यवस्था विशिष्ट, मनोनीत और राजपरिवार की संरचना पर आधारित होती है। यथास्थिति को बनाये रखना इसका सर्वोच्च लक्ष्य होता है। संक्षेप में विस्तृत मॉडल की विशेषताओं का सार है- यथास्थिति को बनाये रखना; बिना विकसित संचार व्यवस्था के समाज में स्थिरता; जन समाज की ओर से न कोई मांग, न बहस बस केवल आज्ञापालन; दमनकारी और निरकुंश सत्ता का स्वरूप; निजी स्वार्थों की पूर्ति; न्याय और अन्याय में कोई अन्तर नहीं; औपचारिक तथा अनौपचारिक में कोई अन्तर नहीं; तथा कारगात्मक मूल्यों की भूमिका और जनता का व्यवहार पारंपरिक।

11.6.2 विवर्तित मॉडल (Diffracted Model)

विवर्तित, ऐसे समाज हैं जो सार्वभौमिकता के नजरिये पर टिके होते हैं, इसलिए इन समाजों में दूसरों के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जाता है। यहाँ विशिष्टीकरण का स्तर बहुत ऊँचा होता है। संरचनाऐं अनेक होती हैं। एक विशेष कार्य, एक विशेष संरचना के माध्यम से होता है। यहाँ कारणात्मक मूल्य विहीन सामज होते हैं। इन समाजों में मूल्य, परिस्थितियों के अनुसार बनते हैं। गतिशीलता और विवर्तितता इन समाजों की विशेषता है। वर्ग संरचना का स्पष्ट होना भी एक विशेषता है।

इन समाजों के सभी मॉडल, वैज्ञानिक संरचनाओं तथा तर्कसंगतता पर आधारित होते हैं। संक्षेप में विवर्तित मॉडल की जो अन्य मुख्य विशेषताऐं हैं, वे इस प्रकार हैं- ऐसे मॉडलों के समाजों की आर्थिक व्यवस्था बाजार आधारित होती है और उसका प्रत्येक पहलू बाजार की प्रकृति से प्रभावित और संचालित होता है; प्रकार्यों में भिन्नता होती है तथा उनका निष्पादन उन्हीं प्रकार्यों के अनुरूप संरचनाऐं करती हैं; संचार प्रौद्योगिकी उन्नत दशा में होती है; यहाँ की सरकारें जनकल्याणपरक(Welfare oriented) होती है। यहाँ मानव अधिकार परम मूल्यों के रूप में स्वीकार किये जाते हैं; जन मागें प्रबल होती हैं। हर तरह की बहस को मान्यता मिलती है। सरकारें उनका सम्मान करती हैं; सरकारों पर जनता का नियंत्रण रहता है। जनभावना का आदर किया जाता है; सरकारी मशीनरी दमनकारी नहीं होती। इसका यह अर्थ नहीं है कि सरकार अराजकता को भी सहन करती है। तथ्य केवल यह है कि कानून और व्यवस्था के नाम पर ऐसे समाज जो असीमित और असंवैधानिक दण्डात्मक कदम नहीं उठाये जा सकते। जनता कानूनों का स्वाभावतः पालन करती है; लोगों में सामाजिक जीवन के मूलभूत पक्षों को लेकर व्यापक सहमति होती है।

11.7 रिग्स का समपार्श्वीय समाज (Rigg's Prismatic Society)

रिग्स ने कार्यात्मक दृष्टि से समाजों को तीन भागों में विभाजित किया था- बहुकार्यात्मक, एकल कार्यात्मक तथा समपार्श्वीय(Prismatic)। परन्तु तार्किक रूप से कोई भी समाज न तो पूर्णरूप से बहुकार्यात्मक(Multifunctional) होते हैं और न ही पूरी तरह एकलकार्यात्मक(Unifunctional)। सभी समाज मध्यवर्ती स्थिति में होने के कारण एक सीमा तक समपार्श्वीय होते हैं। रिग्स के अनुसार समपार्श्वीय या प्रिज्मैटिक मॉडल बहुकार्यात्मक तथा एकलकार्यात्मक प्रतिमानों का मध्य बिन्दु हैं और यह वास्तविक समाजों को समझने में पूरी तरह सक्षम हैं। यहाँ परिकल्पना यह है कि सभी समाज गतिशील होने के कारण संक्रमणकाल(Transitional period) से गुजरते हैं। इन सभी समाजों का एक प्रशासनिक व्यवहार होता है। प्रिज्मैटिक मॉडल इस प्रशासनिक व्यवहार को समझने में सहायक होता है। भारत, चीन, मिस्त्र, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नाइजीरिया, कोलम्बिया आदि के समाजों को प्रिज्मैटिक कहा जा सकता है। इन समाजों में पुराने और नये का या परम्परात्मकता और आधुनिकता का (विचारों, क्रियाओं, व्यवहारों में) मेल देखने को मिलता है।

रिग्स ने प्रिज्मीय मॉडल की रचना अपने सभी पूर्व के मॉडलों व उनके निचोड़ का सहारा लेकर की है। रिग्स के अनुसार प्रिरज्मीय समाज में तीन विशेषताऐं होती है- विजातीयता, औपचारिकता और सर्वव्यापिता या अतिराव। संक्षेप में इनकी विवेचना इस प्रकार है-

11.7.1 विजातीयता(Heterogenity)

विजातीयता किसी भी प्रिज्मीय समाज की अपनी विशेषता होती है। प्रिज्मीय समाज में एक साथ अनेक व्यवस्थाऐं व्यवहार और दृष्टिकोण मौजुद रहते हैं। शहरी क्षेत्रों में अभिजात्य(Elite Class) बौद्धिक वर्ग निवास करता है। वहाँ आधुनिकता होती है। प्रशासनिक इकाईयों पर पश्चिमी जगत की छाप नजर आती है, लेकिन जो देहाती क्षेत्र हैं और जहाँ लोग परम्परावाद से ग्रस्त है, वहाँ गांव का मुखिया राजनीतिक, प्रशासनिक, धार्मिक तथा सामाजिक दायित्वों को पूरा करता है। यह विजातीयता प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषता बन जाती है।

1. रिग्स विजातीयता को सामाजिक परिवर्तन के लिहाज से असंगत मानता है। विजातीयता प्रशासनिक व्यवस्था को असंतुलित बनाती है जो प्रशासनिक विकास की दृष्टि से ठीक नहीं है। लेकिन यह प्रिज्मीय समाज की विशेषता है जिस से रिग्स इन्कार नहीं कर सकता।
2. प्रिज्मीय समाज में पश्चिमी तर्ज पर आधुनिकता अपने परम शिखर पर पहुँचने का प्रयास करती है। यह प्रक्रिया नगरों में बहुत तीव्र होती है, लेकिन दूसरी तरफ गावों में इस आधुनिकता के दर्शन नहीं होते। लोग

परम्पराओं की जकड़ में होते हैं। आधुनिक सुविधाओं का पूरी तरह अभाव होता है। यहाँ तक कि रात प्रायः अंधकारमयी होती है।

3. प्रिज्मीय समाज के हर क्षेत्र में विजातीय विद्यमान रहती है। पश्चिमी जगत की शिक्षा, मूल्य, जीवन शैली, स्वास्थ्य व्यवस्था सब को प्राथमिकता दी जाती है,लेकिन पारम्परिक तरीकों को बनाये रखा जाता है। यही विजातीयता का अर्थ है।
4. राजनीतिक दृष्टि से प्रिज्मीय समाज बड़ा संघर्षयुक्त होता है। विशेष रूप से यह जनतंत्रीय उदारवादी समाज होता है, जिसका लाभ शासक और शासित दोनों उठाते हैं। यहाँ 'यथा प्रजा तथा राजा' की कहावत चलती है। जनता स्वाभाव से अनुशासनहीन होती है। सत्ताधारी राजनेता भी स्वार्थी, पदलोलुप और भ्रष्ट होते हैं। राजनीतिज्ञों का लक्ष्य सत्ता पाना, सत्ता से चिपके रहना होता है। ऐसे में तनाव, अस्थिरता, हिंसा और अराजकता प्रिज्मीय समाज की विशेषता बन जाती है।
5. जिन प्रिज्मीय समाजों में धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बहुलवाद है (भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका) वहाँ वर्गीय हित सर्वोपरि होते हैं, जिसके कारण टकराव की संभावना बढ़ जाती है, (प्रायः एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका में यही स्थिति बनी रहती है)। असमानताऐं, विषमताऐं, वर्ग-विभेद, जातीयता, धर्मान्धिता इत्यादि का सबसे पहला कुप्रभाव प्रशासन व्यवस्था पर पड़ता है। प्रशासन-वर्ग हितों का अखाड़ा बन जाता है। क्रान्ति की संभावना भी बढ़ जाती है।

11.7.2 औपचारिकतावाद(Formalism)

औपचारिकता प्रिज्मीय समाज की दूसरी विशेषता है। व्यवहार या तो औपचारिक होते हैं या अनौपचारिक। प्रशासन में इन व्यवहारों का अपना महत्व होता है। रिग्स की नजर में परम्पारिकता और वर्णात्मकता के मध्य, औपचारिक और प्रभावी शक्ति के मध्य, संवैधानिक, कानूनी, नियमनीय, संगठनात्मक और संख्यात्मक के प्रभावों तथा शासन और समाज के वास्तविक तथ्यों के मध्य किस हद तक असंगति या अन्तर होता है, इस बात का सम्बन्ध औपचारिकतावाद से है। एक ओर औपचारिक रूप से लागू किये गये और दूसरी ओर प्रभावशाली ढंग से व्यवहार में लाये गये मानकों के मध्य और वास्तविकताओं तथा सत्ताके निर्धारित उद्देश्यों के मध्य मौजूद रिक्तता तथा दोषों का मापक औपचारिकतावाद है। दूसरे शब्दों में व्यवहार और सिद्धान्त का अन्तर औपचारिकतावाद समझता है। इस रूप में औपचारिकतावाद प्रिज्मीय समाज की एक विशेषता बन जाती है।

इस तरह औपचारिकता तथा वास्तविकता में जितनी विसंगति होगी, व्यवस्था में उतनी ही अधिक औपचारिकता के लक्षण मौजूद होंगे। प्रिज्मीय समाज की तुलना में विस्तृत तथा चक्रीय समाजों में अधिक यथार्थ होता है, लेकिन प्रिज्मीय समाज में औपचारिकतावाद अधिकतर होता है। संक्षेप में औपचारिकतावाद में जो मुख्य विशेषताऐं उभर कर सामने आती हैं, वे इस प्रकार हैं-

1. यद्यपि अधिकारियों के कार्यो के निष्पादन को कानून, नियम, अधिनियम इत्यादि निर्देषित करते हैं, लेकिन इन अधिकारियों का वास्तविक व्यवहार अधिक महत्वपूर्ण होता है। वे नियमों के अनुसार भी काम करते हैं और उनको तोड़ भी देते हैं। इस के कारण तीन हैं, पहला- सरकार पर उद्देश्यों को पूरा करने के लिए दबाव की कमी; दूसरे- नौकरशाही की क्रियात्मकता पर सामाजिक प्रभाव की दुर्बलता; तीसरे- नौकरशाहों का निरंकुश आचरण। इस तरह अधिकारियों का आचरण बड़ा अपूर्वानुमेय (unpredictable) बन जाता है। वे कब क्या करेंगे, इस बारे में कुछ अनुमान नहीं लगाया जा सकता।
2. इस कर्त्तव्यविहीन, दिशाहीन और निरंकुश या मनमाने आचरण का कारण सरलता से पैसा कमाना, पैसा कमाने की परिस्थितियाँ पैदा करना और काम के प्रति उदासीन रहकर भ्रष्टाचार को बढ़ावा देना होता है। इस तरह औपचारिकतावाद समाज में भ्रष्टाचार का स्रोत बन जाता है।

3. सामाजिक जीवन में भी औपचारिकतावाद व्याप्त रहता है। सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं से सम्बन्धित कानून तो बनते हैं, लेकिन उनका सम्मान किया जाता है और न वे लागू किये जाते हैं। सरकार इनको लागू करने के प्रति संजीदा नहीं होती है। विकासशील देशों की तो यह विशेष खासियत है।
4. रिग्स ने संवैधानिक औपचारिकतावाद की ओर भी इशारा किया है। इसका अर्थ है संवैधानिक सिद्धान्तों तथा उनके वास्तविक लागू करने में अन्तर। भारत इस की एक मिसाल है। उदाहरण के लिए भारत में संवैधानिक दृष्टि से मुख्यमंत्री का चुनाव विधानसभा के सदस्य करें, लेकिन करती है केन्द्रीय राजनीतिक पार्टी। कानूनों को बनाने का अधिकार संसद को है लेकिन कानून बनाती है नौकरशाही। इस संवैधानिक औपचारिकतावाद से नौकरशाही बलवान होती है। वास्तविकता तो यही है कि प्रिज्मीय समाज में कानून का शासन नहीं व्यक्ति (अधिकारी) विशेष का शासन होता है। सत्ता राजनीतिज्ञों के हाथ में नहीं, नौकरशाहों के हाथ में होती है। नौकरशाह एक समूह में एक राजनीतिक दल का रूप ले लेते हैं। राजनीतिक दल एक औपचारिकता मात्र रह जाते हैं।

11.7.3 अतिराव या सर्वव्यापिता (Overlapping)

रिग्स के अनुसार, अतिराव या सर्वव्यापिता(Overlapping) प्रिज्मीय समाज की तीसरी विशेषता है। जब संरचना औपचारिक रूप से प्रभावशाली नहीं बन पाती तो अतिराव की समस्या पैदा हो जाती है। बहुकार्यात्मक और एकलकार्यात्मक अथवा विस्तृत एवं चक्रीय समाजों में यह समस्या नहीं होती है, किन्तु प्रिज्मीय समाजों में ऐसा होता है। यहाँ नई सामाजिक संरचनाऐं सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करती रहती हैं। संक्षेप में अतिराव के कारण प्रिज्मीय समाज में जो बातें उभर कर सामने आती हैं वे इस प्रकार हैं-

1. प्रिज्मीय समाज मं अभिनव(New) या आधुनिक सामाजिक संरचनाओं का निर्माण होता है, लेकिन पुरानी और अविस्तृत संरचनाऐं अपना वर्चस्व बनाये रखती हैं।
2. यद्यपि नये मानकों और मूल्यों का जिनका सम्बन्ध आमतौर से चक्रीय संरचना से होता है, औपचारिक मान्यता मिलती है, लेकिन सच यह है कि उन पर जबानी खर्च (पाखण्ड) होता है। लेकिन पारम्परिक मूल्यों के पक्ष में इन नये मानकों और मूल्यों की अनदेखी होती है।
3. देखा यह गया है कि प्रशासनिक व्यवहार यथार्थ में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य गैर-प्रशासनिक तत्वों से प्रभावित होता है। जितना प्रभावित करने की क्षमता बढ़ती है, उतना अतिराव बढ़ता है। इस तरह इन समाजों में गैर-प्रशासनिक तत्व प्रशासन को विशेष तौर पर प्रभावित करते हैं, इसलिए अतिराव बना रहता है।
4. अतिराव के कारण प्रिज्मीय समाज में कुछ खास पहलू उभर कर सामने आते हैं, जिनके परिणाम स्वरूप जो विशेषताऐं पनपती हैं, वे हैं- भाई-भतीजावाद; बहु-सम्प्रदायवाद; बाजार-कैन्टीन की अर्थ व्यवस्था; बहु-मूल्यता; तथा सत्ता और नियंत्रण की पृथकता।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रिज्मीय समाज में वे सारी बुराईयाँ पनपती हैं जो मानवीय मूल्यों के लिए चुनौती होती हैं।

11.8 रिग्स का 'साला मॉडल' (Rigg's Sala Model)

साला 'स्पेनिश' भाषा का शब्द है, जिसका प्रयोग लैटिन-अमरीकी देशों में सरकारी कार्यालयों के लिए किया जाता है। इस शब्द का हिन्दी में कोई रूपान्तर नहीं है। इसलिए शब्द 'साला'(Sala) ही प्रयोग किया जा सकता है। रिग्स का प्रिज्मीय मॉडल सम्पूर्ण सामाजिक परिवेश और व्यवहार पर विचार करता है। प्रिज्मीय समाज, रिग्स के अनुसार, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और प्रशासकीय उप-व्यवस्थाओं(Sab-Systems) से मिलकर बनता

है। रिग्स की नजर में ये 'उप-व्यववस्थाऐं' ही 'साला' मॉडल है। कुछ विचारकों ने विस्तृत समाज में 'साला' जैसी शक्ल की प्रशासनिक इकाई को 'ब्यूरो' अथवा 'ऑफिस' अथवा 'चैम्बर' कहा है, लेकिन यह गलत है। साला, ब्यूरो, ऑफिस या चैम्बर से हटकर अपनी अलग विशिष्टता वाली इकाई है। प्रशासनिक तार्किकता और क्षमता व्यूरो की विशेषता है। साला में यह तत्व मौजूद नहीं रहते। एक अवधारणा यह भी है कि रिग्स ने प्रिज्मीय समाज में नौकरशाही के लिए 'साला' शब्द का प्रयोग किया है, लेकिन साला नौकरशाही का समर्थक नहीं हो सकता। साला की प्रकृति बहुत जटिल है और इसमें नौकरशाही की सभी विशेषताओं का होना संभव नहीं है। साला मॉडल से जो तथ्य उभर कर सामने आते हैं वे इस प्रकार है-

1. साला में अधिकारियों का चयन प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से, लेकिन अन्ततः नियुक्ति में भाई-भतीजावाद होता है।
2. साला के अधिकारी समाज या जन कल्याण के बजाय, निजी उन्नति एवं लाभ से प्रेरित होते हैं।
3. अधिकारियों का व्यवहार अनुदार, संर्कीण और निर्देशित होता है। नियमों, अधिनियमों और निर्देशों की अनदेखी होती है। आम लोगों के हितों की अनदेखी होती है, चुनींदा लोग बड़े लाभों के हकदार बनते हैं।
4. बहु सम्प्रदायवाद(Poly-communalism) प्रशासनिक समस्याऐं पैदा करता है। अधिकारी कानूनों की अनदेखी करके उस सम्प्रदाय के हितों के पक्ष में काम करते हैं, जिनसे वे बधे होते हैं, जैसे- भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश।

11.8.1 साला मॉडल की प्रकृतियाँ(Characteristics of Sala Model)

प्रोफेसर हैडी के अनुसार साला मॉडल की निम्नलिखित प्रकृतियाँ हैं- सेवाओं का असमान वितरण; संस्थागत भ्रष्टाचार; नियमों के क्रियान्वयन में अकार्यकुशलता; भर्ती में भाई-भतीजावाद; आत्मरक्षा की प्रवृत्तियाँ; और औपचारिक आकांक्षाओं और वास्तविक व्यवहार के बीच भारी दूरियां।

दूसरी ओर स्वंय रिग्स ने साला मॉडल की प्रवृत्तियों का विवेचन इस प्रकार किया है-

1. भ्रष्टाचार(Corruption), साला मॉडल के अधिकारी अत्यन्त भ्रष्ट होते हैं। इसके अनेक कारण हैं। लेकिन पहला कारण उनकी चयन की प्रक्रिया से है जो पूरी तरह पक्षपात पर निर्भर करती है। चयन में योग्यता न देखकर भाई-भतीजावाद का बोल-बाला रहता है। परिणाम यह होता है कि अयोग्य, अनैतिक, निष्क्रिय, उदासीन और भ्रष्ट प्रकृति के लोग अधिकारी बन बैठते हैं।
2. अतिराव(Overlapping), साला व्यवस्था में यदि उच्चतर अधिकारी को अपने अधीनस्थ अधिकारी की योग्यता तथा प्रतिनिष्ठा में से एक को चुनना हो तो वह ऐसे अधीनस्थ का चयन करता है जो उसके प्रति वफादार हो, भले ही वह अक्षम और अयोग्य हो। वास्तव में उसका लक्ष्य स्वार्थ की पूर्ति करना होता है। यहाँ अधिकारी हित प्रशासनिक हितों को दबा देते हैं। यही स्थिति अतिराव है।
3. पदसोपान सिद्धान्त का अभाव(Lack of Hierarchy theory), साला प्रशासनिक व्यवस्था में विभागों को नौकरशाही सिद्धान्त के अनुसार पदसोपान में संगठित नहीं किया जाता है। सत्ता का कोई उत्तरोत्तर क्रम निर्धारित नहीं किया जाता। अधिकारी स्वतंत्र होते हैं और पृथक-पृथक रूप से अपनी सत्ता का प्रयोग करते हैं। इस तरह संगठन में विजातीय की स्थिति बन जाती है।
4. औपचारिकतावाद(Formalism), फैरल हैडी के अनुसार साला व्यवस्था में औपचारिक आकांक्षाओं तथा वास्तविक व्यवहारों में अन्तर रहता है। अतः यहाँ साला संगठनों का जो औपचारिक तथा लिखित स्वरूप होता है, वह व्यवहार में देखने को नहीं मिलता है, क्योंकि अधिकारियों का लक्ष्य निजी हितों की पूर्ति होती है, इसलिए वे नियमों की अनदेखी करते हैं।

11.8.2 प्रिज्यमीय समाज और परिवर्तन(Prismatic Society and change)

किसी भी समाज का लक्ष्य विकास को पाना है। इसके लिए परिस्थितियाँ अनुकूल होनी चाहिए। विकास की प्रक्रिया का इतिहास पश्चिमी समाजों का इतिहास है। इन समाजों को विकास के मानकों को पाने के लिए लम्बा इन्तजार करना पड़ा। तब उनके सामने कोई मॉडल नहीं था। धीरे-धीरे वे अपने व्यवहार को इच्छानुसार ढाल पाये। रिग्स ने पश्चिमी समाजों और अमरीकी समाज की विकास प्रक्रिया का अनुभावात्मक अध्ययन किया और वह इस नतीजे पर पहुँचा कि पश्चिमी समाजों को विकास की प्रक्रिया में विजातीयता, औपचारिकता तथा सर्वव्यापिता का कम अनुभव करना पड़ा।

किसी भी समाज में परिवर्तन के लिए दबाव आन्तरिक भी होते हैं और बाहरी भी। प्रिज्मीय समाज में ऐसा अधिक होता है। रिग्स प्रिज्मीय समाज पर पड़ने वाले बाहरी दबाव को 'ऐक्सोजीनियस'(Exogeneious) ('बहिर्जात' हिन्दी में समानार्थ हो सकता है) परिवर्तन कहता है। लेकिन यदि प्रिज्मीय समाज पर दबाव आन्तरिक हो तो उसे रिग्स एन्डोजिनियस(Endogeneous) (हिन्दी में समानार्थ 'अन्तर्जात' हो सकता है) कहलाता है। लेकिन अगर परिवर्तन दोनों दबावों से आये तो उसको रिग्स ने 'इक्वीजेनेटिक'(Equi-genetic) (हिन्दी में समानुवंशिक) की संज्ञा देता है। यहाँ रिग्स का तर्क यह है कि विवर्जन की प्रक्रिया जितनी ज्यादा(Process of diffraction) बहिजार्त होगी, उसकी प्रिज्मीय अवस्था उतनी ही अधिक पारम्परिक और विजातीय होगी और जितनी अधिक अर्न्तजात होगी उसकी प्रिज्मीय अवस्था उतनी ही कम औपचारिक और विजातीय होगी।

रिग्स के अनुसार प्रिज्मीय समाज में जितनी अधिक औपचारिकता, विजातीयता और सर्वव्यापिता होगी, 'बाहरी प्रिज्मीय' स्वरूप उतना ही ज्यादा और प्रिज्मीय परिवर्तन के गुण उतने ही कम होंगे।

11.8.3 साला तथा प्रिज्मीय समाज में सम्बन्ध

साला तथा प्रिज्मीय समाज में बहुत कुछ हद तक समानता देखने को मिलती है। रिग्स ने साला प्रतिमान की किसी संक्रमणशील(Transitional) समाज में मौजूद रहने का दावा नहीं किया है। उसने प्रिज्मीय समाजों में लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए 'साला मॉडल' का सहारा लिया है। कारण इसका यह है कि साला व्यवस्था तथा प्रिज्मीय समाजों में प्रशासनिक विशेषताओं के सन्दर्भ में पर्याप्त समानताऐं पायी जाती हैं। उदाहरण के लिए दोनों समाजों में औपचारिकता और व्यवहारिकता के मध्य भिन्नता पायी जाती है। दोनों ही समाजों में सतही तौर पर कानूनों के पालन को महत्वपूर्ण माना जाता है, लेकिन वास्तविकता इसके विपरीत है। दोनों के समाज संकीर्णता से ग्रस्त रहते हैं। नियम कुछ हैं, यथार्थ कुछ और है। लगभग दोनों समाजों के लक्षण एक जैसे हैं। फिर दोनों व्यवस्थाओं में अन्तर क्या है? रिग्स के अनुसार प्रिज्मीय समाज एक पूर्ण व्यवस्था है, लेकिन साला उसकी उप-व्यवस्था है।

पूर्ण व्यवस्था तथा उप-व्यवस्था के सन्दर्भ में रिग्स का यह मानना है कि प्रिज्मीय समाज में परस्पर व्यापिता उसका एक महत्वपूर्ण लक्षण है। उसके अनुसार प्रिज्मीय समाज एक अत्यंत केन्द्रीक्रत(centralised) तथा गाढ़ा या सांद्र (concentrated) प्राधिकार संरचना है जो अत्यंत बिखरी हुई है तथा स्थानीकृत नियंत्रण व्यवस्था पर चढ़ जाती (overlapping) है या लागू होती है। यहाँ सत्ता और नियंत्रण एक-दूसरे से अलग होते हैं। सत्ता कानूनी शक्ति और नियंत्रण एक-दूसरे से अलग होते हैं। सत्ता कानूनी शक्ति है, लेकिन नियंत्रण गैर-कानूनी शक्ति है। व्यवहारिक रूप से 'सत्ता' (Dejure: कानूनी) नियंत्रण (defacto: वास्तविक) के सामने आत्मसमर्पण करती है। रिग्स ने प्रिज्मीय समाज को एक 'असंतुलित राज्य'(Polity) माना है, क्योंकि यहाँ सत्ता तो होती है लेकिन नौकरशाही कानूनी सत्ता की परवाह न करते हुए प्रशासनिक व्यवस्था पर हावी रहती है। इसलिए साला मॉडल के अधिकारी प्रिज्मीय समाज में स्वंय को सहज महसूस करते हैं, क्योंकि विवर्तित समाज उनको मनमानी करने का अवसर नहीं देता है।

प्रिज्मीय समाज में साला के अधिकारियों के हाथों में सत्ता केन्द्रित हो जाती है और वे उसका दुरूपयोग करके जन इच्छाओं के विपरीत काम करते हैं। साला मॉडल के अधिकारियों के लिए कमजोर राजनीतिक व्यवस्था तथा नेतृत्व एक वरदान होता है। वे राजनेताओं के नियंत्रण से बाहर हो जाते हैं और परिणामस्वरूप संसद, राजनीतिक दल, स्वयं-सेवी संगठन तथा लोकमत सब प्रभावहीन हो जाते हैं।

11.9 प्रिज्मीय समाज की आलोचना

लोक प्रशासन पर बहस हो और रिग्स का नाम न आये ऐसा असंभव है। बिना रिग्स के सन्दर्भ के लोक प्रशासन का अध्ययन अधूरा है। ऐसा इसलिए कि उसने लोक प्रशासन को समझाने के लिए हर वह तकनीक अपनाई है, जो तार्किक हो सकती है। तुलनात्मक लोक प्रशासन तो वास्तव में उसका ऋणी है। लेकिन ऐसा कौन सा प्रशासनिक सिद्धान्तकार है, जिसकी आलोचना न हुई हो। यहाँ रिग्स भी अछूता नहीं है। यहाँ कुछ आलोचकों का रिग्स के सिद्धान्तों के बारे में नजरिया प्रस्तुत है-

1. सिसॉन, रिग्स के मॉडलों का एक बड़ा आलोचक है। उसके अनुसार रिग्स के लेखों को समझने के लिए उन्हें तीन बार पढ़ना पड़ेगा। पहले उसकी भाषा, फिर उसकी अवधारणा और फिर यह जानने के लिए कि उसके लेखों में कुछ है भी या नहीं। सिसॉन का यह आक्रमण उसके 'शब्दों' पर है।
2. रिर्चड चैपमैन के अनुसार, रिग्स को अपनी शब्दावली को स्पष्ट करने के लिए स्वंय अपना शब्दकोष तैयार करना चाहिए था। यहाँ भी रिग्स की शब्दावली पर उंगली उठाई गई है।
3. चैपमैन को संहेद है कि रिग्स का मॉडल कहाँ तक लोक प्रशासन को समझने में लाभदायक है।
4. दया कृष्ण के अनुसार, रिग्स के मॉडल अनुमानों पर आधारित हैं, लेकिन अनुभावात्मक साक्ष्यों की गैर-मौजूदगी के कारण ऐसे अनुमानों की सार्थकता सवालों के घेरे में रहती है। उसके अनुसार रिग्स का चक्रीय मण्डल अव्यवहारिक है। ऐसा समाज अनावश्यक है।
5. टिलमैन के अनुसार, रिग्स ने सामाजिक व्यवस्थाओं को स्पष्ट करने के लिए गलत विश्लेषणात्मक उपकरण भौतिक विज्ञान से ग्रहण करके लागू किये। रिग्स को उपयुक्त विश्लेषणात्मक उपागम अपनाना चाहिए था। रिग्स ने यह तो दिखाया कि पर्यावरण किस प्रकार से प्रशासन को प्रभावित करता है, लेकिन यह बताना भूल गया कि प्रशासन किस तरह सामाजिक परिवर्तन लाता है। संक्षेप में रिग्स के मॉडलों या समाजों की अवधारणाओं की आलोचना का सार यह है-
   - **प्रिज्मीय समाजों में असमानताऐं-** रिग्स द्वारा वर्णित प्रिज्मीय समाज असमानताओं और विभिन्ताओं से भरा पड़ा है, इसलिए विभिन्न समाजों को समझने के लिए अनेक प्रतिमानों की आवश्यकता को उसने महसूस नहीं किया।
   - **निषेधात्मक प्रवृत्ति-** रिग्स ने प्रिज्मीय समाजों में अतिराव(Overlapping) का उल्लेख किया है और उसकी बुराईयां भी गिनाई हैं। ऐसी स्थिति प्रिज्मीय समाजों की केवल निषेधात्मक(Negative) तस्वीर प्रस्तुत करती है।
   - **पश्चिमोन्मुख मॉडल-** रिग्स द्वारा प्रयुक्त शब्दावली से ऐसा लगता है कि उसका प्रिज्मीय मॉडल पश्चिमी जगत की ओर(Western-oriented) झुका हुआ है। मुनरो के अनुसार रिग्स के सिद्धान्त ने संयुक्त राज्य अमरीका जैसे विकसित राज्यों को प्रिज्मीय समाजों के कार्यों का मूल्यांकन करने के लिए मापदण्ड माना है, जो अनुचित था।
   - **सीमित और संकुचित अध्ययन-** रिग्स ने प्रिज्मीय समाजों के सीमित कार्यों का ही अध्ययन किया है। इस सीमित अध्ययन में मितव्ययता, कार्यकुशलता तथा नैतिकता के कार्यों को अध्ययन का

विषय बनाया है, क्योंकि यह कार्य पश्चिमी मापदण्डों का उल्लघंन करते हैं। इस तरह यह सीमित और संकुचित है।

- **गलत मान्यता-** रिग्स ने माना कि संयुक्त राज्य अमरीका चक्रीय प्रतिमान के नजदीक है, परन्तु यहाँ की स्थानीय सरकारों में कुछ प्रिज्मीय विशेषताऐं भी मिलती हैं। उसकी यह मान्यता गलत थी।
- **चक्रीय व्यवहार की अवहेलना-** रिग्स ने प्रिज्मीय समाज में चक्रीय(diffracted) व्यवहार की पूर्ण अवहेलना की है। उसने यह स्पष्ट नहीं किया कि इस समाज की विभिन्न संरचनाओं के मध्य महत्वपूर्ण अन्तर कौन-कौन से होते हैं।

11.10 रिग्स के मॉडलों का मूल्यांकन

इन आलोचनाओं का यह अर्थ नहीं है कि रिग्स की सामाजिक अवधारणा बिल्कुल निरर्थक है। उसके मॉडल बहुत महत्वपूर्ण हैं। उसकी यह मान्यता कि प्रिज्मीय मॉडल बहुकार्यातमक तथा एकलकार्यात्मक प्रतिमानों का मध्य बिन्दु है। यह मान्यता तर्कहीन नहीं है। वास्तव में कोई भी समाज न तो पूर्णतः बहुकार्यात्मक होता है और न ही पूर्णतः एकलकार्यात्मक। सभी समाज मध्यवर्ती स्थिति में होते हैं।

इस कारण एक सीमा तक मध्यवर्ती समाज प्रिज्मीय ही होते हैं। अतः रिग्स का प्रिज्मीय प्रतिमान सभी प्रकार के समाजों और उनकी प्रशासनिक संरचनाओं को समझाने के लिए उपयोगी है। वास्तविकता तो यह है कि यह प्रतिमान केवल एक 'बौद्धिक अभ्यास' है, जो सक्रमणशील समाजों में प्रशासनिक व्यवहार को भी समझने में सहायक है। रिग्स एक समाजशास्त्री भी है और प्रशासनिक चिन्तक भी, इसलिए उसके मॉडल एक ओर सामाजिक व्यवस्था की विशेषताओं को समझते हैं, तो दूसरी ओर प्रशासनिक व्यवस्था और नौकरशाही की विशेषताओं को भी व्यक्त करते हैं। इस तरह रिग्स का प्रिज्मीय मॉडल समाजों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं को समझने में अधिक सहायक है।

लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन में रिग्स का विशेष स्थान है। उसके मॉडल निगमनात्मक(Deductive) प्रकृति के हैं। जब रिग्स ने लिखना आरम्भ किया तो तृतीय विश्व ऐशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका का अभ्युदय हो रहा था। नये राष्ट्र अस्तित्व में आने लगे थे। इनमें कुछ बहुत अविकसित थे और कुछ में विकसित होने की क्षमता थी। जो प्रक्रिया चली उसने इन देशों को विकासशील देशों का दर्जा दिया। रिग्स के चिन्तन पर इन नवोदित राष्ट्रों में होने वाली उथल-पुथल और घटनाओं का गहरा प्रभाव पड़ा। उसने देखा कि परिस्थितियों तथा पर्यावरण की राज्यों के विकास में क्या भूमिका होती है? इसलिए उसने इन समाजों के विश्लेषण के लिए परिस्थितिकीय नजरिये से काम लिया। तुलनात्मक लोक प्रशासन उसका नया अध्ययन-क्षेत्र बना। उसने तुलनात्मक लोक प्रशासन को एक नया दृष्टिकोण नया आयाम तथा नई दिशा प्रदान की। इस तरह लोक प्रशासन का एक नया युग आरम्भ हुआ। उसके सिद्धान्त, तकनीकें तथा मॉडल चिन्तकों तथा शोधकर्ताओं के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बन गये।

इतना कुछ होते हुए भी रिग्स आलोचना का शिकार बना। विशेष रूप से उसकी कठिन शब्दावली, समाजों की निषेधात्मक तस्वीर, प्रिज्मीय समाज में उसके द्वारा दिखाई विभिन्नताऐं, मूल विषय से उसका भटकाव तथा उसकी अधूरी एवं एकांकी मान्यताऐं, प्रशासनिक चिन्तकों की आलोचनाओं से बच नहीं सकीं। सच यह है कि पश्चिमी जगत के चिन्तक आंखें बंद करके किसी विचार को स्वीकार नहीं करते हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. ''The Ecology of Public Administration'' का लेखक कौन है?
2. Agraria and Industria की अवधारणा किस चिन्तक की है?

3. प्रिज्मीय समाज किसी समाज की कौन सी अवस्था है?
4. साला मॉडल क्या है?
5. प्रिज्मीय समाज की कितनी विशेषताऐं हैं?
6. रिग्स की सबसे अधिक आलोचना किस बारे में हुई है?

11.11 सारांश

प्रशासनिक सिद्धान्तों के क्षेत्र में फ्रेड रिग्स (1917-2008) का जो योदान है और तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में जो उनकी बौद्धिक भूमिका है, उसको सारांश में इस प्रकार दर्शाया जा सकता है-

1. फ्रेड रिग्स प्रशासनिक प्रतिमान रचना तथा तुलनात्मक लोक प्रशासन अध्ययन के अगुआ माने जाते हैं। रिग्स ने विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का परिस्थितिकीय तथा विकासात्मक सन्दर्भों में अध्ययन किया है, अपने ग्रंथ ''The Administration in Developing Countries'' में उसने सामाजिक मॉडल को प्रस्तुत किया तथा प्रिज्मीय समाजों के अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये।
2. रिग्स अन्तरसांस्कृतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासनिक अध्ययन पर जोर देकर तुलनात्मक लोक प्रशासन की बुनियाद डाली। इस तकनीक के माध्यम से वह विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं को समझ सका।
3. रिग्स ने अपने प्रशासनिक सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए परिस्थितिकीय उपागम, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम तथा आदर्श प्रतिमानों का सहारा लिया।
4. विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के विश्लेषण के लिए उसने अनेक आदर्श मॉडलों का विकास किया। उसने कृषक और औद्योगिक समाजों को समझाने के लिए 'कृषका' तथा 'औद्योगिका' मॉडल तैयार किये। जब उसके इस दृष्टिकोण की आलोचना हुई तो उसने विस्तृत(Fused), प्रिज्मीय(Prismatic) तथा चक्रीय(diffracted) मॉडलों का निर्माण करके पूर्व-ऐतिहासिक, विकासशील तथा विकसित समाजों के लिए मॉडल तैयार किये।
5. रिग्स का सर्वाधिक लोकप्रिय मॉडल 'प्रिज्मीय' अथवा समपार्श्वीय है जो विस्तृत समाज तथा चक्रीय समाज की एक संक्रमणकालीन (दोनों के मध्य) अवस्था है। प्रिज्मीय समाज की विशेषताओं में उसने विजातीयता, औपचारिकता तथा अतिराव का उल्लेख किया।
6. प्रिज्मीय समाज की उप-व्यवस्था अथवा प्रशासनिक उप-व्यवस्था को उसने 'साला'(Sala) का नाम दिया। 'साला' को उसने एक मॉडल के रूप में पेश किया और उसकी वे ही विशेषताऐं बताई जो प्रिज्मीय समाज की हैं।
7. रिग्स ने प्रिज्मीय समाज में सुधार एवं परिवर्तन लाने की भी बात की और परिवर्तन के लिए 'बहिर्जात' (Exogeneous), 'अन्तर्जात'(Endogeneous) तथा 'सम-आनुवांशिक'(Equi-Genetic) तत्वों की पहचान की।
8. रिग्स के मॉडलों की आलोचना भी की गयी। विशेष रूप से उसकी शब्दावली के सन्दर्भ में, जिसने उसकी अवधारणाओं को भ्रमित कर दिया। उसका रुजहान इतना परिवर्तन पर नहीं था जितना साम्यस्थिति पर। वास्तव में वह क्या साबित करना चाहता था, इस पर मतभेद है। उसने विकासशील देशों की तुलना अमरीका से क्योंकि यह समझ से परे है।
9. लेकिन ये आलोचनाऐं रिग्स के मॉडलों के महत्व को कम नहीं कर सकती। उसने लोक प्रशासन को एक नया आयाम, एक नई तकनीक (तुलनात्मक), एक नई अध्ययन पद्धति (अनुभावात्मक), तथा एक नई दिशा प्रदान की।

11.12 शब्दावली

विस्तृत संगलित(Fused)- कार्यत्मक रूप से अपविस्तृत समाज 'फ्यूज़्ड' कहलाये जाते हैं अथार्थ किरण के प्रारंभिक बिन्दु को विस्तृत कहा जाता है।

समपार्श्वीय(Prismatic)- यहाँ प्रकाश किरण के बदलाव की प्रक्रिया का इस्तेमाल सामाजिक रूपांतरणों को व्यक्त करने की प्रक्रिया के रूप में किया गया है।

विवर्तित या विवर्जन(Diffracted)- अथार्थ बहुरंगी पैटर्न में विभाजन अथवा प्रकाश की किरणों का इंद्रधनुषी सात रंगों में विश्लेषण, विभाजन या विवर्तन करना।

Sala (विभाग, कार्यालय, चैम्बर)- स्पेनिश शब्द, सरकारी कार्यालय, धार्मिक सम्मेलन, कमरा, पेवेलियन इत्यादि। यहाँ 'साला' से अभिप्राय प्रिज्मीय समाज की उप-व्यवस्था।

Dejure- कानूनी, वैधानिक, defacto- वास्तव में, तथ्यात्मक।

Exogeneous- बाह्य या बाहरी, Endogeneous- आन्तरिक या अंदरूनी, Equi-genetic- समानुवंशिक (यह तीनों शब्द परिवर्तन के सम्बन्ध में हैं)।

11.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. फ्रेडरिक रिग्स, **2.** रिग्स, **3.** प्रथम तथा तृतीय अवस्थाओं के बीच की अवस्था, **4.** प्रिज्मीय समाज की उप-व्यवस्था, **5.** तीन, **6.** शब्दावली

11.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रसाद, प्रसाद, सत्यनारायण: प्रशासनिक चिन्तक, नई दिल्ली।
2. रविन्द्र प्रसाद, वी0 एस0 प्रसाद, परधारसाराधी: प्रशासनिक चिन्तक, नई दिल्ली।
3. वही: Administrative Thinkers.
4. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन, जयपुर।
5. रमेश कुमार अरोड़ा, तुलनात्मक लोक प्रशासन, जयपुर।
6. S.R. Maheshwari : Administrative Thinkers, नई दिल्ली।

11.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Fred. W. Rigg's: Administration in Developing Countries : The Theory of Prismatic Society.
2. Fred. W. Rigg's: The Ecology of Public Administration.
3. Ferrel Heady: Public Administration- A Comparative Perspective.

11.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. रिग्स के आदर्श मॉडल को स्पष्ट कीजिए।
2. रिग्स की विस्तृत-प्रिज्मीय-चक्रीय अवधारणा क्या है?
3. रिग्स के प्रिज्मीय(समपार्श्वीय) समाज की व्याख्या करें।
4. साला मॉडल क्या है? विस्तार से समझाईये।

इकाई- 12 प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण

इकाई की संरचना

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 नियंत्रण का अर्थ
12.3 लोक प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता
12.4 प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण
12.5 प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण की समस्याऐं
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
12.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.11 निबंधात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

प्रजातांत्रिक समाज में सत्ता के न्यायोचित प्रयोग के लिये उस पर नियंत्रण रखने की आवश्यकता पड़ती है। सत्ता जितनी अधिक होगी, नियंत्रण की आवश्यकता भी उतनी ही अधिक होगी। समुचित नियंत्रण व्यवस्था के अभाव में प्रशासन कानून को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत कर सकता है। कानूनों और स्थापित मर्यादाओं का उल्लंघन हो सकता है। व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिये अधिकारी पक्षपातपूर्ण व्यवहार, भाई-भतीजावाद और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के हनन जैसे मार्गों को अपनाकर अपनी सत्ता का दुरूपयोग कर सकते हैं। हमारा देश विकासोन्मुख है। अतः विकास कार्यों में वृद्धि के साथ-साथ लोक प्रशासन के अधिकारों में भी स्वतः वृद्धि हो रही है। इससे सत्ता के दुरूपयोग की संभावना भी बढ़ गयी है। इस पर नियंत्रण रखने तथा प्रशासन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने हेतु कुछ सुरक्षात्मक कदम आवश्यक है। नियंत्रण मुख्यतया तीन प्रकार से स्थापित किया जाता है। प्रस्तुत अध्याय हम प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण के साधनों के बारे में विस्तार से जानेंगे।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- प्रशासन के संबंध में नियंत्रण के अभिप्राय व आवश्यकता के संबंध में जान पायेंगे।
- कार्यपालिका नियंत्रण के प्रकारों को समझ पायेंगे।
- कार्यपालिका नियंत्रण से सम्बन्धित क्या समस्याएँ उपस्थित होती हैं तथा उनसे सम्बन्धित क्या उपाय किये जा सकते हैं? इस संबंध में जान पायेंगे।

12.2 नियंत्रण का अर्थ

लोक प्रशासन पर नियंत्रण के विभिन्न प्रकारों को समझने से पूर्व आइये हम नियंत्रण के अभिप्राय को समझने का प्रयास करते हैं।

संगठन की व्यवस्था बनाये रखने हेतु तथा इसके समस्त अंगो को विधिवत् ढंग से संचालित करने हेतु नियंत्रण आवश्यक होता है। वस्तुतः नियंत्रण संगठन का वह अमूर्त् तत्व तथा प्रक्रिया है जो अन्य स्वरूपों में अपना कार्य करता है तथा संगठन की प्रक्रियाओं जैसे- संचार, समन्वय, पर्यवेक्षण, सत्ता तथा उत्तरदायित्व इत्यादि से घुल-मिल गया है। बहुधा निरीक्षण, पर्यवेक्षण, समन्वय, जांच-पड़ताल तथा नियंत्रण एक जैसे ही प्रतीत होते हैं, जबकि इनमें काफी अन्तर है। नियंत्रण संगठन की अधिकांश प्रक्रियाओं का एक उद्देश्य है जो संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये आवश्यक है।

शब्दकोषीय दृष्टि से नियंत्रण- निर्देश देने, आदेश देने तथा प्रबन्ध करने की सत्ता और शक्ति नियंत्रण है या दूसरे शब्दों में किसी चीज का प्रबन्ध अथवा प्रतिबन्ध नियंत्रण है।

हेमैन के शब्दों में ''नियंत्रण, देखभाल करने की एक प्रक्रिया है, ताकि यह पता किया जा सके कि नियोजन का अनुसरण किया जा रहा है या नहीं, लक्ष्यों की दिशा में प्रगति हो रही है या नहीं और यदि आवश्यक हो तो सुधार के लिये क्या प्रयास किया जाये।''

मैकफारलैण्ड के अनुसार, ''नियंत्रण एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा अधिकारी अपने अधीनस्थों के निष्पादन की तुलना निर्धारित योजनाओं, आदेशों, उद्देश्यों अथवा नीतियों के अनुसार अथवा इनके निकट करते हैं।''

वस्तुतः उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नियंत्रण, संगठन की व्यवस्था को बनाये रखने तथा उसके उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये एक 'सुधारात्मक उपाय' है, जिसे प्रायः 'प्रबन्ध का नकारात्मक पक्ष' भी मान लिया जाता है। वास्तव में नियंत्रण, जवाबदेयता को सुनिश्चित करने की एक विधि या आवश्यकता है। प्रभावशाली नियंत्रण के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व 'समय' है, अर्थात् कार्य एवं प्रक्रिया पर नियंत्रण समय रहते किया जाना चाहिये।

12.3 लोक प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता

लोक प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता के संबंध में प्रो0 व्हाइट कहा कि, ''लोकतांत्रिक समाज में शक्ति पर नियंत्रण आवश्यक है। शक्ति जितनी अधिक है, नियंत्रण की भी उतनी ही अधिक आवश्यकता है।'' आज के आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्य के सन्दर्भ में ये बात और अधिक तर्कसंगत नजर आती है। आज राज्य ने लोक सेवाओं के द्वारा अपने नागरिकों को अपने ऊपर और अधिक से अधिक निर्भर बना लिया है। राज्य के ऊपर बढ़ते हुए कार्यों के बोझ ने प्रशासकीय शक्ति में स्वाभाविक रूप से विस्तार कया है। आज प्रशासन असीमित शक्तियों का केन्द्र बन गया है। लोक प्रशासन और उसका सेवी-वर्ग अपनी शक्तियों का दुरूपयोग ना करे, निरंकुश और अनुत्तरदायी न बने, इसके लिये यह आवश्यक है कि उनकी शक्तियों को नियंत्रित किया जाये और इन पर अंकुश रखा जाये। एक प्रजातांत्रिक समाज में शक्ति पर नियंत्रण रखना और अधिक इसलिये भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि जनतंत्र में प्रशासन का संचालन जन-हित के लिये जनता की सहमति से किया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि प्रशासन जनता के प्रति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी रहे। दूसरे शब्दों में कहें, तो लोक प्रशासन को जनता के प्रति उत्तरदायी तथा संवेदनशील बनाने हेतु सार्थक तथा प्रभावी नियंत्रण व्यवस्था का होना आवश्यक है। प्रशासन और उससे सम्बन्धित लोग जब अपनी सत्ता का दुरूपयोग करने लगते हैं, तो बड़े से बड़े कार्यपालक को भी सत्ता से हाथ धोना पड़ता है। अगस्त 1990 के प्रथम सप्ताह में, जब पाकिस्तान के राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो को बर्खास्त किया तो उन पर सबसे प्रमुख आरोप यह लगाया गया था कि बेनजीर, उसके पति आसिफ जरदारी, मां नुसरत भुट्टो एवं अन्य सम्बन्धियों ने अपनी सत्ता एवं शक्ति का पूर्णतः दुरूपयोग किया था तथा उन पर मुकदमा भी चलाया गया। लार्ड एक्टन (Lord Acton) ने इस सन्दर्भ में ठीक ही कहा है कि, ''शक्ति भ्रष्ट करती है और पूर्ण शक्ति पूर्णत: भ्रष्ट करती है।'' अतः लोक प्रशासन पर नियंत्रण की अनिवार्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त लोक प्रशासन पर नियंत्रण के दो और उद्देश्य होते हैं, प्रथम-

वित्तीय संसाधनों का दुरूपयोग रोकना एवं द्वितीय- संविधान, कानून, नीतियां तथा निर्धारित नियमों के अनुरूप प्रशासनिक कार्यों का संचालन कराना। सामान्यतः वित्तीय नियंत्रण के लिये वित्त मंत्रालय, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक तथा संसदीय प्रक्रियाऐं एवं समितियां महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। लेकिन लोक प्रशासन पर नियंत्रण के तीन प्रमुख स्वरूप हैं- संसदीय नियंत्रण/विधायी नियंत्रण, कार्यपालिका नियंत्रण और न्यायिक नियंत्रण।
इस प्रकार शासन के इन तीनों अंगों के माध्यम से लोक प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है।

12.4 प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण

लोक प्रशासन से सम्बन्धित संगठनों पर नियंत्रण न सिर्फ विधायिका और न्यायपालिका द्वारा स्थापित किया जाता है बल्कि स्वयं कार्यपालिका भी प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करती है। कार्यपालिका नियंत्रण लोक प्रशासन को नियंत्रित करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसे आन्तरिक नियंत्रण के नाम से भी जाना जाता है। शासन के अंगों में कार्यपालिका एक महत्वपूर्ण हिस्सा है जो कानूनों के क्रियान्वयन तथा कल्याणकारी नीतियों के निर्माण एवं निष्पादन के लिये उत्तरदायी होता है। संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में शासन की नीतियों का निर्धारण कार्यपालिका द्वारा किया जाता है। उत्तरदायी शासन प्रणाली में शासन के समस्त कार्यों का उत्तरदायित्व कार्यपालिका पर होता है, जो अपने कार्यों के लिये संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। यद्यपि प्रशासक स्वयं नीतियों का क्रियान्वयन करते हैं। किन्तु उनके आचरण को कार्यपालिका की आशाओं के अनुरूप बनाये रखने हेतु कार्यपालिका के नियंत्रण की आवश्यकता होती है। संसदीय, विधायी तथा न्यायिक नियंत्रण के साथ कार्यपालिका नियंत्रण लोक प्रशासन के कार्यकरण को अत्यधिक प्रभावित करता है। यदि यह कहा जाये, कि कार्यपालिका द्वारा किया जाने वाला नियंत्रण सर्वाधिक प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है, तो काई अतिश्योक्ति नहीं होगी।
संसदीय लोकतंत्र वाले देशों में (भारत) कार्यपालिका के दो स्वरूप होते हैं। नाममात्र की कार्यपालिका एवं वास्तविक कार्यपालिका। नाममात्र की कार्यपालिका के रूप में राष्ट्रपति औपचारिक अथवा संवैधानिक प्रमुख होता है, जबकि राष्ट्रपति की शक्तियों को व्यवहार में काम में लेने के लिए प्रधानमंत्री तथा मंत्रिपरिषद् होती है, जिसे वास्तविक कार्यपालिका भी कहते हैं। उत्तरदायी शासन व्यवस्था में विभाग के भीतर होने वाले सम्पूर्ण कार्य का उत्तरदायित्व विभागीय मंत्री का ही होता है, क्योंकि मंत्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व, संसदीय शासन प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता मानी जाती है। कार्यपालिका को संसद में जवाब देने के लिये तथा संसदीय उत्तरदायित्व निभाने के लिये ये आवश्यक है, कि कार्यपालिका स्वयं अपने विभाग के कार्यकलापों, उच्चाधिकारियों एवं नीतियों का पर्यवेक्षण और निरीक्षण करे। इसके लिये मंत्री का अपने विभाग पर नियंत्रण होना आवश्यक माना जाता है। आजकल शासन की नीतियों का निर्धारण कार्यपालिका द्वारा किया जाता है और नीतियों का क्रियान्वयन सेवी- वर्ग द्वारा किया जाता है। इसलिये सेवी-वर्ग पर, जो शासन की नीतियों का क्रियान्वयन करते हैं, कार्यपालिका के नियंत्रण की आवश्यकता सुस्पष्ट है। प्रो0 एफ0 ए0 निग्रो के अनुसार, ''कार्यपालिका का नियंत्रण विभागीय कार्यवाही के लिये तथा निर्धारित नीति के माध्यम से कार्य कराने के लिये अति आवश्यक है।'' लोक सेवा से सम्बद्ध किसी अधिकारी और कर्मचारी को, उसके द्वारा किये गये कार्यो के उत्तरदायित्वों के लिये कभी संसद के समक्ष नहीं बुलाया जा सकता है। समस्त सफलताओं और असफलताओं का उत्तरदायित्व सम्बन्धित विभाग के मंत्री का होता है। यदि वह संसद में अपने विभाग से सम्बन्धित पूछे गये प्रश्नों के सन्तोषप्रद उत्तर नहीं दे पाता है, और सदन को सन्तुष्ट नहीं कर पाता है, तो ऐसी स्थिति में उसे स्वयं को अपने पद से त्याग-पत्र देना पड़ता है। कभी-कभी सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुरूप पूरे मंत्री-मण्डल को ही त्याग-पत्र देना पड़ता है। अतः इतने बड़े उत्तरदायित्व का निर्वहन करने के लिये ये स्वाभाविक रूप से आवश्यक हो जाता है कि कार्यपालिका का प्रशासन पर प्रभावशाली नियंत्रण हो। अतः दूसरे शब्दों में इस बात को इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि संसदीय शासन प्रणाली में मंत्री-परिषद् ही सर्वोच्च शक्ति सम्पन्न कार्यपालिका होती है, जो अधीनस्थ

कार्मिकों (लोक सेवकों) पर नियंत्रण स्थापित करती है। एक प्रकार से कर्मचारी तंत्र, कार्यपालिका का ही अधीनस्थ भाग है जिस पर उच्च स्तरीय कार्यपालिका नियंत्रण करती है। ई0एन0 ग्लेडन ने तीन प्रकार के साधन बताये, जिनके द्वारा कार्यपालिका प्रशासन पर नियंत्रण करती है। प्रथम, मंत्रियों द्वारा नीति निर्माण करके तथा राजनीतिक निर्देशों के द्वारा; द्वितीय, राष्ट्रीय बाजार का संचालन; तथा तृतीय, नियुक्ति का अधिकार। इन तीन साधनों सहित कुछ और प्रमुख साधन हैं, जिनके माध्यम से कार्यपालिका द्वारा नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। आइये उनका विस्तार से अध्ययन करते हैं-

1. **नीति निर्माण द्वारा नियंत्रण-** शासन व्यवस्था को भंली-भाँति संचालित करने, संवैधानिक लक्ष्यों की प्राप्ति करने तथा सम्बन्धित राजनीतिक दल की घोषणाओं को यथार्थ रूप देने के लिये विभिन्न प्रकार की नीतियाँ बनायी जाती है। मुख्य कार्यपालिका ही मुख्य प्रशासक होती है। इस हैसियत से वह नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। संसदीय प्रणाली में मंत्रिमण्डल नीतियों का निर्माण करके सदन में स्वीकृत कराने के लिये उत्तरदायी है। इसके अलावा विभागीय मंत्री मुख्य कार्यपालिका एवं मंत्रिमण्डल से सलाह लेकर स्वयं भी अनेक नीतियों को निर्धारित करता है, जो सम्बन्धित विभागों में लागू की जाती है।

   विभागीय मंत्री के पास निर्देशन, निरीक्षण, पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण की शक्ति होती है, जिसका प्रयोग वह लोक सेवा से सम्बन्धित विभिन्न विभागों के लिए करता है। प्रत्येक उच्चाधिकारी और कर्मचारी अपने कार्य के लिये विभाग के मंत्री के प्रति उत्तरदायी होता है। विभागीय मंत्री या मुख्य कार्यपालिका स्वयं भी, अनेक विभागों के कार्यकलापों का स्थल पर जाकर औचक (अचानक, बिना किसी पूर्व सूचना के) निरीक्षण करता है और दोषी कर्मचारियों एवं अधिकारियों पर तत्काल अनुशासनात्मक कार्यवाही करता है। मंत्री, विभागीय अधिकारियों को आवश्यक आदेश और निर्देश भी जारी करता है। समस्त विभागीय अधिकारी और कर्मचारी, मंत्री के निर्देशन और नियंत्रण में कार्य करते हैं। मंत्री उच्चाधिकारियों का एक शाखा से दूसरी शाखा में तबादला कर सकता है। मंत्री किसी भी फाईल को मंगवाकर उससे सम्बन्धित समस्त कार्यवाहियों की जाँच कर सकता है। तात्पर्य यह है कि मंत्री विभाग पर पूरा नियंत्रण रखता है। अर्थात् कोई भी प्रशासनिक अधिकारी या कर्मचारी मंत्रिपरिषद् द्वारा बनायी गई नीतियों का उल्लंघन नहीं कर सकता हैं और इस प्रकार प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने में सरकार की नीतियाँ महत्वपूर्ण साधन सिद्ध होती हैं।

2. **नियुक्ति तथा निष्कासन के द्वारा नियंत्रण-** 'नियुक्ति' एवं 'विमुक्ति' अर्थात् निष्कासन भी प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण साधन बन जाता है। मंत्री, जो अपने विभाग का प्रमुख होता है अपने सचिव और विभागाध्यक्ष का चयन स्वयं करता हैं, ताकि उसके साथ वह स्वयं सामंजस्यपूर्ण वातावरण में काम कर सके। लोक सेवा के कार्मिकों की भर्ती का कार्य प्रायः संघ लोक सेवा आयोग और राज्यों के लोक सेवा आयोग द्वारा ही किया जाता है, परन्तु भर्ती के नियम कार्यपालिका द्वारा निर्देशित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न पदों के लिये प्रत्याशी में क्या योग्यता होनी चाहिये? कितना अनुभव होना चाहिये? और आयु क्या होनी चाहिये? आदि सभी बातों का निर्धारण भी मुख्य कार्यपालिका के द्वारा ही किया जाता है। जिस प्रकार भर्ती या नियुक्ति से सम्बन्धित सभी तत्वों का निर्धारण मुख्य कार्यपालिका द्वारा किया जाता है, ठीक उसी प्रकार इसे अर्थात् विभागीय मंत्री को कई प्रकार के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को निष्कासित करने का भी अधिकार होता हैं। या यूँ कहें कि कार्यपालिका को लोक-सेवकों को निष्कासित करने का अधिकार भी होता है। अनुच्छेद 310(1) के अनुसार, संघ एवं राज्यों के लोक-सेवक राष्ट्रपति या राज्यपाल के प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करते हैं। अर्थात् लोक-सेवकों की नियुक्ति एवं निष्कासन में कार्यपालिका को अन्तिम शक्ति प्राप्त है। यद्यपि

राष्ट्रपति या राज्यपाल अपनी इच्छा से किसी भी कार्मिक को बिना वजह निष्कासित नहीं करते हैं, क्योंकि संविधान लोक-सेवकों को संरक्षण भी प्रदान करता है। अतः नियुक्ति और निष्कासन के अस्त्र के द्वारा मंत्री विभाग पर प्रभावकारी नियंत्रण रखता है।

अमेरिका में यद्यपि उच्च पदों पर नियुक्ति के लिये राष्ट्रपति को सीनेट की अनुमति लेना जरूरी है, लेकिन उसको हटाने में वह स्वतंत्र होता है। वहाँ कार्मिक प्रबन्ध कार्यालय (O.P.M.) कार्मिक प्रबन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः कहा जा सकता है कि नियुक्ति और निष्कासन के अस्त्र द्वारा मुख्य कार्यपालिका प्रशासन पर या दूसरे शब्दों में मंत्री अपने विभाग पर पूरा एवं प्रभावशाली नियंत्रण रखता हैं।

3. **बजट प्रणाली के द्वारा नियंत्रण-** बजट, आधुनिक प्रशासनिक संस्थान की प्राण वायु है। इस दृष्टि से बजट को प्रशासन पर मुख्य कार्यपालिका के कठोर नियंत्रण स्थापित करने के अस्त्र के तौर पर भी देखा जाता है। बजट निर्माण प्रत्येक प्रशासनिक संगठनों द्वारा किया जाता है, किन्तु इसका अन्तिम प्रारुप, वित्तीय कार्य-प्रणाली तथा आर्थिक नीतियाँ, मंत्रिपरिषद् द्वारा ही स्वीकृत होती हैं। या दूसरे शब्दों में कहें, तो प्रत्येक विभाग को अपनी वित्तीय आवश्यकताओं के लिये कार्यपालिका पर ही निर्भर रहना पड़ता है। कार्यपालिका ही बजट तैयार करती है, व्यय को निर्धारित करती है तथा आय के स्त्रोतों की भी व्याख्या करती है। विभागों को राशि आवंटित करने का अधिकार भी मुख्य कार्यपालिका के पास ही होता हैं। इस आवंटित धनराशि के भीतर ही उच्चाधिकारी अपने कार्यो का संचालन करते हैं, या यूँ कह सकते हैं कि धन को इन वित्तीय नियमों के अनुसार ही खर्च किया जा सकता है। विभागों की सम्पूर्ण आय-व्यय का लेखा-जोखा रखा जाता है और उन लेखों का लेखा-परीक्षण भी होता हैं। अतः इस प्रकार मंत्रिपरिषद् द्वारा स्वीकृत बजट ही व्यवस्थापिका में प्रस्तुत किया जाता है और वही स्वीकृत होता है। इसी बजट की क्रियान्विति प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा की जाती है। इस दिशा में वित्त मंत्रालय भी बहुत प्रभावी एवं महत्वपूर्ण भूमिका में होता है। बजट द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण से मुख्य तत्वों को बिन्दुवार कुछ इस प्रकार से समझा जा सकता है-

- सैद्धान्तिक रूप से नीतियों, कार्यक्रमों, योजनाओं का अनुमोदन बजट के अन्तर्गत होता हैं।
- बजट में प्रावधानित पूर्वानुमानों की स्वीकृति।
- प्रत्यायोजित अधिकारों के तहत किये गये खर्चों की स्वीकृति।
- अनुदानों का पुनर्विनियोग करके अर्थात् अनुदान राशि का शीर्ष बदलकर जिससे एक मद की राशि दूसरे मद में व्यय की जा सके।
- एक वित्तीय सलाहकार के माध्यम से वित्तीय सलाह उपलब्ध करवाना।
- व्यय-प्राधिकारियों के लिये वित्तीय आचार संहिता का निर्धारण करके।
- बजट के क्रियान्वयन का लेखांकन और लेखा परीक्षण करके।

4. **प्रदत्त व्यवस्थापन द्वारा नियंत्रण-** आजकल विधायिका के कार्यकलापों में वृद्धि होने के कारण व्यवस्थापिका अनेक मामलों में विधि-निर्माण का कार्य कार्यपालिका को सौंप देती हैं। कार्यपालिका को विधि-निर्माण का कार्य सौंपे जाने का एक और कारण ये भी होता है, कि व्यवथापिका के पास ना तो पर्याप्त समय होता है और ना ही तकनीकी मामलों का ज्ञान। ऐसे में जब विधायिका के द्वारा कानून निर्माण की शक्ति किसी भी कारण से, कार्यपालिका को सौंप दी जाती है, तो इसे प्रदत्त विधायन या व्यवस्थापन कहा जाता है। प्रदत्त व्यवस्थापन की स्थिति में, विधायिका कानून का एक मोटा प्रारुप या ढाँचा तैयार करके उसकी सम्बन्धित बारीकियों पर विधि निर्माण करने का कार्य या अधिकार कार्यपालिका को दे देती

हैं। इसके उपरान्त कार्यपालिका विधायिका द्वारा प्राप्त ढाँचे के आधार पर अपनी उपयोगिताओं और आवश्यकताओं के अनुसार विधि-निर्माण करती हैं। इस विधि-निर्माण में बहुत से विभागों के संगठन, अधिकारियों की नियुक्ति एवं सेवा शर्तें, अधिकार-क्षेत्र आदि कर्तव्यों को भी निर्धारित किया जाता है। भारत तथा कई अन्य देशों में यह भी प्रावधान है, कि ऐसे समय में जब सदन का सत्र नहीं चल रहा होता है तो अनुच्छेद-123 के तहत कार्यपालिका (राष्ट्रपति) अध्यादेश भी जारी कर सकता हैं। लेकिन यह अध्यादेश अस्थायी होता हैं। अगर अध्यादेश को निर्धारित समय के भीतर विधायिका द्वारा पास नहीं कराया जाता हैं तो वे अप्रभावी हो जाते हैं। इस प्रकार प्रदत्त विधायन तथा कार्यपालिका द्वारा जारी किया गया अध्यादेश भी प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण तरीका बन जाता है।

5. **कर्मचारी संघों से सहयोग-** विभिन्न विभागीय पद-स्थिति, तकनीकी योजनाओं तथा कार्य-प्रणाली के आधार पर लोक-सेवकों के अनेक संघ या समूह बन जाते हैं। इनको कार्मिक संघों की संज्ञा दी जाती हैं। ये कार्मिक संघ अपने सदस्यों के विकास एवं कल्याण के प्रति सदा समर्पित होते हैं। इन कार्मिक-संघो को मान्यता देना तथा पंजीकृत करना सब कुछ सरकार के अधीन होता है। कार्यपालिका के द्वारा समय-समय पर इन कार्मिक-संघों के द्वारा कार्मिकों को नियंत्रित भी कराया जा सकता हैं।
6. **लोक सेवा आचार-संहिता-** लोक-प्रशासन के विभिन्न विभागों में काम करने वाले सभी लोक सेवकों या सरकारी कर्मचारियों के लिये एक आचार-संहिता बनी होती हैं। इस आचार-संहिता में लोक सेवकों के आचार-व्यवहार तथा कार्य-प्रणाली को अनुशासित, प्रतिबद्ध एवं जवाबदेह बनाने के कुछ प्रावधान किये गये होते हैं। इस आचार-संहिता का उल्लंघन करना लोक सेवकों के लिये दण्डनीय माना जाता है तथा ऐसा करने पर उन्हें अनुशासनात्मक कार्यवाही का सामना करना पड़ता हैं। ऐसे महत्वपूर्ण केन्द्रीय आचरण नियम है- अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियम-1954, केन्द्रीय लोक सेवा (आचरण) नियम-1955, रेलवे सेवा (आचरण) नियम-1956। इस प्रकार लोक सेवकों को नियंत्रित करने में ये आचार-संहिता भी एक साधन के तौर पर कार्य करती हैं।
7. **लोकमत से अपील-** लोकतंत्र में जनता सम्प्रभु होती हैं। ऐसा इसलिये क्योंकि, लोकतंत्र में ऐसा माना जाता है कि शासन-सत्ता की बागडोर अप्रत्यक्ष रूप से जनता के हाथ में होती है। सरकार के द्वारा जिस प्रकार के कार्य किये जाते हैं, उनकी जो नीतियाँ होती हैं तथा जिस प्रकार की उनकी कार्य-प्रणाली होती हैं, इन सब से जनता प्रभावित होती रहती हैं। प्रशासनिक तंत्र में भी यदि किसी प्रकार की बुराइयाँ या व्याधियाँ व्याप्त होती हैं तो अनेक बार कार्यपालिका के द्वारा भी जनता से अपील की जाती है कि वो सरकार का इन व्याधियों से निपटने में साथ दे या सहयोग करे। सरकार या कार्यपालिका द्वारा जनता से की गयी ये अपीलें भी व्याप्क रूप से जनता के व्यवहार को प्रभावित करती हैं तथा निरंकुश नौकरशाही को इस बात का भय बना रहता हैं कि उनके अनियंत्रित होने पर जनता भी उन्हें कटघरे में खड़ा कर सकती है।
8. **स्टॉफ अभिकरणों द्वारा-** प्रशासन सुधार विभाग, योजना आयोग, मंत्रिमण्डलीय सचिवालय, प्रधानमंत्री कार्यालय आदि महत्वपूर्ण स्टॉफ अभिकरण भारत में कार्यरत हैं। इनकी सहायता से भी कार्यपालिका प्रशासन पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण आरोपित करती हैं और उनमें परस्पर समन्वय बनाने का प्रयन्त करती हैं।
9. **कर्मचारी निरीक्षण एकक-** प्रशासनिक कार्यकुशलता बनाये रखते हुए, कर्मचारियों की संख्या में कमी लाने तथा कार्य निष्पादन मानदंड और कार्य मानक विकसित करने के उद्देश्य से कर्मचारी निरीक्षण एकक की स्थापना सन् 1964 में की गयी थी। बदले माहौल में और सरकार द्वारा बेहतर शासन तथा सेवाओं के परिष्कृत वितरण पर जोर दिये जाने को देखते हुए कर्मचारी निरीक्षण एकक की भूमिका को पुनर्निधारित किया गया है। इस एकक को अब इस तरह से तैयार किया गया है, कि वह सम्बन्धित मंत्रालयों और स्वायत्त सेवाओं को संगठनात्मक सुधार हेतु प्रेरित कर सकें। इस प्रकार उपरोक्त वर्णित साधनों के साथ

ही डॉ0 अवस्थी एवं माहेश्वरी ने भी कार्यपालिका द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने के लिये 06 प्रकार के साधन बताये हैं- नियुक्ति एवं निष्कासन का अधिकार, विधि-निर्माण एवं अध्यादेश आदि के अधिकार, लोक-सेवा संहिता, कर्मचारी-वर्ग के समुदाय का अभिकरण, बजट और लोकमत से अपील।

12.5 प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण की समस्याऐं

इस प्रकार आपने अब तक जाना कि, प्रशासन पर कार्यपालिका का नियंत्रण सिद्धान्त एवं व्यवहार दोनों ही रूपों में देखने को मिलता है। किन्तु समस्या यह उठती है कि क्या यह नियंत्रण प्रभावी बन पाता है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण में व्याप्त व्याधियों को जानना होगा, जिनका वर्णन कुछ इस प्रकार से किया जा सकता है-

1. **मंत्रियों का चयन राजनीति के आधार पर-** भारतीय राजनीति की एक विशेषता ये है कि यहाँ पर मंत्रियों को जब मंत्रिमण्डल में शामिल किया जाता है, तो उनको कौनसा विभाग मिलेगा यह महज एक संयोग की बात होती है। मंत्रियों का चयन राजनीतिक आधार पर होता है। इसमें उनकी योग्यता की कोई भूमिका नहीं होती है और ना ही अनुभव ही इसका आधार होता है। मंत्री पद प्राप्त करने के लिये उन्हें गुटबन्दी और कई प्रकार की तिकड़मों का सहारा लेना पड़ता है। प्रधानमंत्री की इच्छा पर उनका मंत्री बनना तथा विभागों का बँटवारा निर्भर करता है। गठबन्धन की सरकारों में तो इस प्रकार की तिकड़म और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं। अतः राजनीतिक आधार पर चयनित, अधिकांशतः अयोग्य एवं अनुभवहीन माने जाने वाले मंत्री संयोगवश मिले मंत्रालय में कार्मिकों को प्रभावी रूप से नियंत्रित करने में सदा ही सफल रहते हैं, ऐसा जरूरी नहीं है।
2. **मंत्री पेशवर प्रशासक नहीं-** मंत्री, पेशेवर प्रशासक नहीं होते हैं और ना ही वो किसी विषय के विशेषज्ञ होते हैं। तकनीकी ज्ञान का भी उनमें अभाव पाया जाता हैं। इस कारण उन्हें अधिकारी वर्ग द्वारा बताये गये आंकड़ों और तरीकों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। मंत्रियों को विभाग सौंपे जाने के बाद उनको कोई प्रशिक्षण भी नहीं दिया जाता है। फलतः ये अपने कार्यों के निष्पादन के लिये पूर्णरूप से नौकरशाहों पर निर्भर करते हैं। अतः ये स्थिति भी शिथिल नियंत्रण की ओर ही इशारा करती है।
3. **राजनेताओं के पास समय का अभाव-** राजेनता अर्थात् मंत्रीगण अपनी राजनीतिक गतिविधियों में इतने व्यस्त होते हैं, कि उनके पास विभागीय कार्यों को समझने हेतु समय ही नहीं होता। फलस्वरूप वो अपने कार्यकाल या सत्ता में बने रहने के दौरान भी वो केवल विपक्षी दलों के साथ राजनीतिक दाव-पेंचों तथा उठा-पटक में ही लगे रहते हैं, प्रशासन के कार्यों के प्रति अपना ज्ञान तथा तकनीक विकसित नहीं करते। फलस्वरूप उनके द्वारा स्थापित नियंत्रण भी अप्रभावी ही रहता हैं।
4. **सरकारों का अस्थायित्व-** कार्यपालिका द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण को शिथिल तथा कमजोर बनाने में सरकार का अस्थायी होना भी एक महत्वपूर्ण कारण माना जाता है। कई बार सरकारों को किसी भी कारण से अपने निर्धारित समय से पूर्व सत्ता से जाना पड़ता है और उनका अनुभव, ज्ञान सब अधूरा रह जाता है। अतः वे अपने कार्यकाल का लाभ उठा कर भी नियंत्रण की प्रभावी तकनीक का ज्ञान नहीं ले पाते हैं।
5. **मंत्रियों के विभागों में परिवर्तन-** मंत्रियों के विभागों का परिवर्तन भी एक ऐसा तथ्य है, जो कार्यपालिका द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण के मार्ग में बांधा बन जाते हैं। उदाहरण के तौर पर शिक्षा विभाग का मंत्री दो-चार महीनों या एक वर्ष में जब तक शिक्षा नीति को समझने का प्रयत्न करता है और कुछ नया करना चाहता है तो अचानक से उसको पट्रोलियम और रसायन मंत्रालय में दे दिया जाता हैं। ऐसे में इनके किसी भी मंत्रालय में सुधार, नियंत्रण, नयी तकनीक आदि सब के सुझाव और विचार, व्यवहार में आने से रह जाते हैं और उन्हें नये कार्य को नये सिरे से प्रारम्भ करना पड़ता है।

6. **मंत्रियों के विपरीत लोक-सेवकों का ज्यादा योग्य और कुशल होना-** जैसा कि आप जानते होंगे, कि राजनेताओं के लिये किसी प्रकार की न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता की कोई अनिवार्यता नहीं होती हैं, अतः उनमें तकनीकी ज्ञान और कुशलता का अभाव पाया जाता हैं। वहीं दूसरी ओर लोक-प्रशासन के उच्चाधिकारी और कर्मचारी अपनी योग्यता, ज्ञान और कुशलता के आधार पर ही सेवा में आते हैं। अतः इस बात को आसानी से समझा जा सकता है, कि लोक-सेवकों में राजनेताओं से ज्यादा ज्ञान और अनुभव दोनों ही पाया जाता हैं। ऐसी स्थिति में मंत्री सदैव अधिकारियों पर ही आश्रित रहते हैं। साथ ही लोक-सेवक मंत्रियों को ज्यादा जागरूक बनाने की कोई कोशिश भी नहीं करते हैं, क्योंकि उनकी ऐसी मान्यता है, कि यदि मंत्री को ज्यादा जागरूक बना दिया गया या ज्यादा ज्ञान दे दिया गया तो इससे ना केवल उनके प्रभाव में कमी आयेगी, बल्कि मंत्रियों का उन पर दबाव तथा हस्तक्षेप भी बढ़ जायेगा। इस कारण अनेक बार उच्चाधिकारी मंत्री को जानकारी भी उतनी ही देते हैं, जिसके कारण वे बराबर विभाग के अधिकारियों पर आश्रित ही रहें एवं उनका नियंत्रण भी शिथिल ही रहे।

उपयुक्त सभी सीमाओं और समस्याओं को देखने के बाद ये बात स्पष्ट हो जाती है कि मंत्रियों का विभागों पर प्रभावी नियंत्रण अनेक कारणों से स्थापित नहीं हो पाता हैं। इसी कारण ये कहा जाता है, कि सरकार राजनीतिज्ञों के द्वारा नहीं बल्कि नौकरशाही के द्वारा चलती हैं। इंग्लैण्ड के सन्दर्भ में सिडनी लो ने कहा है कि, ''वित्त मंत्रालय में द्वितीय श्रेणी के क्लर्क का पद प्राप्त करने के लिए एक नौजवान को अंकगणित की प्रतियोगी परीक्षा में पास होना पड़ता हैं, किन्तु वित्त-मंत्री अधेड़ उम्र का ऐसा सांसारिक व्यक्ति भी हो सकता है, जो अंकों के विषय में उस थोड़ी बहुत जानकारी को भी भूल चुका है, जो उसने ईटन अथवा ऑक्सफोर्ड में प्राप्त की। उस दशमलवों में खजाने का लेखा जब उसके सामने पहली बार रखा जाता है, तब वह उन छोटे-छोटे बिन्दुओं का अर्थ जानने के लिये उत्सुक हो जाता है।'' लेकिन इन सब आलोचनाओं के बावजूद भी आज सन्तोषजनक स्थिति उभर कर सामने आने लगी है। मंत्री-मण्डल में विशेषज्ञों को स्थान दिया जाने लगा है। प्राध्यापक को शिक्षा मंत्री, अर्थशास्त्री को वित्त-मंत्री तथा वैज्ञानिक को विज्ञान एवं तकनीकी विभाग सौंपे जाने का प्रयास किया जा रहा हैं, जो विभागीय प्रशासन पर नियंत्रण करने में सक्षम हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. कार्यपालिका द्वारा लोक प्रशासन पर नियंत्रण का साधन क्या है?
2. 'कर्मचारी निरीक्षण एकक' की स्थापना कौन से वर्ष में की गयी?
3. विधि निर्माण के कार्य को जब कार्यपालिका को सौंप दिया जाता है तो वो क्या कहलाता है?
4. संविधान के कौन से अनुच्छेद के तहत राष्ट्रपति अध्यादेश जारी कर सकता है?

12.6 सारांश

इस अध्याय में आपने जाना कि संसदीय नियंत्रण तथा न्यायिक नियंत्रण के साथ कार्यपालिका नियंत्रण भी लोक-प्रशासन के कार्यकरण को प्रभावित करता है। संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में नीतियों का निर्धारण कार्यपालिका द्वारा किया जाता हैं और नीतियों का क्रियान्वयन सेवी-वर्ग द्वारा होता हैं। चूँकि कार्यपालिका अपने समस्त कार्यों के लिये संसद के प्रति उत्तरदायी होती है, अतः शासन की नीतियों का क्रियान्वयन करने वाले सेवी वर्ग पर नियंत्रण आवश्यक होता हैं। मुख्य कार्यपालिका ही मुख्य प्रशासक होती हैं और नीति-निर्माण, सरकारी अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति तथा निष्कासन, बजट प्रणाली एवं प्रदत्त व्यवस्थापन आदि तकनीकों से नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश करती हैं। परन्तु मंत्रियों के पास ज्ञान, समय, कुशलता आदि का अभाव कई ऐसे कारण होते हैं, जिनके कारण वो प्रशासन पर अपने नियंत्रण को प्रभावी नहीं बना सकते हैं। इसी कारण ऐसा भी

कहा जाता है कि सरकार राजनीतिज्ञ से नहीं बल्कि नौकरशाह के द्वारा चलायी जाती हैं। सारांशतः कार्यपालिका के द्वारा लोक प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने की अनेक सीमाएँ हो सकती हैं, किन्तु निष्पक्ष एवं संवेदनशक्ति कार्यपालिका प्रभावी भूमिका निभाने में सक्षम होती हैं।

12.7 शब्दावली

संवेदनशील- भावुक या स्वीकार करने वाला, विशेषज्ञ- किसी विषय या क्षेत्र में विशेष जानकार, पेशेवर- व्यवासाय या काम, परिष्कृत- शुद्ध या सुधरा हुआ।

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. बजट, नियुक्ति और आचार संहिता , **2.** 1964, **3.** प्रदत्त व्यवस्थापन, **4.** अनुच्छेद- 123

12.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आर0के0 दुबे, आधुनिक लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, लोक प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर- 2001

12.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 बी0 एल0 फड़िया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2003

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण से आप क्या समझते हैं? वर्णन कीजिये।
2. प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण की आवश्यकताओं और सीमाओं का वर्णन कीजिये।

इकाई- 13 प्रशासन पर विधायी (संसदीय) नियंत्रण

इकाई की संरचना

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 लोक प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण
13.2.1 संसद की नियमित प्रक्रियाओं द्वारा नियंत्रण
13.2.2 संसदीय समितियों द्वारा नियंत्रण
13.2.2.1 लोक लेखा समिति
13.2.2.2 अनुमान समिति या प्राक्लन समिति
13.2.2.3 लोक उपक्रमों पर समिति
13.3 प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण की समस्याऐं
13.4 सारांश
13.5 शब्दावली
13.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.9 निबंधात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

लोकतंत्र में लोक प्रशासन विधायिका के प्रति अनिवार्य रूप से उत्तरदायी होता है। जनता के प्रतिनिधि ही व्यवस्थापिका में होते हैं, वे जनता की इच्छा और आवश्यकता को ध्यान में रखकर नीतियों को निर्धारित करते हैं और व्यवस्थापिका द्वारा निर्धारित नीतियों का क्रियान्वयन कार्यपालिका के द्वारा किया जाता है। अतएव विधायिक के लिये ये अनिवार्य हो जाता है, कि वह लोक प्रशासन को नियंत्रित कर यह सुनिश्चित करें कि वह सार्वजनिक नीतियों को भली-भाँति सम्पादित करे। अपने इसी उत्तरदायित्व की पूर्ति हेतु संसदात्मक शासन प्रणाली में संसद को निषेधात्मक एवं विधेयात्मक दोनों ही प्रकार के कदम उठाने होते हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम प्रशासन पर विधायी नियंत्रण के उपकरणों के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का उध्ययन करने के उपरान्त आप-

- संसदीय नियंत्रण की आवश्यकता के महत्व को समझ पायेंगे।
- संसदीय नियंत्रण कितने प्रकार का होता है? इस संबंध में जान पायेंगे।
- संसदीय नियंत्रण की सीमाओं का विस्तृत अध्ययन कर पायेंगे।

13.2 लोक प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण

संसद या विधायिका जन प्रतिनिधि संस्था होती है, जो जनता की इच्छाओं को कानून के रूप में व्यक्त करती है। संसदीय शासन-प्रणाली में तो कार्यपालिका सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होती है। विधायिका विधि का निर्माण करती है, विचार-विमर्श करती है और साथ ही साथ प्रशासन पर नियंत्रण रखने का काम भी

करती है। जनता के प्रतिनिधि व्यवस्थापिका में होते हैं, वे जनता की इच्छा और आवश्यकता को ध्यान में रखकर नीतियों को निर्धारित करते हैं और व्यवस्थापिका द्वारा निर्धारित नीतियों का क्रियान्वयन मंत्रियों के माध्यम से प्रशासन ही करता है। प्रशासन की किसी असफलता, अकार्यकुशलता, विलम्ब अथवा अनियमितता के लिये अन्ततोगत्वा मंत्री-परिषद ही उत्तरदायी होती है। इन सब आरोपों को उन्हें अपने ऊपर ही लेना पड़ता है, जिसका दण्ड साधारण भी हो सकता है। जैसे- अप्रसन्नता व्यक्त करना और कठोर भी हो सकता है जिसमें मंत्री-परिषद को हटाया भी जा सकता है। अतः प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण की आवश्यकता का पहला महत्वपूर्ण कारण प्रशासन की जागरूकता, ईमानदारी, कार्यकुशलता आदि को बनाये रखना होता है और इसके लिये मंत्री-परिषद को स्वयं को सतर्क रहना पड़ता है। अतएव दूसरे शब्दों में विधायिका के लिये यह अनिवार्य हो जाता है कि वह देखे कि लोक प्रशासन सार्वजनिक नीतियों को ढंग से क्रियान्वित कर पा रहे हैं अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण की आवश्यकता का दूसरा महत्वपूर्ण कारक शासकीय क्रियाओं में उचित समन्वय नहीं रह पाना है। एक ही कार्य के विभिन्न पहलुओं से जब अनेक विभाग सम्बन्धित हो जाते हैं तो नौकरशाही का विकृत रूप सामने आता है, जिसके परिणामस्वरूप सामान्य जनता को कठिनाईयों एवं परेशानियों का सामना करना पड़ता है। अतः प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण अपरिहार्य है। संसद के द्वारा यह नियंत्रण प्रायः मुख्य कार्यपालिका के माध्यम से रखा जाता है। इसकी प्रकृति राजनीतिक होती है। इस कार्य में संसद की विभिन्न समितियाँ भी योगदान करती हैं। यहाँ हम संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में विधायी अथवा संसदीय नियंत्रण के साधनों के बारे में विस्तृत विवेचना करेंगे।

भारत में राष्ट्रपति, लोकसभा (निम्न सदन) तथा राज्य सभा (उच्च सदन) मिलकर संसद कहलाते हैं। संसदीय नियंत्रण को विधायी नियंत्रण भी कहा जाता है, क्योंकि देश के समस्त कानूनों या विधानों को स्वीकृति संसद के द्वारा प्राप्त होती है। संसदीय नियंत्रण के दो प्रकार होते हैं- संसद की नियमित प्रक्रियाओं के द्वारा नियंत्रण और संसदीय समितियों द्वारा नियंत्रण।

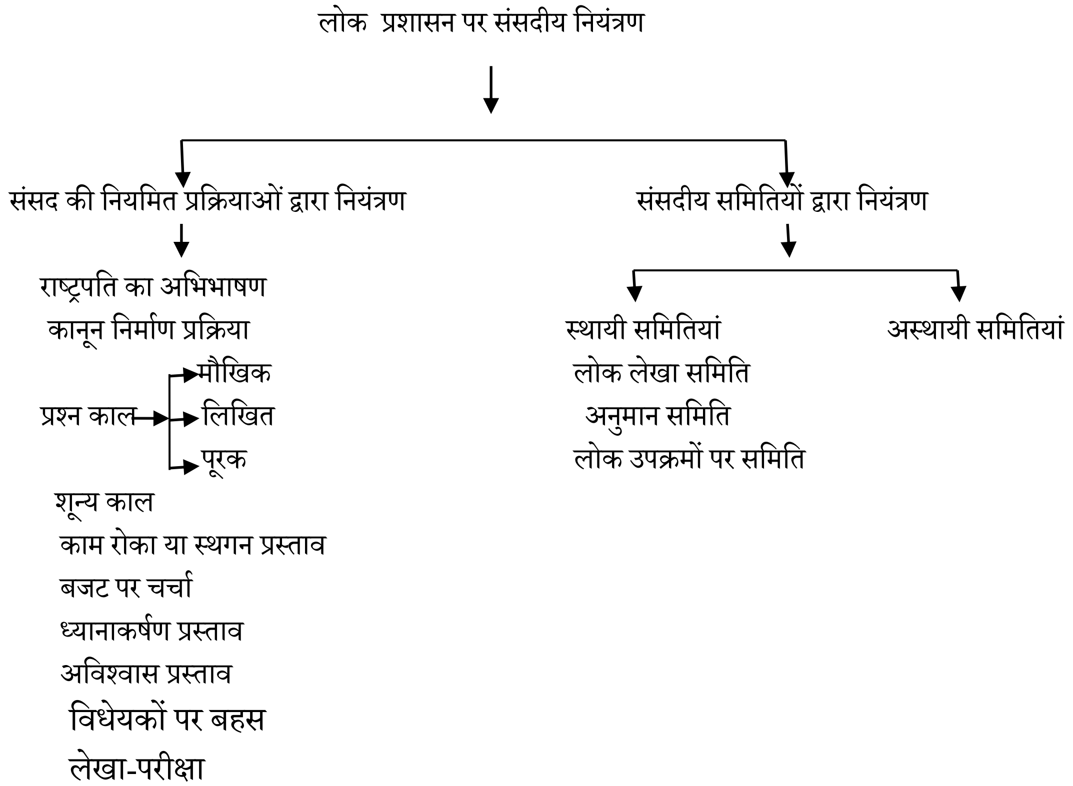

इस प्रकार ऊपर बने आरेख से आप आसानी से समझ गये होंगे कि, संसदीय शासन प्रणाली (यहाँ हम विशेष तौर पर भारतीय संदर्भ को ध्यान में रखकर चर्चा करेंगे) में, प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण की स्थापना किस प्रकार की जाती है।

13.2.1 संसद की नियमित प्रक्रियाओं द्वारा नियंत्रण

लोकतांत्रिक शासन प्रणालियों में विधायी नियंत्रण एक महत्वपूर्ण साधन है, जो सरकार के कानूनों, नीतियों तथा बजट की स्वीकृति के अतिरिक्त अन्य कई तरीकों से लोक प्रशासन को सजग, सक्रिय एवं जवाबदेह बनाये रखने में सहायक है। जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि, विधायिका में बैठकर न केवल देश का भविष्य तय करते हैं, बल्कि प्रवर्तित प्रशासनिक प्रक्रियाओं की भी समीक्षा करते हैं। जन-साधारण की इच्छाओं, आकांक्षाओं तथा समस्याओं को राष्ट्र के सम्मुख लाने तथा उन पर सार्थक बहस करने का एकमात्र सशक्त मंत्र विधायिका ही है। प्रत्येक देश विशेषतः संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली में विपक्षी राजनीतिक पार्टियाँ, सत्तारूढ़ सरकार को आये दिन कटघरे में खड़ा कर, सन्तोषजनक उत्तर मांगती हैं, क्योंकि वास्तविक कार्यपालिका सदन के प्रति जवाबदेह भी होती है। भारतीय संसदात्मक शासन प्रणाली में कतिपय ऐसी प्रक्रियाऐं हैं, जो लोक प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने में प्रभावी सिद्ध होती हैं, इनका वर्णन कुछ इस प्रकार हैः-

1. **राष्ट्रपति का अभिभाषण(President Speech)-** भारत, ब्रिटेन, कनाडा, इत्यादि संसदीय प्रणाली वाले देशों में राजाध्यक्ष के भाषण से संसद का प्रत्येक नया सत्र आरम्भ होता है। राजाध्यक्ष अथवा राष्ट्रपति के इस अभिभाषण में शासन की प्रमुख नीतियों, वर्तमान एवं भावी योजनाओं, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों के प्रति सरकार के दृष्टिकोणों एवं प्रशासनिक कदमों की चर्चा होती है। इस अभिभाषण के धन्यवाद प्रस्ताव पर वाद-विवाद करने के लिये सदन को तीन-चार दिन का समय दिया जाता है। इस दौरान विपक्षी दलों के सदस्य सरकार के कार्यकाल तथा नीतियों की आलोचना करने एवं सामयिक समस्याओं को उजागर करने में पर्याप्त रूचि प्रदर्शित करते हैं। अभिभाषण में सत्तारूढ़ दल की कार्यशैली का ही वर्णन होता है, जिसमें अनेक ऐसे बिन्दु मिल जाते हैं जिन पर पर्याप्त चर्चा हो जाती है। इस सबके फलस्वरूप जनमत जागरूक होता है और प्रशासन सतर्क होता है।
2. **कानून-निर्माण प्रक्रिया(Law Making Process)-** प्रमुख रूप से विधायिका कानून का निर्माण करती है। विधायिका द्वारा निर्मित कानून के दायरे में रहकर ही प्रशासन उसे क्रियान्वित करते हैं। विधायिका द्वारा अनेक ऐसे कानूनों का निर्माण किया जाता है, जिसमें प्रशासन के संगठन, कार्यों, नियमों तथा अधिकार-क्षेत्रों का निर्धारण कानून में ही कर दिया जाता है। नये कानूनों और नये कार्यों के आधार पर नये विभाग भी खोलने पड़ते हैं। इसके साथ ही विधायिका प्रशासकीय नीतियों का निर्धारण भी समय-समय पर करती रहती है। कुछ मामलों में प्रदत्त व्यवस्थापन(Delegated Legislation) के द्वारा विधायिका कानून-निर्माण की शक्ति कार्यपालिका को देती अवश्य है, परन्तु कार्यपालिका व्यवस्थापिका द्वारा प्रदत्त सीमा के अन्दर ही नियम बनाती है।
3. **प्रश्न काल(Question Hour)-** संसदीय शासन-प्रणाली वाले देशों में मंत्री-मण्डल सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। प्रत्येक संसद सदस्य को यह अधिकार होता है कि वो किसी भी प्रकार की समस्या और अव्यवस्था के सन्दर्भ में सम्बन्धित मंत्री से प्रश्न पूछे। इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाने की प्रक्रिया संसदीय नियंत्रण का सबसे लोकप्रिय माध्यम माना जाता है। संसद में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर पाने का अधिकार प्रत्येक संसद सदस्य को है। मंत्री अपने अधीनस्थों की सहायता से पूछे गये प्रश्नों का उत्तर तैयार करता है और सदन में उसका जवाब प्रस्तुत करता है। इसी कारण जब तक संसद या राज्य विधान-मण्डलों का सत्र चल रहा होता है, तब तक कोई भी प्रशासनिक अधिकारी शिथिलता प्रदर्शित

नहीं करता। यद्यपि मंत्री किसी प्रश्न का उत्तर देने के लिये बाध्य नहीं है, किन्तु वह अपने इस विशेषाधिकार का प्रयोग प्रायः कम या नहीं के बराबर करता है। ऐसा इसलिय, क्योंकि इससे उसकी जनता के समक्ष छवि खराब होने का भय रहता है। रॉब्सन ने प्रश्न पूछे जाने की परम्परा की महत्ता को बताते हुए कहा कि ''सदन में खुले रूप में मंत्रियों से जो प्रश्न पूछे जाते हैं, उनके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण असैनिक सेवा को चौकन्ना रहना पड़ता है।'' इसी प्रकार ह्यू गैट्सकिल(Hugh Gaitskell) ने लिखा है कि ''कोई भी व्यक्ति जिसने किसी भी विभाग में कार्य किया है वह मेरी इस बात से सहमत होगा कि एक मुख्य कारण जिसकी वजह से सेवी-वर्ग अत्यन्त सतर्कता बरतता है तथा अपना समस्त विवरण सावधानी से रखता है, वह है संसद में पूछे जाने वाले प्रश्न का उसे भय।''

संसद की कार्यवाही के प्रत्येक दिन के प्रारम्भ का एक घण्टा प्रश्न पूछने के लिये ही निर्धारित किया जाता है। औसतन तीन मौखिक प्रश्न प्रतिदिन पूछे जाते हैं। जिनका उत्तर दिया जाता है। यद्यपि सभी प्रश्न गम्भीर तथा तात्कालिक महत्व के नहीं होते हैं, परन्तु सामान्यतया प्रश्न पूछने के लिये सम्बन्धित मंत्री को 10 दिन का समय देना आवश्यक है, किन्तु गम्भीर तथा तत्कालिक महत्व के प्रश्नों पर यह बाध्यता लागू नहीं होती है। संसद में सदस्य तीन प्रकार के प्रश्न पूछते हैं- मौखिक, पूरक और लिखित। कई बार इनको तीन श्रेणियों में विभक्त करके भी समझाया जाता है। जैसे- तारांकित(Starred), अतांराकित(Unstarred) तथा अल्पसूचना प्रश्न। यह सदन के अध्यक्ष या सभापति के विवेक पर निर्भर करता है कि वह किसी प्रश्न को तारांकित श्रेणी में रखें या अतारांकित श्रेणी में। तारांकित प्रश्नों पर तारा (स्टार *) अंकित होता है और ऐसे सभी प्रश्नों का उत्तर सदन में मौखिक रूप से दिया जाता है। समस्त सार्थक मुद्दों पर कम विस्तार वाले प्रश्नों को इसी श्रेणी में रखा जाता है। अतांराकित प्रश्नों पर 'तारा' नहीं लगा होता है और उनका उत्तर लिखित रूप से दिया जाता है। ज्यादा विस्तार और जटिल आंकड़े वाले प्रश्नों को इस श्रेणी में रखा जाता है। तारांकित और अतारांकित प्रश्नों के अलावा अल्प सूचना प्रश्न भी किये जाते हैं। ये वो प्रश्न होते हैं जिनका उत्तर निर्धारित न्यूनतम अवधि से कम दिनों की सूचना पर मौखिक रूप से दिया जाता है। इन तीनों श्रेणियों के अलावा प्रश्नों की एक और श्रेणी होती है जिसे पूरक या अनुपूरक या अनुवर्ती प्रश्न भी कहा जाता है। इस सन्दर्भ में ये जान लीजिये की वैसे तो इन दो श्रेणियों में पूछे गये प्रश्नों के आधार पर मंत्री की जवाबदेयता निर्धारित हो जाती है और प्रश्न-काल के दौरान किसी प्रश्न या उत्तर पर वाद-विवाद करने की अनुमति नहीं होती। लेकिन उत्तर के सम्बन्ध में किसी तथ्य के स्पष्टीकरण की जरूरत पर अनुपूरक या अनुवर्ती प्रश्नों के लिये अध्यक्ष/सभापति से अनुमति ले सकते हैं। जिस सदस्य के नाम पर प्रश्न दर्ज होता है, वह दो अनुपूरक प्रश्न पूछ सकता है। अन्य सदस्य जिन्हें अध्यक्ष अनुमति दे, एक-एक पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं।

भारत में सन् 1891 में प्रथम बार विधायिका में प्रश्न पूछने तथा 1909 में पूरक प्रश्न पूछने की परम्परा की शुरूआत हुई, जो आज एक सशक्त संसदीय प्रक्रिया बन चुकी है। इस प्रक्रिया के द्वारा प्रशासनिक-तंत्र पर सार्थक नियंत्रण स्थापित किया जा सका है। भारत में फिरोज गांधी द्वारा पूछे गये एक प्रश्न में- मूंदड़ा कांड (1957) को उजागर कर, तत्कालीन वित्तमंत्री टी0टी0 कृष्णमूर्ति को त्यागपत्र के लिये विवश कर दिया था। इस कांड में कानपुर के उद्योगपति हरिदास मूंदड़ा ने अपनी कम्पनी के शेयरों के भाव बढ़ाने के लिये पालपुड़ (1947) के समय खरीदी गयी जीपों के घोटाले का प्रश्न 1951 में भी खूब चर्चित रहा। सन् 1947 में पांडिचेरी के एक व्यापारी द्वारा 31 सांसदों के फर्जी हस्ताक्षर का उद्योग मंत्रालय से आयात लाइसेंस का प्रकरण भी संसदीय प्रश्नों के माध्यम से जनता के समक्ष आया था। इसके अलावा 1956 में जीवन बीमा निगम से सम्बन्धित एक ऐसा प्रश्न पूछा गया, जिसके फलस्वरूप इतना विवाद बढ़ा कि तत्कालीन वित्तमंत्री को त्याग देना पड़ा था।

4. **शून्य काल (Zero Hour)-** प्रश्न काल की समाप्ति के बाद और संसदीय कार्यवाही शुरू होने से पूर्व जो प्रश्न पूछे जाते हैं, वह शून्य काल कहलाता है। प्रश्न काल में सभी इच्छुक सदस्य जनहित सम्बन्धित प्रश्न हीं पूछ पाते हैं, अतः वे प्रश्न काल के पश्चात भी चर्चा करते रहते हैं। इसी कारण नवम्बर, 1966 से शून्य काल शुरू हुआ। प्रश्न काल का घण्टा समाप्त होते ही शून्यकाल शुरू हो जाता है, जिसमें संसद समसामयिक विषयों पर बिना किसी पूर्व सूचना के मंत्रियों से प्रश्न पूछते हैं। यह समय कार्यपालिका को विवादित मुद्दों पर घेरने तथा सचेत करने का होता है। चौथी लोकसभा (1967-70) के समय शून्य काल का महत्व अत्यधिक था, किन्तु आठवीं लोकसभा (1985-89) में राजीव गांधी के प्रचण्ड बहुमत के कारण गैर-कांग्रेसी दल पूर्ण विपक्ष की भूमिका निभाने में असमर्थ थे। लेकिन 1989, 1991, 1996 तथा 1998 में गठित 9वीं से 12वीं लोकसभा में अल्पमत सरकारों के समक्ष शून्य काल के प्रश्न महत्वपूर्ण हो गये।
5. **काम रोको पर स्थगन प्रस्ताव(Adjournment Motion)-** 'काम रोको' या 'स्थगन प्रस्ताव' प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। फाइनर के शब्दों में, ''सरकार के प्रत्येक कार्य पर प्रश्न पूछा जा सकता है, प्रत्येक प्रश्न पर काम रोको प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकता है और प्रत्येक काम रोको प्रस्ताव एक व्यापक एवं विस्तृत बहस को प्रोत्साहन दे सकता है।'' इसका प्रयोग अतिआवश्यक तथा लोक महत्व की किसी विशेष समस्या के सन्दर्भ में संसद में वाद-विवाद प्रारम्भ करने के लिये किया जाता है। इस प्रस्ताव के माध्यम से संसद सदस्यों द्वारा संसद के निश्चित कार्यक्रम को रोक कर किसी अन्य महत्वपूर्ण विषय पर बहस की जा सकती है। सामान्यतः दोपहर 12 बजे से पूर्व अध्यक्ष से 'काम रोको प्रस्ताव' की अनुमति मांगी जाती है, यदि 40 या अधिक सांसद इसका समर्थन करें, तो सदन के समस्त कार्य रोक कर 'काम रोको या स्थगन प्रस्ताव' पर चर्चा की जाती है जो अधिकतम तीन घंटे की हो सकती है। इस प्रस्ताव के लिये शर्त यह होती है कि यह मुद्दा विशिष्ट, महत्वपूर्ण तथा तात्कालिक हो, तथ्यों पर आधारित हो, सार्वजनिक महत्व का हो, न्यायालयों के विचाराधीन ना हो, सरकार के प्रशासनिक दायित्वों से सम्बन्धित हो तथा ऐसा न हो कि सदन में पूर्व में उस पर चर्चा की जा चुकी हो। चर्चा के पश्चात इस प्रस्ताव पर मतदान कराया जाता है जो बहुमत से पारित होने पर सरकार को संकट में डाल सकता है। वस्तुस्थिति यह है, कि काम रोको प्रस्ताव के अधिकांश प्रकरण निष्क्रिय हो जाते हैं। तीसरी लोक सभा में 77 प्रस्तावों में से केवल 07 पर ही आगे कार्यवाही हो सकी थी।
6. **बजट पर चर्चा(Budget Discussions)-** बजट पर वाद-विवाद के साथ भी संसद शासन पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित रखती है। लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष, श्री जी0 बी0 मावलेकर के अनुसार यह एक सिद्धान्त है कि वित्त-विधेयक के किसी भी विषय पर वाद-विवाद किया जा सकता है और जनता की किसी भी कठिनाई पर प्रकाश डाला जा सकता है। इसका मूलभूत सिद्धान्त ये है कि किसी भी नागरिक से तब तक कर नहीं लिया जा सकता, जब तक संसद के माध्यम से उसे अपने विचार प्रस्तुत करने तथा असन्तोष प्रकट करने का भरपूर अवसर प्राप्त ना हो जाये। विधायिका की अनुमति के बिना ना तो एक पैसा खर्च किया जा सकता है, और ना ही कोई नया कर लगाया जा सकता है। अतः ये स्पष्ट है कि बजट पर वाद-विवाद के द्वारा संसद, शासन पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित रखती है।

   वित्त-मंत्री द्वारा आम बजट को जैसे ही लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है, उस पर पर्याप्त चर्चा तथा वाद-विवाद होता है। वार्षिक व्यय का यह ब्यौरा देश के आर्थिक विकास को सर्वाधिक प्रभावित करता है। बजट के सम्बन्ध में सदस्य कटौती का प्रस्ताव पेश करते हैं और इन कटौती प्रस्तावों के माध्यम से ही सरकार की आलोचना की जाती है। अध्यक्ष एवं शासन प्रणाली में ये कटौती-प्रस्ताव कई बार स्वीकृत हो

जाते हैं। भारत में यूँ तो वित्त-विधेयक और बजट पर होने वाली आलोचनाओं की वजह से सरकार सजग रहती है, लेकिन जब तक सरकार का संसद में स्पष्ट बहुमत है, तब तक उनके द्वारा प्रस्तुत बजट अस्वीकृत नहीं होता है। वस्तुतः सम्पूर्ण वित्तीय प्रशासन पर विधायिका का कठोर नियंत्रण होता है। स्वीकृत अनुमानों के अतिरिक्त एक पाई भी व्यय नहीं की जा सकती है।

7. **ध्यानाकर्षण प्रस्ताव(Calling Attention Motion)-** संसद के सदस्य कुछ महत्वपूर्ण मामलों और प्रशासन से सम्बन्धित किसी भी गम्भीर समस्या की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करने के लिए ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पेश कर सकते हैं। इसके लिये सदस्य को लिखित रूप में सूचना देनी पड़ती है। लोक सभा के अध्यक्ष के द्वारा ऐसे ध्यानाकर्षण प्रस्ताव स्वीकार कर लेने के बाद सरकार को उस विषय पर तुरन्त उत्तर देना पड़ता है। इस प्रस्ताव में सम्बन्धित मंत्री से स्पष्टीकरण मांगा जाता है, जिसका वह तुरन्त या कुछ समय पश्चात स्पष्टीकरण देता है। रिचर्ड वार्नर(Richard Warner) का मानना है कि, ''इस प्रकार के अवसर विभागीय कार्यों एवं विभागीय क्षमता परीक्षण के लिए उपयुक्त है।''
8. **अविश्वास-प्रस्ताव(No-confidence Motion)-** अविश्वास-प्रस्ताव को 'निन्दा-प्रस्ताव' भी कहते हैं। हमारे संविधान में इस प्रकार के प्रस्ताव की व्यवस्था की गयी है। अविश्वास प्रस्ताव का तात्पर्य होता है कि, संसद के सदस्यों अर्थात् विपक्षी दल के सदस्यों द्वारा ऐसी किसी स्थिति में जब उन्हें सरकार की कोई नीति या कार्यकरण पूर्णतया या अंशतः दोषपूर्ण तथा आपत्तिजनक लगे तो वे सरकार या सत्तारूढ़ दल के खिलाफ अविश्वास-प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते हैं। प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिये कम से कम 50 सांसदों का समर्थन आवश्यक रहता है। अविश्वास-प्रस्ताव सदन के अध्यक्ष द्वारा मंजूर हो जाने पर सदन में मतदान कराया जाता हैं। अगर आवश्यक बहमुत सरकार के पक्ष में नहीं है, तो सरकार को त्यागपत्र देना पड़ता है और सरकार गिर जाती है। कार्यपालिका पर संसदीय नियन्त्रण का यह सबसे प्रभावशाली साधन माना जाता है, पर ये साधन संसदात्मक शासन प्रणाली वाले देशों में ही सम्भव है, क्योंकि अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वाले देशों में कार्यपालिका संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं होती है।
9. **विधेयकों पर बहस(Debates on Bill)-** संसद में प्रस्तुत होने वाले प्रत्येक विधेयक (बिल) को पारित करने से पूर्व उस पर कई बार वाचन या बहस होती है। इस समय सम्बन्धित विधेयक के कानूनी प्रावधानों तथा सरकार की नीति की आलोचना की जाती है। सन् 1951 में हिन्दू कोड बिल तथा 1994 में मुख्य चुनाव आयुक्त के अधिकारों में कटौती के विधेयक पर विपक्षी दलों के कठोर तेवर के कारण सरकारों द्वारा वापस ले लिये गये थे।
10. **लेखा परीक्षण(Audit)-** विधायिका ने प्रशासन या सरकार को जो धन खर्च करने की अनुमति दी है, उस धन का उपयोग हुआ या दुरुपयोग, कितना-कितना धन किस-किस मद में खर्च हुआ, ये सब बातें जानने का अधिकार सदन को है। नियंत्रक और महालेखा परीक्षक विभिन्न सरकारी विभागों के लेखों की जाँच करवाकर अनियमितताओं का पता लगाता है तथा इसकी रिपोर्ट सदन को देता है व राष्ट्रपति को भी सोंपता है।

13.2.2 संसदीय समितियों द्वारा नियंत्रण

जैसा कि आपने पिछले पृष्ठों में बताये गये आरेख के द्वारा जाना कि संसदीय नियंत्रण दो माध्यमों से स्थापित किया जाता है। जिसमें से दूसरा माध्यम संसदीय समितियों द्वारा नियंत्रण होता है। भारत सहित अधिकांश देशों की संसदों के पास कार्यों में विविधता तथा सदस्यों की राजनीतिक विवशताऐं एवं समयाभाव है। अतः बहुत से विधायी एवं गंभीर प्रकृति के कार्यों को कुशलतापूर्वक सम्पादित करने के लिये अनेक प्रकार की समितियाँ गठित की जाती हैं। संसद के दोनों सदनों की समितियों की संरचना (कुछ अपवादों को छोड़कर) एक जैसी हैं। इन समितियों की

नियुक्ति, कार्य संचालन की प्रक्रिया भी लगभग समान ही है, जो संविधान के अनुच्छद 118(1) के अन्तर्गत दोनों सदनों द्वारा निर्मित नियमों की धाराओं के अनुसार अधिनियमित होती हैं।
मोटे तौर पर संसदीय समितियों को निम्नलिखित चार श्रेणियों में रखा जाता है- वित्तीय समितियाँ, विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियाँ अन्य संसदीय स्थायी समितियाँ तथा तदर्थ समितियाँ।
यहाँ संसदीय नियंत्रण के सन्दर्भ में हम केवल तीन समितियों के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे। इन समितियों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिये गये चार्ट से आसानी से समझा जा सकता है।

क्र.सं.	समिति का नाम	सदस्यों की संख्या	कार्यकाल	सदस्य निर्देशित अथवा निर्वाचित
1	लोक लेखा समिति	22 (15 लोक सभा और 07 राज्य सभा)	01 वर्ष	दोनों सदनों द्वारा निर्वाचित
2	प्राक्कलन या अनुमान समिति	30 (लोक सभा)	01 वर्ष	लोक सभा द्वारा निर्वाचित
3	सरकारी उपक्रमों सम्बन्धी समिति	22 (15 लोक सभा और 07 राज्य सभा)	01 वर्ष	दोनों सदनों द्वारा निर्वाचित

सुविधा की दृष्टि से हम समितियों का विभाजन दो श्रेणियों में देखते हैं- स्थायी एवं अस्थायी समिति। स्थायी समितियाँ प्रतिवर्ष या समय-समय पर निर्वाचित या नियुक्त की जाती हैं तथा इनका कार्य प्रायः निरन्तर चलता रहता है, जबकि अस्थाई समितियों की नियुक्ति आवश्यकतानुसार की जाती है। ये समितियाँ अपना कार्य पूर्ण करने एवं प्रतिवेदन प्रस्तुत कर देने के पश्चात स्वतः समाप्त हो जाती है।
स्थायी समितियों में जाँच समितियाँ (जनहित समिति, विशेषाधिकारी समिति), संवीक्षण समितियाँ (सरकारी आश्वासनों सम्बन्धी समिति, अधीनस्थ विधान सम्बन्धी समिति, पटल पर रखें पत्रों सम्बन्धी समिति), सदन के दैनिक कार्य से सम्बन्धित समितियाँ (कार्य-मंत्रणा समिति, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों पर प्रस्तावों सम्बन्धी समिति, नियम समिति, सदन की बैठकों में अनुपस्थित सदस्यों सम्बन्धी समिति), अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण सम्बन्धी समिति, आवास समिति), संसद सदस्यों के वेतन-भत्तों सम्बन्धी समिति, लाभ के पदों सम्बन्धी संयुक्त समिति, पुस्तकालय समिति, महिलाओं के अधिकार समिति प्रमुख हैं।
लोकसभा की स्थायी समितियों में तीन वित्तीय समितियाँ यथा- लोक लेखा समिति, अनुमान समिति तथा लोक उपक्रमों पर समिति अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इन तीन महत्वपूर्ण समितियों के अतिरिक्त 08 अप्रैल, 1993 से 17 विभागीय समितियाँ भी कार्यरत हैं, जो अनुदान माँगों पर विचार-विमर्श कर बजटीय प्रणाली को कुशल बनाती हैं।
अस्थायी समितियाँ किसी विचाराधीन प्रस्ताव पर संसद के किसी सदन द्वारा या अध्यक्ष द्वारा किसी विशिष्ट विषय के लिए या विशेष विधेयकों पर विचार करने एवं रिपोर्ट देने के लिए प्रवर एंव संयुक्त समितियों के रूप में बनाई जाती हैं। लोक प्रशासन पर संसदीय समितियों के माध्यम से नियंत्रण के क्रम में निम्नांकित समितियाँ महत्वपूर्ण हैं- लोक लेखा समिति, अनुमान समिति और लोक उपक्रमों पर समिति।

13.2.2.1 लोक लेखा समिति

लोक लेखा समिति भारतीय संसद की सबसे पुरानी और सबसे महत्वपूर्ण समितियों में से एक है। भारतीय संसद के भी बनने से पहले 1921 में 'Central Legislative Assembly' में लोक लेखा समितियाँ होती थी। 1967 तक इसका अध्यक्ष सत्तारूढ़ दल से होता था। 1967 के बाद से हमेशा इसका अध्यक्ष विपक्ष से होता रहा। विपक्षी दलों की राय से लोक सभा अध्यक्ष, लोक लेखा समिति के अध्यक्ष की नियुक्ति करती है। इस समिति का अध्यक्ष विपक्ष का कोई सदस्य होता है। 1967 से ही ये एक परम्परा बन चुकी है। सन् 1969 के पश्चात सामान्यतः विपक्षी

दलों को अध्यक्ष पद प्रदान किया जाता रहा है। चूँकि एक वर्ष की समयावधि लोक लेखा समिति के सदस्यों के कार्यकरण की दृष्टि से पर्याप्त नहीं है। अतः कुछ सदस्य पुनः निर्वाचित (दो तिहाई) कर लिए जाते हैं, ताकि नये एवं अनुभवी दोनों प्रकार के सदस्य इस समिति में बने रहें। नियमानुसार कोई मंत्री पद धारक व्यक्ति समिति का सदस्य नहीं बनाया जा सकता है। आईये लोक लेखा समिति का अध्ययन निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर करते हैं-

1. **लोक लेखा समिति के कार्य-** इसका मुख्य कार्य सरकारी खर्चो के खातों कीर जाँच करना है। लोक लेखा समिति को प्राक्कलन समिति की 'जुड़वा बहन' भी कहा जाता है। ऐसा इसलिये, क्योंकि दोनों समितियों के कार्य एक-दूसरे के पूरक हैं। प्राक्कलन समिति जहाँ सार्वजनिक यानि सरकारी व्यय के अनुमानों से सम्बन्धित कार्य करती है, वहीं लोक लेखा समिति मुख्यतयाः भारत सरकार के व्यय के लिए सदन द्वारा प्रदान की गई राशियों का खर्च दर्शाने वाले लेखों की जाँच करती है। इसका आधार हमेशा नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट होती है। 'भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स' जैसे सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों को छोड़कर जहाँ भी सार्वजनिक धन का व्यय होता है, वहाँ-वहाँ ये समिति जाँच कर सकती है। इसका कार्यकाल एक वर्ष का होता है। ये समिति नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा दिये गये लेखा परीक्षण सम्बन्धी प्रतिवेदनों की जाँच करती है। संक्षेप में इसके कार्यों को बिन्दुवार कुछ इस प्रकार से समझा जा सकता है-
    - इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होता है कि, क्या धन प्राधिकृत रूप से खर्च किया गया है और उसी प्रयोजन से खर्च किया गया है, जिसके लिए वह प्रदान किया गया।
    - जाँच करते समय यह देखना कि किसी सरकारी अभिकरण द्वारा किया गया व्यय उसी मात्रा या सीमा में है जो संसद द्वारा स्वीकृत किया गया था।
    - यह देखना कि व्यय करने की स्वीकृति देने वाला अधिकारी इस कार्य के लिए वैध सत्ता प्राप्त (प्राधिकार युक्त) हैं।
    - समिति केवल तकनीकी अनियमिताओं का पता लगाने में ही रुचि नहीं रखती, बल्कि यह राष्ट्र के विभिन्न वित्तीय मामलों के संचालन में अपव्यय, भ्रष्टाचार, अकुशलता या कार्यपालन में कमी के किसी प्रमाण को प्रकाश में लाने में भी रुचि रखती है।
    - सरकारी नियमों (लोक उपक्रमों), व्यापार, योजनाओं तथा परियोजनाओं के लेखों का परीक्षण करना तथा उनके आय-व्यय, लाभ-हानि इत्यादि विवरण पत्रों की जाँच करना भी समिति का कार्य-क्षेत्र हैं।
    - यह संबंधित मंत्रालय या विभाग द्वारा की गई फिजूलखची या उचित नियंत्रण के अभाव में निरनुमोदन के रूप में अपनी राय भी व्यक्त कर सकती है, या उसकी निंदा भी कर सकती है।
    - स्वायत्त या अर्ध-स्वायत्त निकायों के आय-व्यय लेखों की जाँच करना, जहाँ आवश्यक रहता हो।
    - राष्ट्रपति द्वारा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को सौंपे गए, कुछ विशिष्ट कार्यो के प्रतिवेदनों के आधार पर जाँच करना।
    - आय-व्यय के विवरणों की जाँच के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण सुझाव भी समिति दे सकती है जो वित्तीय नियंत्रण में सहायक हो सकते हैं।
2. **लोक लेखा समिति की कार्य-प्रणाली-** लोक लेखा समिति का कार्यकरण इसके सम्पूर्ण सदस्यों के साथ मंत्रणा के पश्चात अध्यक्ष द्वारा निर्धारित किया जाता है, जो प्रायः पूर्व के वर्षो की परम्परानुसार

संचालित होता है। समिति की बैठक बुलाने के लिये गणपूर्ति (कोरम) के रूप में 04 सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा प्रस्तुत विनियोग तथा वित्तीय प्रतिवेदनों के आधार पर समिति कुछ विभागों या मंत्रालयों को जाँच के लिए चुनती है। समिति की जाँच एवं कार्यों के दौरान सम्बन्धित मंत्रालय का सचिव, वित्तीय सलाहकार तथा अन्य सम्बन्धित अधिकारियों के अतिरिक्त नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक भी उपस्थित रहता है। वस्तुतः नियंत्रक एवं महालेखा एक मध्यस्थ तथा विशेषज्ञ की भूमिका निभाता है। समिति के प्रशासनिक कार्यों में सहायता प्रदान करने के लिये एक सचिव होता है। समिति को लोकसभा सचिवालय से प्रशासनिक सहायता प्राप्त होती है। समिति की बैठकें प्रायः गुप्त रहती हैं।

जाँच कार्य के दौरान समिति आवश्यकतानुसार कोई भी रिकॉर्ड, रजिस्टर या सूचना माँग सकती है तथा किसी भी सम्बन्धित व्यक्ति से वार्ता कर सकती है। जाँच के दौरान सामने आने वाली वित्तीय अनियमितताओं का समिति विस्तार से वर्णित करती है तथा आवश्यक सुरक्षा उपाय सुझाती है। विवादास्पद मुद्दों पर समिति में मतदान भी हो सकता है। सामान्यतः अध्यक्ष मतदान नहीं करता, किन्तु निर्णायक स्थिति में वह अपना मत दे सकता है। समिति की रिपोर्ट संसद में प्रस्तुत की जाती है जिसे सरकार द्वारा प्रायः ज्यों की त्यों स्वीकार किया जाता रहा है।

यह भी महत्वपूर्ण है कि यह समिति नीतिगत मामलों पर निर्णय नहीं करती है, बल्कि सरकारी संस्थानों द्वारा किए गए व्यय का परीक्षण ही करती है। चूँकि समिति में कई राजनीतिक दलों के सदस्य सम्मिलित रहते हैं। अतः, आपसी वैमनस्य, संकीर्णता तथा असहयोग की आशंका बनी रहती है। किन्तु विगत पाँच दशकों में भारत में इस समिति का कार्यकरण राजनैतिक स्वार्थों से ऊपर उठकर जनहित के पक्ष में ही नजर आया है।

3. **लोक लेखा समिति की आलोचना-** लोक सेवा समिति के कार्यकरण की प्रायः प्रशंसा ही होती है किन्तु, कतिपय प्रश्न आलोचकों द्वारा उठाये जाते रहे हैं, जैसे-
    - यह समिति स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं करती है, बल्कि नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्टों को ही आधार बनाकर आगे जाँच करती है।
    - समिति के सदस्य वित्त, लेखांकन, प्रबन्ध या अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ नहीं होते हैं, बल्कि राजनीतिज्ञ होने के कारण उन्हें वित्त जैसे तकनीकी विषयों में अरुचि ही होती है।
    - समिति प्रशासनिक तंत्र की आन्तरिक कार्य-प्रणाली में हस्तक्षेप नहीं कर सकती है।
    - लोक लेखा समिति सरकार के नीतिगत मामलों पर जाँच नहीं कर सकती है, भले ही नीतियाँ गलत क्यों न हों।
    - इस समिति के निर्माण के पश्चात संसद में वित्तीय नियंत्रण सम्बन्धित बहस कम हो जाती है, क्योंकि सदस्यों की राय में उनका कार्य समिति कर रही होती है। जबकि सरकार समिति की अनुशंसाओं पर पूर्ण ध्यान नहीं देती है।
    - समिति की रिपोर्ट को स्वीकार करने के लिए सरकार बाध्य नहीं है।

यद्यपि लोक लेखा समिति के सदस्य विशेषज्ञ नहीं होते हैं, किन्तु कुछ सदस्य शनैः-शनैः इसके कार्यों में रुचि लेकर विशेषज्ञ बन जाते हैं। ब्रिटिश लोक लेखा समिति के कार्यों को कतिपय विद्वानों ने पोस्टमार्टम के समान माना है, जहाँ साँप के गुजरने के पश्चात केवल लीक पीटने का कार्य होता है। किन्तु सिडनी वेब का कहना है, ''निस्संदेह पोस्टमार्टम के द्वारा मृत व्यक्ति को पुनः जीवित नहीं किया जा सकता है, लेकिन भविष्य की हत्याएँ रोकी जा

सकती है।'' वास्तव में लोक लेखा समिति एक महत्वपूर्ण निकाय है, जिसके भय के कारण प्रशासनिक तंत्र नियंत्रित रहता है।

13.2.2.2 अनुमान समिति या प्राक्लन समिति

अनुमान समिति या प्राक्कलन समिति एक महत्वपूर्ण संसदीय समिति है। यह समिति संसद के माध्यम से सरकार द्वारा प्राप्त किये गये धन के व्ययों के अनुमानों की जाँच-पड़ताल करती हैं। यह स्थायी मितव्ययता समिति के रूप में कार्य करती है और इसके सुझाव सरकारी फिजूलखर्ची पर रोक लगाने का काम करते हैं। अर्थात्, ये आर्थिक प्रशासनिक ढाँचे में सुधार लाने के लिये सुझाव देवी है। इसे सतत् मितव्ययता समिति भी कहा जाता है। यह समिति इस बारे में ये भी सुझाव देती है कि प्राक्कलन को संसद में किस रूप में पेश किया जाये। यद्यपि अनुमान या प्राक्कलन(Estimate) समिति की स्थापना की मांग 1937 में की गयी थी, किन्तु तब इसे कार्यरूप नहीं दिया जा सका। कुछ समय तक एक स्थायी वित्तीय समिति अवश्य थी, जिसकी रचना 1921 में की गयी थी, जो भारत सरकार के वित्त विभाग से संलग्न थी। यह समिति कठोर वित्तीय सीमाओं के अधीन कार्य करती थी, परन्तु इसके अस्तित्व ने अनुमान समिति की रचना के औचित्य को समाप्त नहीं किया। अनुमान समिति सर्वप्रथम विधिवत् रूप से 10 अप्रैल 1950 से स्थापित हुई। उस समय इसमें 25 सदस्यों का निर्वाचन किया गया था। 1953 में इसके कार्यों में वृद्धि की गयी। अनुमान समिति की महत्ता को बताते हुए जी0वी0 मावलेकर ने कहा था, ''यह समिति मितव्ययता, प्रशासन में कार्यकुशलता तथा सार्वजनिक धन के समुचित उपयोग को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से बनायी गयी है। अतः समिति को यह अधिकार है कि वह ऐसी किसी नीति में संशोधन का सुझाव दे, जिसके कारण विपुल धनराशि निरर्थक व्यय हो रही है।''

आईये अनुमान या प्राक्लन समिति को निम्नाकित बिन्दुओं के आधार पर समझने का प्रयास करते हैं-

1. **अनुमान समिति का संगठन-** जैसा कि आप जानते हैं कि अनुमान समिति एक स्थायी समिति है और इसका कार्यकाल एक वर्ष का होता है। लोक लेखा समिति से भिन्न इसमें राज्य सभा के सदस्यों को प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाता है। इसके कार्य और नियुक्ति की रीति तथा अन्य सम्बन्धित विषय लोक सभा में प्रक्रिया तथा कार्य संचालन के नियमों द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। इस समिति के सदस्यों का निर्वाचन लोकसभा के सदस्यों के बीच में से अनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एकल-संक्रमणीय मत पद्धति के आधार पर होता है। प्रारम्भ में इसके सदस्यों की संख्या 25 थी जो बढ़ाकर 30 कर दी गयी। प्रायः लोकसभा में राजनीति दलों के सदस्यों की संख्यानुसार ही इस समिति में भी प्रतिनिधित्व रहता है। समिति के अध्यक्ष की नियुक्ति लोकसभा के अध्यक्ष द्वारा की जाती है। यदि लोक सभा के उपाध्यक्ष इस समिति के सदस्य निर्वाचित हो जाते हैं तो वे समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य करते हैं। सत्तारूढ़ दल का वरिष्ठ सदस्य प्रायः अध्यक्ष बनाया जाता है। केन्द्रीय मंत्री-परिषद का कोई भी सदस्य (मंत्री) इस समिति का सदस्य नहीं हो सकता है। प्रति वर्ष एक तिहाई नये सदस्य तथा दो तिहाई सदस्य पुनः चुन लिये जाते हैं, ताकि कार्य संचालन उपयोगी बना रह सके।

   अनुमान समिति सरकार की नीतियों से सम्बन्धित मामलों में सरोकार नहीं रखती है। इसका मुख्य उद्देश्य तो इस बात से सन्तुष्ट रहना होता है कि निर्धारित रीति के अन्तर्गत अधिकतम मितव्ययता के साथ न्यूनतम व्यय किया जाये। सरकार द्वारा स्वीकृत योजनाओं व परियोजनाओं को कार्यान्वित करते हुए व्यय में मितव्ययता को सुनिश्चित करना है।
2. **अनुमान समिति के कार्य-** अनुमान समिति द्वारा निम्नलिखित कार्य किए जाते हैं-
   - प्रशासनिक सुधारों द्वारा मितव्ययता लाने के उचित सुझाव देती है।

- लोक प्रशासन में कार्यकुशलता तथा मितव्ययता लाने के लिये प्रचलित नीतियों के स्थान पर अन्य विकल्प सुझाना।
- बजटीय अनुमानों में वांछित तथ्यों के सही प्रस्तुतीकरण का परीक्षण करना।
- समिति इस बात को भी देखती है कि प्रशासकीय क्रियाओं में लगाया गया धन अनुमानों में निहित सीमाओं के अन्तर्गत व्यय किया गया है, या नहीं।
- संसद के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने वाले अनुमानों के स्वरूप (ढंग) के क्रम में सुझाव।
- अनुमान समिति अपने कार्यों को पूरा करने के लिये उप-समितियों का गठन करती है। उप-समितियों को किसी भी प्रकार का कार्य सौंपा जा सकता है और उसके द्वारा प्राप्त प्रस्तुत प्रतिवेदनों का वही महत्व होता है जो अनुमान समिति के प्रतिवेदनों का होता है।
- यह समिति उन उपायों के विषय में सुझाव देती है, जिनके द्वारा अनुमानों को संसद में प्रस्तुत किया जाता है।
- समिति सरकारी अधिकारियों की सुनवाई कर सकती है और एक ऐसी प्रश्नावली तैयार करती है, जिनके प्रश्नों का उत्तर विभागाध्यक्षों को देना पड़ता हैं।

इस प्रकार यह समिति संसद के समक्ष किये जाने वाले अनुमानों में निहित नीतियों से संगति रखते हुए मितव्ययता सम्बन्धी सुझाव देती है। यह नीति सम्बन्धी प्रश्नों में हस्तक्षेप नहीं करती। प्रकटतः यह ऐसी किसी नीति की जाँच कर सकती है, जिसे सरकार ने अपने निष्पादीय कार्यों के संचालन में निर्धारित किया हो। इसके अतिरिक्त यदि समिति को ये पता चल जाये कि संसद द्वारा निर्धारित नीति के कोई विशेष वांछित परिणाम नहीं हो रहे हैं या अपव्यय हो रहा है तो इस समिति का यह कर्तव्य है कि वह लोकसभा का ध्यान नीति में परिवर्तित करने के लिये आकर्षित करे। लोक उपक्रमों पर समिति के निर्माण से पूर्व अनुमान समिति लोक उपक्रमों के सम्बन्ध में रिपोर्ट देती थी, किन्तु अब समिति का कार्य केन्द्रीय मंत्रालयों तक ही सीमित रह गया है।

3. **अनुमान समिति की कार्य-प्रणाली-** अनुमान समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष होता है, किन्तु उन्हें पुनः निर्वाचित होने का अधिकार है। इससे समिति की सदस्यता में निरन्तरता बनी रहती है। समिति की रचना मई में किसी समय की जाती है और ये जुलाई से काम करना प्रारम्भ कर देती है। वह सालभर के लिये अनुमानों का चयन करके अपने कार्यों की योजना तैयार करती है। अनुमान समिति के सदस्य एवं अध्यक्ष मिलकर समिति के कार्यकरण को सुनिश्चित करते हैं। चूँकि भारतीय प्रशासनिक-तंत्र की विशालता एवं जटिलता को देखते हुए एक वर्ष में सभी विभागों के अनुमानों का परीक्षण करना सहज कार्य नहीं है अतः यह समिति प्रतिवर्ष तीन या चार मंत्रालय परीक्षण हेतु चुनती है तथा इन मंत्रालयों में से कुछ विशिष्ट विभागों या योजनाओं के लिये प्रस्तुत वित्तीय अनुमानों का ही गहन अध्ययन करती है। इस परीक्षण हेतु अनुमान समिति अपने साथ कतिपय उप-समितियाँ गठित कर लेती है। उप-समितियों को पृथक्-पृथक् विषयों का कार्य सौंप दिया जाता है। ये सभी उप-समितियाँ मूल अनुमान समिति की भाँति पूर्ण अधिकार प्राप्त समितियाँ होती हैं। जिस मंत्रालय से सम्बन्धित अनुमानों का परीक्षण किया जाना होता है, उससे सम्बन्धित समस्त आवश्यक सूचनाऐं समिति तथा उसकी उप-समितियाँ एकत्र करती हैं। इन प्राक्कलनों या सूचनाओं की जाँच के लिये निर्धारित प्रारुपों का उपयोग किया जाता हैं। इन प्रारुपों में सम्बन्धित मंत्रालयों से, मंत्रालयों के अधीन चल रही योजनाओं तथा परियोजनाओं, पिछले वर्ष के खर्च तथा वर्तमान अनुमानों में अन्तर आदि जैसी कई जानकारियाँ माँगी जाती हैं। समिति चाहे तो उक्त सूचना के आधार पर मंत्रालयों के कर्मचारियों व अधिकारियों को स्पष्टीकरण के लिए बाध्य कर सकती हैं। यह

गैर-सरकारी लोगों को भी साक्ष्य के लिये बुला सकती है। समिति अनुमानों की जाँच के बाद अपना प्रतिवेदन लोक सभा में प्रस्तुत करती है। प्रतिवेदन पर कोई नियमित वाद-विवाद नहीं होता है, फिर भी सदस्यगण बजट पर चर्चा करते समय तथा अनुदानों की माँगों के बीच प्रतिवेदन का विस्तार से उल्लेख करते हैं। सामान्यतः समिति की सिफारिशों पर सरकार अमल करती है। मतभेद की स्थिति में अन्तिम निर्णय संसद का होता है।

अनुमान समिति संसद की एक ‘स्थायी बचत समिति’ के रूप में कार्य करती है। अपने प्रतिवेदनों में समिति ने प्रशासकीय व वित्तीय दोनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण व उपयोगी सुझाव दिये हैं। ‘बजटीय सुधार’ तथा ‘नागरिक व्यय की वृद्धि’ की समस्याओं पर समिति ने विस्तृत विवेचना की है। फिर भी समिति की सफलता सरकार पर दीर्घकालीन चिन्तन तथा योजना के सम्बन्ध में पड़ने वाले प्रभाव पर निर्भर है।

4. **अनुमान समिति की आलोचना-** अनुमान समिति की अनेक आधारों पर आलोचना की गयी है। समिति पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि यह सरकारी अनुमानों की ब्यौरे से पड़ताल न करके, सरकारी नीतियों व विभागीय संगठन के पुनरीक्षण पर विशेष जोर देती है। इसकी आलोचना के अन्य बिन्दुओं को कुछ इस प्रकार दर्शाया जा सकता है-

- अनुमान समिति द्वारा सरकारर की नीतियों व विभागीय संगठनों की समीक्षा पर जोर देने से इसके स्वरूप व उद्देश्यों में बदलाव आ गया है।
- सदस्यता बदलते रहने के कारण समिति को प्रशासन के कार्यों का पर्याप्त ज्ञान नहीं हो पाता, अतः इसके सुझाव बहुत उपयोगी नहीं बन पाते हैं।
- तथ्यों का अन्वेषण करने के बजाय यह छिद्रान्वेषी सन्यन्त्र बन गया है।
- लोक लेखा समिति की भाँति इस समिति में भी वित्त एवं अर्थव्यवस्था के विशेषज्ञों का अभाव है। इसे नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की सहायता भी नहीं मिलती है।
- एक विभाग या मंत्रालय का समिति द्वारा परीक्षण हो जाने के पश्चात वर्षों तक पुनः नम्बर नहीं आता है। अतः परीक्षित विभाग निष्क्रिय एवं लापरवाह हो जाते हैं।
- अनुमान समिति, मितव्ययता सुधारों के बजाय संगठनात्मक संरचना तथा कार्मिकों की संख्या इत्यादि विषयों पर अधिक रुचि लेती है।
- बहुधा समिति उन कर्तव्यों का निर्वहन करने लग जाती है, जो वास्तव में लोक सभा के हैं।
- अशोक चन्दा के अनुसार, ‘‘इस समिति का मुख्य कार्य आय-व्यय अनुमानों का परीक्षण कर यथोचित सुझाव सरकार को देना है, किन्तु यह समिति कई बार ‘सुधारक’ की भूमिका में आकर सरकार की नीतियों (संसद द्वारा स्वीकृत) एवं विभागों के गठन पर प्रश्न-चिह्न लगाने लग जाती है।’’

समिति की सिफारिशें परामर्शदात्री होती हैं और उसकी सिफारिशों को मानना या न मानना सरकार पर निर्भर करता है। यह सत्य है कि समिति का कार्यकाल एक वर्ष का है अतः इसकी सदस्यता अस्थायी है, फिर भी प्रतिवर्ष एक-तिहाई सदस्यों द्वारा अवकाश ग्रहण करने की प्रथा के कारण इसकी सदस्यता में निरन्तरता बनी रहती है। वास्तव में, समिति अधिकाधिक सदस्यों को प्रशिक्षण देने का एक शक्तिशाली एवं प्रबल साधन है। प्रशिक्षण में केवल प्रशासन के संचालन सम्बन्धी तरीकों पर ही बल नहीं दिया जाता बल्कि संसार के सामने नित्यप्रति आने वाली समस्याओं से भी उन्हें परिचित कराया जाता है। अनुमान समिति विशेषज्ञों की सहायता से ही कार्य करती है।

लेकिन अनुमान समिति के सम्बन्ध में की गयी उपर्युक्त आलोचनाओं से इसकी उपयोगिता समाप्त नहीं होती, क्योंकि समिति ने सरकारी भूल-चूक के अनेक कार्यों को प्रकाश में लाकर बहुत ही उपयोगी कार्य किया है। साथ ही समिति भारत में प्रशासन की योग्यता तथा उसके स्तर को उन्नत करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।

13.2.2.3 लोक उपक्रमों पर समिति

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था का मार्ग अपनाया गया, जिसमें निजी उद्यमों की स्थापना के बाद सार्वजनिक उद्यमों की स्थापना की ओर भी ध्यान दिया गया। ऐसी स्थिति में लोक उपक्रमों की संख्या का निरन्तर बढ़ना भी स्वाभाविक था। काफी समय से लोक उद्यमों के कार्यचालन के लिये निरीक्षण तथा समय-समय पर उनके विषय में संसद को प्रतिवेदन देने के लिये एक संसदीय समिति की रचना करने की माँग की जाती रही थी। इस माँग के पीछे भावना ये रही थी कि अपने प्रति उत्तरदायी उद्यमों को नियंत्रित करने के अनेक अवसर पाते हुए भी संसद किसी प्रभावशाली तथा अर्थपूर्ण ढंग से उनके ऊपर नियंत्रण रखने में सफल नहीं रही हैं बल्कि इसका नियंत्रण अव्यवस्थापूर्ण, गतिहीन तथा अपर्याप्त होने के साथ-साथ तारतम्यहीन भी रहा है। ऐसी स्थिति में लोक उपक्रमों के कार्यकरण तथा वित्तीय प्रक्रियाओं पर संसदीय नियंत्रण स्थापित करने के लिये एक समिति की आवश्यकता महसूस की गयी। सर्वप्रथम, दिसम्बर, 1953 में एक निर्दलीय सदस्य डॉ0 लंका सुन्दरम ने लोकसभा में यह माँग उठायी कि लोक उपक्रमों पर नियंत्रण के लिये एक समिति का गठन किया जाना चाहिये ताकि लोक उपक्रमों पर मंत्रियों के नियंत्रण, संसद के अधिकार तथा आम व्यक्ति (करदाता) के धन के समुचित उपयोग को सुनिश्चित किया जा सके। वी0 के0 कृष्णमेनन समिति ने लोक उपक्रमों पर समिति के गठन की अनुशंसा के साथ ही ये भी सुझाया था कि यह समिति लोक उपक्रमों पर सर्वोच्च प्रबन्ध मंडल या छिद्रान्वेषक के तौर पर कार्य ना करे। इसके उपरान्त सन् 1956 में जीवन बीमा विधेयक पर चर्चा के दौरान भी अशोक मेहता ने पुनः इस समिति के गठन का प्रश्न उठाया। ऐसी ही कुछ सिफारिश योजना आयोग ने की थी। अतः इन सब तरह की सिफारिशों के बाद लोकसभा ने नवम्बर 1963 में लोक उपक्रमों पर समिति से सम्बन्धित एक प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तथा 01 मई, 1964 को लोक उपक्रमों पर समिति अस्तित्व में आयी। प्रारम्भ में इस समिति में 15 सदस्य थे जिनमें से 10 लोकसभा से व 05 राज्यसभा से लिये गये थे। जिनकी संख्या 1974-1975 में बढ़ा दी गई।

लोक उपक्रमों पर समिति(कमेटी ऑन पब्लिक अण्डरटेकिंग्स) जिसे कोपू(सी0ओ0पी0यू0) भी कहा जाता है, में अब 22 सदस्य होते हैं। लोकसभा से 15 सदस्य तथा राज्यसभा से 07 सदस्य आनुपातिक प्रतिनिधित्व की एकल संक्रमणीय मत प्रणाली द्वारा प्रतिवर्ष चुने जाते हैं। लोक लेखा तथा अनुमान समिति की भाँति इस समिति में भी एक तिहाई सदस्य प्रतिवर्ष नये सम्मिलित हो जाते हैं। समिति में कोई भी मंत्री सदस्य नहीं बनता है तथा इसके अध्यक्ष की नियुक्ति लोकसभा के द्वारा की जाती है।

1. **लोक उपक्रमों पर समिति के कार्य-** लोक उपक्रमों पर समिति को अनेक महत्वपूर्ण कार्य सौंपे गये हैं, जो केन्द्र सरकार के अधीन कार्यरत सार्वजनिक निगमों, कम्पनियों से सम्बन्धित हैं। ये हैं-
    - निर्धारित अनुसूची में वर्णित लोक उपक्रमों के प्रतिवेदन तथा लेखाओं का परीक्षण करना।
    - नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की लोक उपक्रमों से सम्बन्धित रिपोर्टों का परीक्षण करना।
    - लोक उपक्रमों की स्वायत्तता तथा कार्यदक्षता के सन्दर्भ में इनके प्रबंधकीय, व्यवहारों का स्वस्थ व्यापारिक तथा वाणिज्यिक सिद्धान्तों के क्रम में परीक्षण करना।
    - लोक लेखा समिति तथा अनुमान समिति के उन कार्यों का परीक्षण करना जो लोक उपक्रमों से सम्बन्धित हैं, अथवा लोकसभा के अध्यक्ष द्वारा इस समिति को सौंपे गये हैं।

    इसके अतिरिक्त लोक उपक्रमों पर समिति की कतिपय सीमा भी निर्धारित की हुई हैं-

- यह समिति सरकार की प्रमुख नीतियों से सम्बन्धित प्रकरणों पर जाँच नहीं कर सकती है।
- लोक उपक्रमों के दैनिक प्रशासन पर टिप्पणी नहीं कर सकती है।
- किसी विशिष्ट निकाय की स्थिति प्राप्त लोक उपक्रमों के कतिपय प्रकरणों की जाँच भी नहीं कर सकती है।

2. **लोक उपक्रमों पर समिति की कार्य-प्रणाली-** लोक उपक्रमों पर समिति का मुख्य दायित्व केन्द्र सरकार के उद्यमों के लेखाओं तथा प्रतिवेदनों की जाँच करना है। समिति अपनी पूर्ण बैठक में कार्य-प्रणाली निश्चित करती है। प्रतिवर्ष सभी लोक उपक्रमों की जाँच के बजाय कुछ उपक्रमों को ही चुना जाता है। यह चुनाव लोक उपक्रमों के प्रतिवेदन तथा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट के आधार पर ही होता है। समिति के सदस्य सम्बन्धित उपक्रम के कार्यकरण तथा लेखा से सम्बन्धित समस्त रिकॉड देखते हैं। अंत में तीन प्रकार की रिपोर्टें प्रस्तुत की जाती हैं- प्रथम रिपोर्ट में, व्यक्तिगत उपक्रम, दूसरी में उपक्रम के विभिन्न कार्यों जैसे-वित्त, प्रबन्ध कार्मिक, उत्पादन, सामग्री विपणन इत्यादि का वर्णन होता है जबकि तीसरी रिपोर्ट सरकार द्वारा की गई कार्यवाहियों से सम्बन्धित होती है।
3. **लोक उपक्रमों पर समिति आलोचना-** लोक उपक्रमों पर समिति को लोक लेखा समिति तथा अनुदान समिति की भाँति पर्याप्त अधिकार प्राप्त नहीं है। यह प्रश्न इस समिति की स्थापना के समय भी उठाया गया था। उदाहरण के लिए यह समिति लोक उपक्रमों से सम्बन्धित सरकार की मूल्य नीति एवं श्रमिक-प्रबन्ध के क्रम में जाँच नहीं कर सकती है। इसके अतिरिक्त भी समिति में कुछ अन्य कमियाँ पायी जाती हैं जो कुछ इस प्रकार हैं-
    - बहुत से (जैसे रक्षा क्षेत्र के लोक उपक्रम) सरकारी उपक्रम इस समिति के जाँच के दायरे से ही बाहर रखे गये हैं।
    - समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनों पर संसद में चर्चा नहीं होती है और न ही संसद सदस्य इसकी रिपार्टों को पढ़ने में रुचि लेते हैं।
    - सरकार द्वारा इसकी (लोक उपक्रमों पर समिति) अनुशंसाओं पर गंभीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया गया है।
    - इस समिति के सदस्य भी राजनीतिज्ञ ही होते हैं, जिन्हें वित्त, लेखा, वाणिज्य, व्यापार तथा उद्योगों की तकनीकी एवं जटिल कार्य-प्रणाली का विशेष ध्यान नहीं रहता है।

इस प्रकार संसदीय नियंत्रण की पूरी प्रक्रिया को देखने के बाद ये कहा जा सकता है कि संसदीय नियंत्रण लोक प्रशासन पर नियंत्रण का एक लोकप्रिय तथा महत्वपूर्ण साधन है जो सम्पूर्ण लोक प्रशासन को सजक तथा सक्रिय रखता है। चूँकि समस्त प्रशासनिक कार्यों की अन्तिम जिम्मेदारी सम्बन्धित मंत्रालय के मंत्री तथा अन्ततः सम्पूर्ण मंत्री-परिषद की ही रहती है। अतः राजनीतिक कार्यपालिका, प्रशासनिक तंत्र पर प्रभावकारी नियंत्रण रखना चाहती तो है, लेकिन यह नियंत्रण मात्र सिद्धान्त रूप में ही प्रभावी प्रतीत होता है, व्यवहारतः संसद अनेक सीमाओं में बंधी हुई रहती है। संसदीय नियंत्रण के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का यह सोचना है कि संसद के पास समय तथा कुशल कर्मचारियों का अभाव है, वहीं दूसरी ओर सत्ताधारी दल के स्पष्ट बहुमत में होने के कारण भी प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण शिथिल रहता है। प्रशासन पर नियंत्रण के सम्बन्ध में एक नाजुक समस्या यह भी है कि विधायिका किस सीमा तक प्रशासकों पर नियंत्रण रखे अर्थात् नियंत्रण की सीमा क्या हो? इसी प्रकार एक विकट समस्या यह भी रहती है कि इस सीमा का निर्धारण किस मानदण्ड को रखकर किया जाय। यह तथ्य भी सही है कि अनेक बार

संसद का हस्तक्षेप प्रशासन के दैनिक कार्यों में आवश्यकता से अधिक हो जाता है। प्रशासकों के कार्यों पर अधिक प्रतिबन्ध लग जाने से उनके लिये ठीक से कार्य कर पाना कठिन होता है।

13.3 प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण की समस्याऐं

भारत में प्रशासन पर विधायिका के नियंत्रण की समस्या को विस्तृत रूप में निम्न बिन्दुओं में भली-भाँति समझा जा सकता है।

1. विधायकों के पास कार्यों का बोझ आवश्यकता से अधिक होता है, जिसके कारण वे नियंत्रण से सम्बन्धित गतिविधियों को पूरा करने हेतु उचित समय नहीं दे पाते हैं।
2. सभी संसद सदस्य आवश्यक रूप से संसद की कार्यवाहियों में रुचि प्रकट नहीं करते है, बल्कि सभी दलों में मात्र दो-चार सदस्य ही ऐसे होते हैं जो पूर्णरूप से मुखर एवं सक्रिय नजर आते हैं।
3. संसद सदस्य की अधिकांश आलाचनाऐं दलीय भावनाओं पर आधारित होती हैं।
4. भारतीय प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण वास्तव में मंत्रियों को उत्तरदायित्वों से मुक्ति का एक बहाना होता है, अपने इस कार्य से बचने के लिये वो स्वयं बचकर उत्तरदायित्व, स्वयं न लेते हुए प्रशासनिक अधिकारियों पर थोप देते हैं।
5. संसद सदस्यों के लिये न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता भी निर्धारित नहीं होती है, जिसके कारण सभी सदस्य विधायिका तथा कार्यपालिका की तकनीकी शब्दावली एवं प्रक्रियाओं से पूर्णरूप से परिचित नहीं होते, अतः कई बार उनमें स्वतः ही अपने इस कार्य के लिये अरूचि पैदा हो जाती है।
6. सांसदों के पास किसी प्रकार का तकनीकी ज्ञान नहीं होता, या यूँ कहें कि वे विषय के विशेषज्ञ नहीं होते ऐसे में विषयों की बारीकियों को समझे बिना वे रचनात्मक और प्रभावकारी नियंत्रण स्थापित नहीं कर पाते हैं।
7. संसदीय नियंत्रण के सम्बन्ध में एक समस्या ये भी होती है कि, संसद द्वारा प्रशासनिक अधिकारियों की आलोचना एकपक्षीय होती है। संसद प्रशासनिक अधिकारियों की तो आलोचना करता है, पर सम्बन्धित अधिकारियों को अपना पक्ष रखने का कोई अवसर प्राप्त नहीं होता है। यही कारण है कि अधिकांशतः प्रशासनिक अधिकारी भयभीत रहते हैं और वे प्रभावशाली सदस्यों को येन-केन प्रकारेन प्रसन्न रखने की कोशिश करते हैं। फलस्वरूप इससे प्रशासन की कार्यकुशलता, निष्पक्षता, मनोबल आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं।
8. इस नियंत्रण के सन्दर्भ में एक अन्य समस्या ये भी आती है कि, विधायिका के सदस्यों में स्व-प्रचार(Self-Advertisement) की भावना ज्यादा पायी जाती है। अतः वे सरकार और प्रशासन की आलोचना प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार लाने के लिये नहीं करते, बल्कि इसलिये करते हैं कि अखबारों, टी0वी0 आदि में उनका नाम आये व उनको ख्याति मिले।
9. प्रचण्ड बहुमत भी एक कारण है, जब विपक्षी दलों की स्थिति सदन में कमजोर रहती है और इसका प्रत्यक्ष प्रभाव नियंत्रण पर पड़ता है।
10. भारतीय विधान मण्डलों में विगत कई वर्षो से आ रही नैतिक गिरावट के कारण जनप्रतिनिधियों का व्यवहार नितान्त गैर-जिम्मेदाराना तथा अलोकतांत्रिक हो गया है। ऐसे में जब संसद स्वयं नियंत्रित नहीं है तो वो प्रशासन को कैसे नियंत्रित करेगी।

अतः निष्कर्ष तौर पर ये कहा जा सकता है कि प्रशासनिक नियंत्रण की सीमाएँ स्पष्ट एवं उचित रूप से निर्धारित करके यह देखे जाने की आवश्यकता है कि, संसदीय नियंत्रण की गरिमामय स्थिति बनी रहे। अधिकारी अपनी सत्ता का दुरुपयोग ना करें। इसके अतिरिक्त सांसदों द्वारा की जाने वाली आलोचना सार्वजनिक हित में हो, ना कि

व्यक्तिगत प्रसिद्धि या लाभ के लिये। विधायिका सूक्ष्म परीक्षण के द्वारा प्रशासन पर कड़ी नजर रखें और अप्रमाणिक, निराधार एवं बेबुनियादी बातों को लेकर प्रशासकों की कटु आलोचना ना करें। सच्चाई हालांकि यह है कि विधायी नियंत्रण उपयुक्त नहीं है। अतः उसमें सुधार की अत्यधिक आवश्यकता है। परन्तु फिर भी पॉल एपलबी ने, भारत के सन्दर्भ में कहा है कि, ''संसद, सरकार द्वारा कानून बनाने के लिये प्रस्तुत प्रस्तावों के नीति सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर वाद-विवाद करने का कार्य बड़े प्रशंसनीय ढंग से करती है।'' अतः कहा जा सकता है कि ''कुछ समस्याएँ और सीमाएँ विधायी नियंत्रण के मार्ग में अवश्य ही अवरोधक है, लेकिन इसके बावजूद भी संसदीय शासन वाले देशों में विधायिका के नियंत्रण की स्थिति प्रभावशाली एवं काफी सन्तोषजनक है।

अभ्यास प्रश्न-

1. संसदीय नियंत्रण का दूसरा नाम क्या है?
2. लोक लेखा समिति की स्थापना कब हुई?
3. संसदीय समितियों के सदस्य कितने वर्ष के लिये चुने जाते हैं?
4. अनुमान समिति का दूसरा नाम क्या है?

13.4 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के पश्चात आप को ज्ञात हो गया होगा कि, प्रशासन और सेवी वर्ग अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न करें, निरंकुश और अनुत्तरदायी ना बने, इसके लिये आवश्यक है कि उनकी शक्तियों को नियंत्रित कर उन्हें उत्तरदायी बनाया जाये।

प्रशासनिक पदाधिकारियों पर विधायिका मंत्रियों के माध्यम से नियंत्रण रखती है, क्योंकि संसद द्वारा अनुमोदित नीतियों का क्रियान्वयन मंत्रियों के माध्यम से प्रशासन करता है और प्रशासनिक असफलता, अकार्यकुशलत, अनियमितता के लिये अन्ततः मंत्रिपरिषद ही उत्तरदायी है। प्रशासनिक जागरूकता, ईमानदारी, कार्यकुशलता के लिये मंत्रिपरिषद की जागरूकता आवश्यक है। अतः संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में विधायी अथवा संसदीय नियंत्रण के अनेक साधनों को अपनाते हुए स्थापित किया जाता है।

13.5 शब्दावली

विकासोन्मुख- विकास की ओर बढ़ने वाला, नियोजन- योजना, निष्पादन- क्रियान्वयन, तर्कसंगत- तर्क सहित, विलम्ब- देरी, अपरिहार्य- जिसके बिना काम ना चल सके, शिथिलता- ढीलापन, प्राधिकृत- जिसे विधिवत अधिकार प्राप्त हों, वैध- जो विधि के अनुसार हो, कायदे-कानून के अनुसार, स्वायत्त- स्वतंत्र, वैमनस्य- वैर, तारतम्यहीन- जिसमें तालमेल ना हो

13.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. विधायी नियंत्रण, **2.** 1954, **3.** एक वर्ष, **4.** प्राक्लन समिति

13.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2002-2003
2. आर0के0 दुबे, आधुनिक लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
3. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, लोक प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।

13.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 बी0एल0 फड़िया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा- 2015

13.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. आधुनिक लोकतन्त्रीय राज्य में प्रशासन पर विधायी नियंत्रण की विधियों को समझाइये।
2. भारतीय प्रशासन पर संसद किस प्रकार नियंत्रण रखती है? विस्तृत विवेचना कीजिये।
3. भारतीय संसद किस प्रकार देश के लोक प्रशासन पर प्रभावशाली नियंत्रण रखती है? व्याख्या करें।

इकाई- 14 प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण

इकाई की संरचना

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 न्यायिक नियंत्रण से अभिप्राय
14.3 न्यायिक नियंत्रण का क्षेत्र
14.4 न्यायिक नियंत्रण की प्रणालियाँ
    14.4.1 सामान्य साधन
    14.4.2 विशेष साधन या संवैधानिक उपचार
14.5 न्यायिक नियंत्रण की सीमाऐं
14.6 सारांश
14.7 शब्दावली
14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.11 निबंधात्मक प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

प्रजातांत्रिक देशों में न्यायपालिका नागरिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षक होती हैं। न्यायपालिका इस बात पर भी नजर रखती है कि प्रशासनिक अधिकारी अपनी सीमाओं में रहकर कार्य करें। आधुनिक प्रशासकीय राज्य और जनकल्याण की भावना ने, राज्य के कार्यों और अधिकारों का क्षेत्र, व्यापक बना दिया है। जिस अनुपात में उनके कार्यों में वृद्धि हुई है, उसी अनुपात से राज्य की शक्तियाँ भी बढ़ी हैं। अतः स्वभाविक है कि, यदि उनकी शक्तियों पर नियंत्रण ना रखा गया, तो प्रशासन निरंकुश और तानाशाह बन जायेगा। लोक प्रशासन पर इस नियंत्रण की धारणा को सबसे अच्छे ढंग से न्यायापालिका का नियंत्रण ही पूरा करता है।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- न्यायिक नियंत्रण से क्या आशय है तथा ये कब स्थापित किया जाता है? इस संबंध में जान पायेंगे।
- ये जान जायेंगे कि, प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण स्थापित करने के प्रकार क्या-क्या हैं? अर्थात् नियंत्रण स्थापित कैसे किया जाता है?
- न्यायिक नियंत्रण की सीमाओं के बारे में भी आप जान पायेंगे।

14.2 प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण

सभी प्रजातांत्रिक देशों में न्यायपालिका, नागरिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षक होती हैं। न्यायपालिका इस बात पर पूरी नजर रखती है, कि प्रशासकीय अधिकारी अपनी सीमाओं में रह कर कार्य करें। प्रशासन पर बाहरी नियंत्रण के ये दो ही साधन होते हैं- प्रथम विधायी और दूसरा न्यायिक। पिछले अध्याय में आपने विधायी नियंत्रण

के बारे में विस्तार से पढ़ा। आपको ज्ञात हो गया होगा कि वैधानिक नियंत्रण कार्यपालिका शाखा की नीति तथा व्यय को क्रियान्वित करता है और न्यायपालिका का नियंत्रण कार्यों की वैधानिकता निश्चित करता है या उसकी जाँच करता है। इस प्रकार जब भी कोई सरकारी अधिकारी नागरिकों के संवैधानिक या मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण करते हैं, तो न्यायपालिका उनकी रक्षा करती हैं। अर्थात् भारत में न्यायपालिका ना केवल सर्वोच्च है, बल्कि मौलिक अधिकार एवं संविधान की संरक्षक भी है। अर्नेस्ट फ्रायड(Ernest Freud) ने कहा कि कि, ''बढ़ती हुई प्रशासकीय शक्तियाँ यह माँग करती हैं कि उनकी सुरक्षा की समुचित व्यवस्था जरूरी है, जिसमें उसका दुरूपयोग नहीं किया जा सके। जब तक सरकारी कर्मचारियों में पक्षपात करने, भूल करने या अति-उत्साह प्रदर्शित करने की संभावना है, तब तक व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करना उतना ही आवश्यक है, जितना किसी सरकारी नीति का प्रभावशाली होना।''

संक्षेप में कहा जाये तो जब भी सरकारी अधिकारी अनाचार करता है, या अपने अधिकारों का दुरूपयोग करता है, तो ऐसी स्थिति में कोई भी नागरिक न्यायालयों में उसके विरूद्ध कार्यवाही कर सकता है और न्याय पा सकता है। ऐसे में न्यायालय नागरिकों की स्वतंत्रताओं तथा मौलिक अधिकारों का संरक्षण करते हुए प्रशासन को नियंत्रित करने हेतु जो भी कार्य करती है, वह न्यायिक नियंत्रण कहलाता है। न्यायपालिका का कार्य देश के कानूनों की व्यवस्था करना और उन्हें भंग करने वालों के लिये दण्ड की व्यवस्था करना है।

14.3 न्यायिक नियंत्रण का क्षेत्र

लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के सन्दर्भ में सबसे प्रमुख बात यह है, कि भारत में न्याय व्यवस्था में न्याय पुनरीक्षा या पुनरावलोकन को अपनाया गया है और साथ ही न्यायपालिका को स्वतंत्र रखा गया है। यहीं आपको यह बता दें, कि न्यायिक पुनरावलोकन जिसे कई बार न्यायिक पुनरीक्षा भी कहा जाता है, उस प्रक्रिया को कहते हैं, जिसके अन्तर्गत कार्यकारिणी के कार्यो (तथा कभी-कभी विधायिका के कार्यो) की न्यायपालिका द्वारा पुनरीक्षा (Review) का प्रावधान हो। दूसरे शब्दों में, न्यायिक पुनरावलोकन से तात्पर्य न्यायालय की उस शक्ति से है, जिस शक्ति के बल पर वह विधायिका द्वारा बनाये कानूनों, कार्यपालिका द्वारा जारी किये गये आदेशों तथा प्रशासन द्वारा किये गये कार्यों की जाँच करती है कि वह मूल ढाँचे के अनुरूप है या नहीं। मूल ढाँचे के प्रतिकूल होने पर न्यायालय उसे अवैध घोषित करता है। परन्तु इस स्वंत्रता के उपरान्त भी भारत में न्यायालय अपने आप किसी भी प्रशासकीय अधिकारी या प्रशासन के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता है। न्यायालय लोक प्रशासकों की स्वेच्छाधारिता पर अपना अंकुश और नियंत्रण कुछ निर्धारित नियमों के अनुसार कुछ निश्चित सीमाओं, परिस्थतियों तथा शर्तों में ही रख सकते हैं। इसकी एक बड़ी शर्त ये है कि न्यायालय प्रशासन के कार्यों में तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकते, जब तक की कोई व्यक्ति, समूह या संस्था न्यायालय में आवेदन-पत्र देकर उससे इस आधार पर हस्तक्षेप करने की प्रार्थना न करे, कि सरकारी अधिकारियों के किसी कार्य से उसके अधिकारों का अतिक्रमण या हनन हुआ है अथवा ऐसा होने की सम्भावना है। अतः लोक प्रशासन पर न्यायपालिका अपना नियंत्रण, कुछ विशेष परिस्थितियों, सीमाओं और निर्धारित अवसरों पर ही कर सकती है। प्रो0 एल0डी0 व्हाइट ने पाँच ऐसे अवसरों का उल्लेख किया, जिनमें न्यायपालिका हस्तक्षेप कर सकती है, ये हैं- अधिकार क्षेत्र का अभाव, अधिकारों के विवेक का दुरूपयोग या सत्ता का दुरूपयोग, वैधानिक त्रुटियाँ, तथ्य की प्राप्ति में त्रुटि, और समुचित प्रक्रिया की गलती। आइये इन बिन्दुओं को थोड़ा विस्तार से जानते हैं।

1. **अधिकार क्षेत्र का अभाव(Lack of Justification)-** प्रत्येक नागरिक संगठन अथवा अधिकारी के कार्यक्षेत्र को, नियमानुसार निर्धारित किया जाता है। ऐसी किसी भी परिस्थितियों में जब कोई प्रशासक अपने निर्धारित कार्यक्षेत्र या सीमा के बाहर कोई कार्य करता है और उसके ऐसा करने से यदि किसी नागरिक के अधिकार को हानि पहुँचती है, तो वह व्यक्ति अपने अधिकारों की रक्षा के लिये न्यायालय की

शरण ले सकता है। यदि न्यायालय में प्रस्तुत किये गये प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है, कि वह कार्य प्रशासनिक अधिकारी के क्षेत्र में नहीं था तो न्यायालय उस कार्य की अधिकारिता(Ultra Vires) होने, अर्थात् अधिकारी के कार्यक्षेत्र से बाहर होने के कारण अवैध घोषित कर सकता हैं। इसे न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review) का अधिकार ही कहा जाता है। यह सिद्धान्त उन देशों में प्रचलित है, जहाँ संविधान को सर्वोच्च माना जाता है और इसी कारण इन देशों में यह आवश्यक हो जाता है, कि सरकारी अधिकारियों के सारे कार्य संविधान के अनुकूल ही हो। अमेरिका और भारत में न्यायालयों को यह अधिकार प्राप्त हैं।

2. **सत्ता का दुरूपयोग(Abuse of Authority)-** प्रशासनिक कार्यों को पूरा करने के लिये प्रत्येक अधिकारी के पास सत्ता होती है तथा कतिपय मामलों में वह स्व-विवेक से निर्णय लेने की शक्ति भी रखता है। जब लोक-सेवा के अधिकारी अपने सत्ता और पद(Authority and Post) का प्रयोग अपने विरोधी को जान-बूझकर हानि पहुँचाने या किसी के प्रति बदले की भावना से करें, तो प्रभावित व्यक्ति न्यायालय की शरण में जा सकता है।
3. **वैधानिक त्रुटियाँ(Error of Law)-** इस बात की पूरी सम्भावना रहती है कि सरकारी अधिकारी कानून की गलत व्याख्या करें और नागरिकों को कानून का गलत ढंग से प्रयोग कर हानि पहुँचाएें, ऐसी स्थिति में प्रभावित व्यक्ति न्यायालय में जाकर अपने अधिकारों की रक्षा हेतु, उन कार्यवाहियों की जाँच की माँग कर सकता है, जो वैधानिक दृष्टि से गलत हो। जाँच के उपरान्त यदि न्यायालय ऐसा समझता है कि अधिकारी ने कानून की गलत व्याख्या की है, तो उन कार्यों को न्यायालय में करने असंवैधानिक घोषित कर सकती हैं।
4. **तथ्यों की प्राप्ति में त्रुटि(Error of Fact Finding)-** प्रशासनिक संस्थाओं द्वारा जारी किये जाने वाले आदेश पूर्णतया तथ्यों पर आधारित होने चाहिये। लोक-सेवा में अधिकारी कभी-कभी किसी मामले की जाँच करने में या तथ्यों का पता लगाने में त्रुटि कर सकते हैं या कभी किसी नागरिक को नुकसान पहुँचाने की नीयत से कोई आदेश प्रसारित करता है। ऐसी स्थिति में प्रभावित व्यक्ति न्यायालय जा सकता है।
5. **समुचित प्रक्रिया की गलती(Error of Procedure)-** लोक-सेवा के प्रायः सभी विभागों के कार्य संचालन के लिये विधि द्वारा प्रक्रिया का निर्धारण कर दिया जाता है। उन निर्धारित प्रक्रियाओं के अन्दर रहकर ही सभी विभाग और उसके अधिकारी कार्य करते हैं। जब अधिकारी या विभाग कोई ऐसा कार्य करते हैं, जिसमें निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है, तो प्रभावित नागरिक अपने अधिकारों की रक्षा के लिये न्यायालय की शरण ले सकता है। उदाहरण स्वरूप, यदि किसी कर्मचारी को भ्रष्टाचार के किसी मामले में बर्खास्त कर दिया गया हो, तो उसे सबसे पहले 'कारण बताओ' सूचना दी जाती है। किसी कर्मचारी को कारण बताओ नोटिस दिये बिना ही बर्खास्त कर दिया जाये, तो इसे प्रक्रिया की गलती कहेंगे तथा ऐसी स्थिति में प्रभावित व्यक्ति न्यायालय की शरण में जा सकता है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन के द्वारा आपने एल0डी0 व्हाइट द्वारा बताये गये उन अवसरों के बारे में विस्तार से जाना, जिसमें न्यायपालिका, लोक प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित कर सकती है।

14.4 न्यायिक नियंत्रण की प्रणालियाँ

न्यायिक नियंत्रण के अवसरों को जानने के बाद, यह जानना आवश्यक हो जाता है कि ये नियंत्रण किस प्रकार स्थापित किया जाये? या इसका रूप क्या हो? प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण कई रूपों में स्थापित किया जाता है, क्योंकि न्यायपालिका को प्रशासन पर नियंत्रण का अधिकार भी कई स्त्रोतों से प्राप्त होता है। सामान्य कानून तो,

उन्हें यह अधिकार प्रदान करते ही हैं, संविधान और संसद द्वारा निर्मित अधिनियम भी उनके नियंत्रण के अधिकार को शक्ति प्रदान करते हैं। अर्थात् लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण स्थापित करने हेतु प्रयुक्त साधनों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता हैं- सामान्य साधन और विशेष साधन या संविधान उपचार।
न्यायपालिका के द्वारा इन दोनों श्रेणियों के अन्तर्गत अनेक साधनों को अपनाते हुए प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है। इन सब साधनों को एक आरेख के द्वारा समझा जा सकता है-

न्यायिक नियंत्रण के साधन

सामान्य साधन

1. प्रशासनिक कार्यों तथा निर्णयों का न्यायिक पुनरावलोकन
2. सरकार के विरूद्ध अभियोग
3. प्रत्यायोजित विधान की वैधानिकता
4. कार्यपालिका के कानूनों या नियमों को अवैध घोषित करना

विशेष साधन या संवैधानिक उपचार

1. बन्दी प्रत्यक्षीकरण
2. परमादेश
3. निषेधाज्ञा या प्रतिषेध
4. उत्प्रेषण
5. अधिकार-पृच्छा

आइये अब न्यायिक नियंत्रण के इन सभी साधनों का विस्तृत रूप से विवेचन करते हैं-

14.4.1 सामान्य साधन

आइये सामान्य साधन के अन्तर्गत निम्नांकित बिन्दुओं का अध्ययन करते हैं-

1. **प्रशासनिक कार्यों के निर्णयों का न्यायिक पुनर्रावलोकन-** भारत और अमेरिका में न्यायपालिका को यह अधिकार प्राप्त है, कि वो समय-समय पर प्रशासनिक कार्यों की देखभाल करती रहे, यदि कोई प्रशासनिक निर्णय संविधान के विरूद्ध है, तो उसे पुनर्रिक्षित कर असंवैधानिक घोषित करें। परन्तु न्यायालय ऐसा तभी कर सकते हैं, जब कोई व्यक्ति न्यायालय का दरवाजा खटखटाये। भारत में कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के कार्यों में न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति कम ही रही है। ऐसा इसलिए क्योंकि, हमारा संविधान न्यायिक समीक्षा के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की मर्यादाऐं स्थापित करता है। किन्तु फिर भी नागरिकों के हितों की रक्षा तथा कानूनी प्रक्रियाओं में आस्था प्रकट करने के लिये न्यायपालिका द्वारा कई बार प्रशासनिक कार्यों एवं निर्णयों की समीक्षा की गयी हैं। यद्यपि न्यायिक समीक्षा का क्षेत्र संसद द्वारा सीमित किया हुआ है, फिर भी अनेक अवसरों पर न्यायालयों ने प्रशासनिक कृत्यों की समीक्षा कर उनके गुण-दोष वर्णित किये हैं। उच्चतम न्यायालय ने कई बार अपने ही निर्णयों की भी पुनःसमीक्षा की है। लगभग इसी प्रकार की स्थिति ब्रिटेन में है। वहाँ न्यायिक पुनरावलोकन ज्यादा प्रभावी नहीं हो सकता है और संसदीय कानून ने अनेक प्रशासकीय कार्यों को न्यायिक पुनरावलोकन के क्षेत्र से बाहर भी रखा है, लेकिन अमेरिका में किसी भी प्रशासकीय कार्य और निर्णय को न्यायिक पुनरावलोकन के क्षेत्र से बाहर नहीं रखा गया है।
2. **सरकार के विरूद्ध अभियोग-** भारत के राष्ट्रपति एवं राज्यपालों के अतिरिक्त अन्य लोक-सेवकों को भी अवैधानिक कार्यों के लिये आम व्यक्ति की भाँति अभियोगों का सामना करना पड़ता हैं। पद पर रहते हुए अपेक्षित दायित्वों की पूर्ति तथा शक्तियों के उपयोग के क्रम में राष्ट्रपति एवं राज्यपाल के अतिरिक्त

अन्य सभी मंत्री अधिकारी कानून के प्रति उत्तरदायी हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद- 300 में ये कहा गया है कि, ''भारत सरकार के विरूद्ध या उसके द्वारा भारतीय संघ के नाम से अभियोग प्रस्तुत किये जा सकते हैं। किसी राज्य की सरकार के विरूद्ध या उसके द्वारा उस राज्य के नाम से भी अभियोग प्रस्तुत किये जा सकते हैं।'' इसका आशय यह है, कि सिर्फ केन्द्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा ही मुकदमा दायर नहीं किया जाता है, बल्कि केन्द्र और राज्य सरकार के विरूद्ध भी मुकदमा दायर किया जाता है और सरकार को एक विरोधी पक्ष के रूप में न्यायालय ले जाया जा सकता हैं। भारत में सरकार के विरूद्ध संविदा और उपकार-कृत्य सम्बन्धी मुकदमें दायर किये जाते हैं। लेकिन प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा किये गये पदों के दुरूपयोग के मामले या अन्य भ्रष्टाचार सम्बन्धी मामलें में अधिकारी के विरूद्ध व्यक्तिगत रूप से मुकदमा चलता है। सरकार के कर्मचारी होने के नाते सरकार उसमें पार्टी नहीं रहती है। इंग्लैण्ड में तो यह कहावत प्रचलित है कि ''सम्राट को कोई भूल नहीं करता।'' अतः 1947 के पहले सम्राट पर कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था। अब 1947 के 'कानूनी कार्यवाही अधिनियम'(Crown Proceeding Act) द्वारा ब्रिटेन में राज्य की उन्मुक्ति को समाप्त कर दिया गया है। अमेरिका में भी कुछ परिस्थितियों में सरकार के विरूद्ध मुकदमा किया जा सकता है।

3. **प्रत्यायोजित विधान की वैधानिकता-** किसी उच्च सत्ता प्राप्त अधिकारी के द्वारा, निम्न अधिकारी को, नियम एवं विधि निर्माण की शक्तियों का जब भी प्रत्यायोजन किया जाता है, तो इस सन्दर्भ में न्यायालयों को ये शक्ति प्राप्त होती हैं, कि वे इस प्रत्यायोजित विधान की वैधानिकता को उचित करार दें या नहीं। इस सन्दर्भ में सदा नियमों एवं विधानों का पालन किया जाना चाहिये। उचित मापदण्ड़ों पर खरे ना उतरने वाले प्रत्यायोजित विधायनों का न्यायालय द्वारा परीक्षण हो सकता है।
4. **कार्यपालिका के कानूनों या नियमों को अवैध घोषित करना-** कार्यपालिका द्वारा निर्मित कानूनों या अध्यादेशों को भी, न्यायालयों में चुनौती दी जा सकती हैं। लेकिन इस सम्बन्ध में की जाने वाली अपीलों के सन्दर्भ में ये देखना आवश्यक होता है, कि जिस प्रशासकीय कानून के सन्दर्भ में अपील की जा रही है, उसमें प्रभावित पक्ष के द्वारा न्यायालय में अपील करने की व्यवस्था प्रदान की गयी है, अथवा नहीं। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति तथा राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेशों पर भी न्यायालय विचार कर सकते हैं। यदि ऐसे अध्यादेश, संविधान के किसी उपबन्ध का उल्लंघन करते हैं तो उन्हें न्यायालय द्वारा असंवैधानिक करार दिया जा सकता है।

इस प्रकार उपरोक्त साधन कुछ ऐसे साधन हैं, जिनको अपनाते हुये न्यायपालिका प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करती है।

14.4.2 विशेष साधन या संवैधानिक उपचार (Special or Extraordinary Judicial Remedies)

प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण स्थापित करने के लिये न्यायपालिका को उपर्युक्त साधारण अधिकारों के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट साधन भी प्राप्त हैं। इन विशिष्ट साधनों को ही असंवैधानिक उपचार कहा जाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 32 में सर्वोच्च न्यायालय को तथा अनुच्छेद- 226 के अन्तर्गत, उच्च न्यायालयों को कुछ विशिष्ट प्रकार के लेख या आदेश जारी करने का अधिकार प्राप्त है। संविधान के अनुच्छेद- 32 के अन्तर्गत, सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों के हनन के मामलों की सुनवाई का अधिकार है। इस क्रम में सर्वोच्च न्यायालय रिट निकाल सकता है। अनुच्छेद- 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालयों को मौलिक अधिकारों सहित संविधान द्वारा अधिरोपित किसी अन्य मर्यादा के उल्लंघन पर भी सुनवाई करने तथा रिट निकालने का अधिकार है। इस सम्बन्ध में उच्च न्यायालयों का क्षेत्र, सर्वोच्च न्यायालय से व्यापक है।

इन असाधारण उपचारों का इतिहास काफी लम्बा है तथा ब्रिटिश संवैधानिक इतिहास में देखा जा सकता है। वहाँ इनको न्याय के मूल स्त्रोत, राजा के नाम पर प्रचारित विशेषाधिकार लेख कहा जाता हैं। इन उपचारों को असाधारण इसलिये कहा जाता है, क्योंकि बन्दी प्रत्यक्षीकरण को छोड़कर अन्य सभी लेख, न्यायालयों द्वारा किसी के अधिकार के रूप में नहीं, बल्कि उसकी स्वेच्छा से प्रसारित किये जाते हैं और केवल वहीं प्रसारित किये जाते हैं, जहाँ कि अन्य साधन अपर्याप्त हों। प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के विभिन्न लेखों का संक्षिप्त उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है-

1. **बन्दी प्रत्यक्षीकरण(The Writ of Habeas Corpus)-** इस याचिका को अंग्रेजी में 'हेबियस कॉर्पस' कहा जाता है। 'हेबियस कॉर्पस' एक लेटिन शब्द है और इसका शाब्दिक अर्थ है- शरीर प्राप्त करना। बन्दी प्रत्यक्षीकरण की रिट एक आदेश के समान होती है। इस रिट में उस व्यक्ति को, जिसने किसी अन्य व्यक्ति को बन्दी बना रखा है, न्यायालय आदेश देता है कि, बन्दी बनाये गये व्यक्ति को अविलम्ब सशरीर न्यायालय में प्रस्तुत करे, जिससे न्यायालय उस व्यक्ति को बन्दी बनाये जाने के कारणों तथा औचित्यता की वैधानिकता की जाँच कर सके, जिनके द्वारा उस व्यक्ति को बन्दी बनाया गया है। यदि उस व्यक्ति को बन्दी बनाये जाने के पर्याप्त कारण उपलब्ध ना हों, तो बन्दी बनाये गये व्यक्ति को न्यायालय मुक्त भी कर सकता हैं। इस रिट में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा की भावना तो काम करती ही है, साथ ही इसका उद्देश्य यह भी है कि बिना पर्याप्त कारण के मनमानी ढंग से किसी भी व्यक्ति को बन्दी नहीं बनाया जाये। परन्तु मीसा(MISA), डी0आई0आर0 (D.I.R.) तथा राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (National Security Act) ने न्यायालय के बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिकार पर प्रहार किया है। एल0डी0 व्हाइट का भी यह मानना है कि, ''इस लेख का प्रभाव हर हालत में यह होता है कि, बन्दी बनाये गये व्यक्ति को उसके बन्दी बनाये जाने की वैधानिकता की जाँच करने के लिये न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है।'' इस अधिकार पर सबसे बड़ी बांधा तब आती है, जब संसद या राज्य विधानमण्डल कानून पास करके, ऐसा प्रावधान कर दे कि किसी भी व्यक्ति को बिना कोई कारण बताये, अमुक एक्ट के अनुसार नजरबन्द किया जा सकता है। वास्तव में इस प्रकार के कानून नागरिकों की स्वतंत्रता और मौलिक अधिकारों पर घातक हमले हैं।
2. **परमादेश(The Writ of Mandamus)-** परमादेश को अंग्रेजी 'मैनडेमस'(Mandamus) कहा जाता है। मैनडेमस भी एक लेटिन शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- समादेश अथवा किसी को आज्ञा देना। प्रो0 एल0डी0 व्हाइट ने कहा है कि, ''यह लेख न्यायालय द्वारा सामान्य रूप से किसी व्यक्ति की याचिका पर जारी किया जाता हैं, जिससे सम्बद्ध अधिकारी अपने कर्तव्यों का पालन करें।'' परमादेश लेख द्वारा न्यायालय सार्वजनिक निकास, सार्वजनिक कर्मचारी, निगम या संस्था को आदेश दे सकता है, कि कर्तव्यों का पालन कानून के अनुसार करें। यह लेख लोक-कर्मचारियों को उनके उन कर्तव्यों को भी याद दिलाता है, जिन्हें करने के लिये वह कर्मचारी कानून के द्वारा बाध्य हो। यह लेख किसी निगम या अधिकारी के अलावा अधीनस्थ न्यायालयों को भी जारी किया जा सकता हैं। यह आदेश राष्ट्रपति, राज्यपाल तथा किसी निकायों के विरूद्ध प्राप्त नहीं किया जा सकता हैं।
3. **निषेधाज्ञा या प्रतिषेध(The Writ of Prohibition)-** निषेधाज्ञा या प्रतिषेध, एक ऐसा लेख है जो उच्च-स्तरीय न्यायालय द्वारा, अधीनस्थ न्यायालयों को जारी किया जाता हैं। इस लेख का उद्देश्य, नीचे के या अधीनस्थ न्यायालयों को उन कार्यो से रोकना है, जिन्हें करने की अनुमति उन्हें कानून द्वारा नहीं मिली है। सरल शब्दों में कहें तो यह लेख उस समय जारी किया जाता है, जब कोई अधीनस्थ न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जा रहे हो। यह लेख अधीनस्थ न्यायालयों को विवादपूर्ण विषयों पर विचार करने से टोकने के लिये प्रसारित किया जाता है। इस लेख की विशेषता ये है, कि इसे केवल न्यायिक या

अर्द्ध-न्यायिक न्याधिकरणों के विरूद्ध ही जारी किया जा सकता हैं। यह रिट ऐसे किसी प्रशासनिक अधिकारी के विरूद्ध नहीं दी जा सकती हैं जो न्यायिक कार्य नहीं करता हैं। यह रिट कार्यवाही लम्बित रहने या आदेश निकासी से पूर्व भी जारी हो सकती हैं।

4. **उत्प्रेषण(The Writ of Certiorari)-** उत्प्रेषण के लिये अंग्रेजी में 'सरटिओरेरी' शब्द प्रयुक्त होता है। लेटिन शब्द ''सरटिओरेरी''(Certiorari) का शाब्दिक अर्थ है, 'प्रमाणित होना' या 'निश्चित होना'। उत्प्रेषण उस लेख का नाम है, जो किसी उच्च स्तरीय न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों को, उस समय जारी किया जाता है, जब वह किसी मुकदमें की कार्यवाही से, असंतुष्ट हो। इसके अन्तर्गत उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय से सभी प्रकार के रिकॉर्ड इस बात की जाँच-पड़ताल के लिये मंगवा सकता हैं कि कहीं अधीनस्थ न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र के बाहर तो नहीं गया है। इस लेख की माँग उन विवादों के सम्बन्ध में की जाती है, जिनकी प्रक्रिया सामान्य विधि के अनुरूप नहीं होती है। यह लेख प्रायः न्यायिक कार्य के विरूद्ध ही प्रसारित किया जाता है। इस आधार पर अधीनस्थ न्यायालय का निर्णय रूक जाता है। यह लेख परमादेश और निषेधाज्ञा दोनों के गुणों का मिश्रण होता हैं, क्योंकि इसके अनुसार, कुछ करने के लिये और कुछ ना करने की आज्ञाऐं दी जाती हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि प्रतिषेध कार्यवाही के दौरान जारी किया जा सकता है, जबकि उत्प्रेषण निम्न श्रेणी के न्यायालयों द्वारा आदेश दे चुकने के पश्चात जारी होता है।

5. **अधिकार-पृच्छा(The Writ of Quo-Warranto)-** अधिकार-पृच्छा को अंग्रेजी में 'को-वारण्टो' कहते हैं। लेटिन शब्द 'को-वारण्टो'(Quo-Warranto) का शाब्दिक अर्थ है- किसी अधिकार या प्राधिकार द्वारा। अधिकार-पृच्छा को, लोक-सत्ता के अधिकारियों पर न्यायिक नियंत्रण रखने की एक प्रत्यक्ष विधि के तौर पर जाना जाता है। अधिकार-पृच्छा वह लेख या न्यायिक अधिकार है, जिसके द्वारा न्यायालय, किसी व्यक्ति की याचिका पर किसी पद के ऊपर किये गये दावे के औचित्य की जाँच करता हैं अर्थात्, सरल शब्दों में, जब कोई व्यक्ति न्यायालय में यह याचिका प्रस्तुत करता है, कि उसका पद किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा लिया गया है, तो न्यायालय उस पद के औचित्य की जाँच करवा सकता है। यदि उस पद पर आसीन व्यक्ति का दावा वैधानिक रूप से सही नहीं है, तो सम्बन्धित व्यक्ति को पद से हटाया जा सकता है। यह कार्यवाही केवल लोक-पदों, स्थायी-पदों तथा ऐसे व्यक्तियों से सम्बन्धित होती है, जिनकी नियुक्ति संविधान या कानून के किसी नियम का उल्लंघन करती हों। यह कार्यवाही सम्बन्धित व्यक्ति से यह जानना चाहती है कि, उसने किस आधार पर यह पद धारण कर रखा हैं। दूसरे शब्दो में, यह रिट अवैध दावेदारी समाप्त करके लोकहित को महत्व देती हैं। यहाँ यह जानना महत्वपूर्ण है कि परमादेश, लोक-सेवकों तथा न्यायालयों दोनों के विरूद्ध जारी हो सकता है, जबकि निषेधाज्ञा एवं उत्प्रेषण दोनों रिटें एक साथ भी जारी की जा सकती है।

इस प्रकार उपर्युक्त साधनों, उपायों एवं असाधारण उपचारों के द्वारा न्यायपालिका, प्रशासन पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित करती हैं। भारत, अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन तथा अन्य प्रजातान्त्रित देशों की न्यायपालिकाओं ने अपने नियंत्रण के द्वारा प्रशासन को अपनी सीमा में रहने के लिये अनेक बार बाध्य किया हैं। उन देशों में जहाँ न्यायपालिका को सर्वोच्च संरक्षण(Supreme Guardian) की स्थिति प्राप्त हैं, प्रजातंत्र ज्यादा सफल हुआ है और न्यायपालिकाओं ने अपने न्यायिक पुनर्रावलोकन (Judicial Review) तथा अन्य महत्वपूर्ण लेखों के द्वारा शक्तिशाली सरकारों के भी अवैध फैसलों को निरस्त किया है और नियंत्रण में रहने को बाध्य किया है।

14.5 न्यायिक नियंत्रण की सीमाऐं

न्यायिक नियंत्रण की उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता है। इसके माध्यम से आम नागरिक के अधिकार एवं स्वतंत्रता सुनिश्चित होती हैं, लेकिन फिर भी लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की अपनी कुछ सीमाऐं या समस्याऐं हैं, जो कुछ इस प्रकार हैं-

1. हेरिस तथा वार्ड(Hariss and Ward) का मत है कि ''पूर्व न्यायिक नियंत्रण शासन की नियामकता एवं कुशल संचालन को रोक सकता हैं।'' अर्थात् व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिये तो न्यायपालिका बेशक आवश्यक है, परन्तु प्रशासकीय क्षेत्र में इसका अत्यधिक प्रयोग करने से प्रशासन अपंग(Handicapped) हो जाता हैं।
2. प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण न्यायपालिका स्वयं नहीं करती, नियंत्रण के लिये इसके पास आरम्भिक शक्ति नहीं हैं। यह तभी हस्तक्षेप कर सकती है, जब कोई व्यक्ति आवेदन देकर इससे अनुरोध करता है। अतः न्यायालय स्वयं हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं, जब कोई व्यक्ति या समूह उनके समक्ष प्रार्थना करता है, तभी वे हस्तक्षेप करते हैं।
3. न्यायिक प्रक्रिया अत्यनत जटिल एवं उलझी हुई प्रक्रिया है। इसमें नियमों, कानूनों, तथ्यों, प्रमाणों और गवाहों इत्यादि की कार्यवाहियों की इतनी उलझनें हैं, कि प्रशासकीय अन्याय का शिकार व्यक्ति न्यायालय में जाने की अपेक्षा चुप रहना ज्यादा बेहतर समझता है।
4. न्यायिक प्रक्रिया अत्यन्त ही विलम्बकारी प्रक्रिया(Time Taking Process) होती हैं। कई बार निर्णय में इतनी देरी हो जाती है, कि उस समय तक नागरिक को बहुत अधिक मात्रा में, ऐसी होनि पहुँच चुकी होती है, जिसकी भरपाई असम्भव होती है।
5. न्यायिक प्रक्रिया, न सिर्फ सुस्त और जटिल है, बल्कि यह प्रक्रिया बहुत अधिक खर्चीली है। न्यायिक कार्यवाही करने और अदालत में मुकदमा चलाने के लिए अत्यधिक व्यय करना पड़ता है। ये खर्च लम्बे समय तक बर्दाश्त कर पाना आम व निर्धन व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं हो पाता है। अतः यह सबके लिये सुलभ नहीं है।
6. अनेक प्रशासकीय कार्य ऐसे होते हैं, जिन्हें न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा जाता है। ऐसे प्रशासकीय कार्यों का न्यायिक पुनरावलोकन या न्यायिक समीक्षा नहीं की जाती हैं।
7. न्यायिक नियंत्रण घटना के बाद की प्रक्रिया है। जब कोई घटना घट जाती है, तब उसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और तभी न्यायिक नियंत्रण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।
8. आजकल प्रशासन का कार्य अत्यधिक तकनीकों तथा विशेषकृत होता जा रहा हैं। न्यायालयों के न्यायाधीश, विशेष तकनीकी योग्यता के अभाव में समुचित निर्णय लेने की स्थिति में नहीं होते हैं।
9. कोई एक मुदकमा या वाद, जब विभिन्न न्यायालयों में पृथक-पृथक निर्णय प्राप्त करता है, तो न्याय-प्रणाली पर आस्था कम होती है। यही कारण है कि न्यायालयों में अपीलें बहुत कम होती हैं।

वस्तुतः स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका किसी भी व्यवस्था का मुख्य आधार होती हैं। लार्ड ब्राइस का कथन है- ''कानून का सम्मान तभी होता है, जब वह निर्दोष व्यक्तियों की रक्षा के लिये ढाल बन जाता है और प्रत्येक नागरिक के निजी अधिकारों का संरक्षण करता हैं। यदि अंधेरे में न्याय का दीपक बुझ जाये तो उस गहन अंधकार का अनुमान लगना कठिन है।'' उपर्युक्त सीमाओं और समस्याओं ने प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के समक्ष अवश्य ही प्रश्न-चिन्ह खड़े कर दिये हैं और इसकी उपयोगिता को कुछ कम कर दिया हैं। लेकिन इन बांधाओं और सीमाओं के बाद भी प्रजातांत्रिक, संसदात्मक, अध्यक्षात्मक तथा विश्व की समस्त शासन-प्रणालियों में कमोबेश न्यायपालिका के नियंत्रण को आवश्यक माना गया हैं। भारत के सन्दर्भ में तो निश्चय ही सर्वोच्च न्यायालय

नागरिक स्वतंत्रता एवं मौलिक अधिकारों की संरक्षक और रक्षक दोनों ही हैं। अतः स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायपालिका सफल और कुशल प्रजातंत्र की पहली आवश्यकता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत में प्रशासन पर नियंत्रण का क्या साधन हैं?
2. बड़े न्यायालयों को छोटे न्यायालयों से रिकॉर्ड मंगवाने की शक्ति प्रदान करने वाला लेख या साधन का क्या नाम है?
3. किस लेख के द्वारा न्यायालय, सरकारी अधिकारों को किसी ना किसी प्रकार से कार्य करने के लिए बाध्य कर सकता हैं?
4. 'हैबियस कॉर्पस' का शाब्दिक अर्थ क्या है?

14.6 सारांश

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात आप अवगत हो गये होंगे, कि प्रशासन पर बाह्य नियंत्रण विधायी और न्यायिक साधनों द्वारा होता हैं। विधायी नियंत्रण कार्यपालिका शाखा की नीति तथा व्यय को नियोजित करता हैं और न्यायिक नियंत्रण प्रशासकीय कार्यों की वैधानिकता निश्चित करता हैं। किसी भी सरकारी अधिकारी द्वारा नागरिकों के संवैधानिक या मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण होने पर न्यायपालिका उनकी रक्षा करता हैं और दोषियों को दण्डित करता हैं। ब्रिटेन की भाँति भारत में भी कानून के शासन की व्यवस्था की गयी हैं। भारत में न्यायपालिका को प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने हेतु कुछ विशेष साधन भी प्रदान किये हैं, जिनका समुचित उपयोग करते हुए न्यायपालिका लोक-प्रशासन को नियंत्रित करती हैं। परन्तु न्यायपालिका द्वारा लोक-प्रशासन पर नियंत्रण कुछ विशिष्ट परिस्थितियों, सीमाओं और निर्धारित अवसरों पर ही किया जा सकता हैं।

14.7 शब्दावली

अधिकारातित- अधिकार-क्षेत्र से बाहर का, पुनरावलोकन- दोहराना, किसी किये हुये कार्य को फिर से देखना या करना, अवैधानिक- विधि विरूद्ध या कानून के खिलाफ, अभियोग- किसी पर लगाया गया आरोप, आक्षेप, दोषारोपण, अपकार-कृत्य-अनुचित आचरण या व्यवहार, उन्मुक्ति- छुटकारा या बंधनहीनता, अध्यादेश-किसी विशेष स्थिति से निपटने के लिये राज्य के प्रधान शासक द्वारा जारी किया गया आदेश या आज्ञा, प्रत्यायोजन- अपने अधिकार या शक्तियाँ किसी अन्य व्यक्ति को सौंपना या प्रदान करना, विधान- नियम या कायदा या बतलाया हुआ ढंग या प्रणाली या रीति, अविलम्ब- बिना विलम्ब के या तुरन्त या शीघ्र।

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. न्यायिक पुनरीक्षण, **2.** उत्प्रेषण, **3.** परमादेश, **4.** शरीर प्राप्त करना

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आर0 के0 दुबे, आधुनिक लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा- 2004
2. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा- 2002-03

14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, लोक प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर- 2001

2. डॉ0 बी0 एल0 फड़िया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की प्रकृति, साधन और सीमाओं की विवेचना कीजिये।
2. लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के विभिन्न प्रकार क्या हैं? लोक-प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के गुण और सीमाओं का उल्लेख कीजिये।
3. लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण का विस्तार से वर्णन करिये।